150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

अंक 283 वर्ष 58

भाषा

मार्च–अप्रैल 2019

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

Skill India

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

मार्च–अप्रैल 2019

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर अवनीश कुमार

परामर्श मंडल

श्रीमती चित्रा मुद्‌गल
डॉ. गंगा प्रसाद विमल
डॉ. नरेंद्र मोहन
प्रो. श्याम आर. असोलेकर
श्री राहुल देव
श्री एम. वेंकटेश्वर
डॉ. मिलन रानी जमातिया

संपादक
डॉ. राकेश कुमार

सह–संपादक
श्रीमती अर्चना श्रीवास्तव

प्रूफ रीडर
इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **58** **अंक : 2 (283)**
मार्च–अप्रैल 2019

संपादकीय कार्यालय एवं बिक्री केंद्र
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.hindinideshalaya.nic.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689
फैक्स : 011-23817846

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	**(डाक खर्च सहित)**
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या
संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
संपादकीय
आपने लिखा

आलेख

1. तुलनात्मक भारतीय साहित्य : अवधारणा और मूल्य	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	9
2. हिंदी-मराठी साहित्य में राजर्षि शाहू जी महाराज के शिक्षण विषयक विचार एवं प्रासंगिकता	वाढेकर रामेश्वर महादेव	18
3. हिंदी तथा बंगला भाषाओं में कारक चिह्न: एक विश्लेषण	डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव	21
4. साधारणीकरण के परिप्रेक्ष्य में सार्वभौम साहित्य की प्रकल्पना	डॉ. पशुपति नाथ उपाध्याय	25
5. सूरदास और पेरियाष़्वार के काव्य में वात्सल्य भाव का चित्रण	डॉ. एम. शेषन्	33
6. कफ़न: उल्लास और विद्रोह की गाथा	डॉ. पंकज साहा	40
7. मीर और उनकी शायरी की दुनिया	सुशील सरित	44
8. मलयालम से हिंदी में अनुवाद की समस्याएँ : सांस्कृतिक समतुल्यों के संदर्भ में	डॉ. संतोष अलेक्स	48
9. भीष्म साहनी के साथ कुछ मीठी यादें	उमाकांत खुबालकर	53
10. श्रीमद् भागवत गीता और कामायनी : संदर्भ-विश्वमानवता	डॉ. अमलसिंह 'भिक्षुक'	56

धरोहर

11. भारत दुर्दशा	भारतेंदु हरिश्चंद्र	62

कहानी

12. पराया लड़का (मराठी कहानी)	उज्ज्वला केलकर (अनुवाद : डॉ. सुशीला दुबे)	74
13. पराई धरती का अभिशाप (हिंदी कहानी)	इश्तियाक़ सईद	81
14. रास्ते अलग-अलग (हिंदी कहानी)	रमेश मनोहरा	86

कविता

15. निर्णय (डोगरी/हिंदी)	नरसिंह देव जम्वाल अनुवाद: कृष्ण शर्मा	90
16. कर्णराग (कन्नड/हिंदी)	डॉ. एल. हनुमंतय्या अनुवाद: डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'	92
17. वसंत का आगमन (हिंदी)	शेखर	94
18. परीक्षाएँ (हिंदी)	डॉ. दिनेश चमोला शैलेश	95
19. हे राम (हिंदी)	डॉ. किश्वर सुल्ताना	97

परख

20. भक्तिधारा के अंत: सूत्र (नम्माळ्वार की तिरुवाय्मोळ्हि (तमिल से अनुवाद)/ अनुवादक- डॉ. एम. आर. श्रीनिवासन)	डॉ. गंगा प्रसाद विमल	98
21. आत्माख्यान यायावरी उपन्यास : 'रोमा पुत्री के नाम' (रोमा पुत्री के नाम/ उपन्यास/ डॉ. श्याम सिंह शशि)	डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	101
22. रचनाधर्मिता का अद्वितीय दस्तावेज 'अनुगूँज' (अनुगूँज/ काव्य-संग्रह/ प्रदीप कुमार अग्रवाल 'प्रदीप्त')	डॉ. संतोष खन्ना	104
23. कविताओं के बहाने संवाद करते एक कवि (आदत सी तुम्हारी/ काव्य-संग्रह/ लालित्य ललित)	डॉ. रमेश तिवारी	108
24. हरसिंगार! तुम झरते रहना (काव्य संग्रह) (हरसिंगार! तुम झरते रहना/ काव्य-संग्रह/ मधु प्रसाद)	अशोक मनोरम	111
प्राप्ति स्वीकार		114
संपर्क सूत्र		115

निदेशक की कलम से

साहित्य का संबंध मानव की संवेदना से है। संवेदना विहीन साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। साहित्य ही वह साधन है जिसने संवेदनाओं के माध्यम से प्राचीन और नवीन को एक शृंखला में समाविष्ट कर रखा है। बुद्धि, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान तथा चिंतन आदि को आत्मसात करने के उपरांत ही श्रेष्ठ एवं जीवंत साहित्य का निर्माण हो पाता है। जीवंत साहित्य में ही सौंदर्य चेतना, भाव बोध, मूल्य बोध और जीवन चिंतन समाहित रहते हैं। साहित्य हमारी परंपराओं के संप्रेषण का प्रमुख माध्यम है। दर्शन और मूल्य बोध आदि में हो रहे निरंतर बदलाव साहित्य में अभिव्यक्ति पाते रहे हैं।

आज के बदलते परिवेश में साहित्य एक नए रूप में हमारे सामने है। इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों और सूचना प्रौद्योगिकी का बढ़ता प्रभाव, पुस्तकीय ज्ञान का बोझ, कैरियर-निर्माण का दबाव और अभिभावकों की उपेक्षा का शिकार होती पीढ़ी का स्वाभाविक विकास जैसे रुक-सा गया है समय की मांग के अनुरूप जीवन और समाज के बदलते परिदृश्य का आकलन करना और उसे कर्तव्य बोध की ओर निर्देशित करना साहित्यकार की सबसे बड़ी चुनौती है।

प्रस्तुत वर्तमान अंक में वाढेकर रामेश्वर महादेव द्वारा उनके लेख हिंदी-मराठी साहित्य में राजर्षि शाहू जी महाराज के शिक्षण विषयक विचार एवं प्रासंगिकता में विचारों की अभिव्यक्ति क्रमबद्ध रूप से की गई है। साथ ही, सूरदास और पेरियाष़्वार के काव्य में वात्सल्य भाव का चित्रण डॉ. एम. शेषन् द्वारा बड़े सुंदर ढंग से किया गया है। मलयालम से हिंदी में अनुवाद की समस्याओं के विषय में डॉ. संतोष अलेक्स का लेख पढ़ने योग्य है। उमाकांत खुबालकर द्वारा प्रस्तुत भीष्म साहनी के साथ कुछ मीठी यादें भी मन मस्तिष्क को स्पर्श करने वाली हैं।

चूँकि साहित्य समाज की निदर्शना है। इस दृष्टि से साहित्यकार का दायित्व व्यक्ति सापेक्ष न रहकर समाज सापेक्ष बन जाता है। एक ओर साहित्य के मानक समाज के मानकों से आधार प्राप्त करते हैं वहीं दूसरी ओर निष्पक्ष एवं उदारवादी दृष्टि रखने वाला रचनाकार ही स्वस्थ समाज के निर्माण की नींव होता है। इस स्थिति में रचनाकार का दायित्व प्रत्येक दृष्टि से अत्यंत व्यापक है।

भाषा का यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं और सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

शुभकामनाओं सहित।

प्रोफेसर अवनीश कुमार

आपने लिखा

इतिहासकार अलबरुनी के कथन- 'सिंधु-पार की समस्त भाषाएँ हिंदी हैं' को यह 'भाषा' पूर्णतः चरितार्थ करती प्रतीत होती है। विस्तृत अर्थ में भाषा के स्तर पर हिंदी, आबादी के स्तर पर हिंदी, संस्कृत और साहित्य के स्तर पर हिंदी, बोली के स्तर पर हिंदी, राष्ट्रभाषा के स्तर पर हिंदी, राजभाषा के स्तर पर हिंदी, संचार भाषा के स्तर पर हिंदी, मातृभाषा के स्तर पर हिंदी को इस पत्रिका ने अपना प्रतिपाद्य बनाया है। पुनः राष्ट्रीय अखंडता एवं संहति को ध्येय बनाकर चलने वाली इस पत्रिका का पथ प्रशस्त है एवं लक्ष्य विश्व-कल्याण है- ऐसा मेरा विश्वास है।

चक्रधर त्रिपाठी
शांति निकेतन, प. बं.

हमेशा की तरह 'भाषा' का जनवरी-फरवरी अंक भी अपने आप में अनूठा, वैविध्यपूर्ण, ज्ञान, रुचि, साहित्य, परंपरा, संस्कृति, धर्म, साहित्यिक गतिविधियों की सूचना एवं समसामयिक समाचारों का अनूठा संगम रहा। प्रस्तुत अंक में संकलित सामग्री का वैविध्य, वैशिष्ट्य देखते ही बनता है। आलेख, यात्रा वृतांत, कहानियाँ, कविताएँ, प्राप्ति स्वीकार, स्मृति शेष, समाचार सम्मोनति द्वारा इस पत्रिका का महत्व और भी बढ़ गया है।

मैं हृदय से सभी को शुभकामनाएँ प्रेषित करते हुए पत्रिका से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को हार्दिक बधाई देना चाहती हूँ कि वे इस महत्वपूर्ण सृजन का एक अविस्मरणीय हिस्सा बन पाए।

अशेष शुभकामनाओं के सहित।

डॉ. विदुषी शर्मा, एकेडमिक काउंसलर इग्नू,
जनरल सेक्रेट्री इंटरनेशनल हयूमन राइट्स ऑर्गेनाइजेशन IHRO, दिल्ली

संपादकीय

'साम्राज्य बिखरते हैं, लेकिन साहित्य कभी नहीं बिखरता।
साहित्य या कलाओं की वैचारिक परंपराएँ कभी समाप्त नहीं होती।'

कुँवरनारायण

अनेकता भारतीय साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। एक धारा में बहती हुई या एक रंग में रंगी हुई इसकी स्थिति कभी नहीं रही। इसी परिप्रेक्ष्य में बहुत सी कालजयी कृतियाँ थाती के रूप में सामने आईं। भारतीय साहित्य देश की राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप रचित अनुभूतिप्रवण जन साहित्य है। सामान्य मानव का हित साधन ही इसका प्रेरणास्रोत रहा है। समाज में लिप्त न होकर भी पूर्ववर्ती साहित्यकारों ने समाज कल्याण का मार्ग अपनाया और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शोषित और प्रताड़ित मानव की समस्त प्रवृत्तियों, परिस्थितियों तथा भावनाओं का गंभीर यथातथ्य चित्रण किया। पूर्ववर्ती हिंदी साहित्य आध्यात्मिक अनुभूतियों का लेखा-जोखा मात्र नहीं है, उसमें तत्कालीन जन-जीवन का प्रतिबिंब भी विद्यमान है। धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं का अंधानुसरण न कर इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था के विरोध, क्रोध-लोभ-मोह-हिंसा आदि की निंदा और सद्गुणों की प्रतिष्ठा पर बल दिया। यह साहित्य अपनी सरलता, जीवन-दर्शन की गंभीरता और तत्वबोध के कारण अत्यंत प्रभावशाली है। हिंदी साहित्य के अधिकांश संत-कवि साहित्य के अध्ययन के स्थान पर आत्मानुभव को प्रधानता देते रहे हैं। संत-काव्य का लक्ष्य था - सामान्य अशिक्षित जनता में सत्य का निरूपण करना, कथनी-करनी में तारतम्य पर बल देना तथा 'नाम' की महिमा को प्रतिष्ठित करना। संतकवि दरिया साहब के कथन "सकल कवित्त का अर्थ है, सकल बात की बात। दरिया सुमिरन राम का कर लीजै दिन रात" तथा कबीर का अभिमत "पंडित और मसालची दोनों सूझै नाहिं। औरन को करै चाँदना आप अंधेरे माहि।।" इस प्रकार संत साहित्य की काव्य-दृष्टि, समाज-दृष्टि और चिंतन-दृष्टि में अद्भुत साम्य है। महान कवि तुलसी तो यहाँ तक कहते हैं:- "कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई।।," समाज में लोक मंगल की भावना की स्थापना इन कवियों का मुख्य ध्येय था, "पर हित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।" से तुलसी संभवतः यही संदेश दे रहे हैं।

साहित्य जीवन की संवेदनाओं से अलग रह ही नहीं सकता, यदि वह स्वस्थ संवेदनाओं से रहित है तो निरर्थक है। पाश्चात्य विद्वानों ने साहित्य को जीवन की समीक्षा कहा है। भारतीय दृष्टिकोण इससे भी आगे जाता है। हमारे साहित्य का मूल आधार ही अनंत संभावनाओं में है, जो कल्पना और भावना से भी परे है। भारतीय काव्यशास्त्र के पंडितों ने साहित्य में,'हितेन सहितम इति साहित्यम' अथवा 'सहितयोः भावः साहित्यम' दोनों स्थितियों में साहित्य के उद्देश्य के रूप में समाज के हित की ही कल्पना की है। साहित्य एक निश्चित सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश में पल्लवित और विकसित होता है। साहित्यकार स्वतंत्र व्यक्ति होते हुए भी अपनी संस्कृति तथा परिवेशगत विचारों का भागीदार होता है और यही उसकी रचनाओं में प्रतिफलित होता है। वस्तुतः किसी भी देश-काल में लिखा गया साहित्य तत्कालीन समाज की दिशा-दशा, रहन-सहन, आचार-विचार को अभिव्यक्त करता है इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है।

भारतीय समाज का निर्माण जिन तत्वों के ताने-बाने से हुआ है, उनमें विभिन्न वर्णों और जातियों का विशिष्ट स्थान है। समय-समय पर जितनी मानव-मंडलियाँ इस देश में आईं, उन सबके अपने-अपने धर्म विश्वास, रीति-रिवाज, आचार-विचार और अपने-अपने संस्कार थे। इतिहास साक्षी है कि ऐसी विषम परिस्थितियों

में भारतीय मनीषा द्वारा समय-समय पर ऐसे समाधान ढूँढने के प्रयास होते आए हैं, जिनका प्रभाव दीर्घकाल तक रहा है। इन समाधानों के मूल में सार्वभौम सत्य की प्रेरणा प्रबल रही है। इसी सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित सांस्कृतिक चेतना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति धार्मिक भावना और दार्शनिक चिंतनधारा के माध्यम से हुई। कला, शिल्प, साहित्य और संगीत इन्हीं की आनुषंगिक उपलब्धियाँ हैं। इन सबका क्षेत्र विशाल मानव समाज है, जिसकी प्रेरणा से मनुष्य जीवन-यापन करता है। भारतीय जीवन में समय-समय पर विदेशी विजातीय तत्वों के आते रहने के कारण परस्पर आघात होते रहे हैं। परंतु इन्हीं में से होकर ऐसी जीवनी शक्ति का भी संचार होता रहा कि हम डूबते-डूबते भी उबरते चले आए और निस्तेज न होकर हर बार एक नया जीवन प्राप्त करते रहें। इन सबके मूल में हमारी समन्वय-साधना की प्रवृत्ति सदैव बलवती रही।

भाषा का मार्च-अप्रैल 2019 का यह अंक आप सभी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। अंक के सभी लेखकों के प्रति हम आभारी हैं। आशा है कि भविष्य में भी आपका सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

धन्यवाद।

(डॉ. राकेश कुमार)

तुलनात्मक भारतीय साहित्य : अवधारणा और मूल्य

प्रो. ऋषभदेव शर्मा

तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन करते समय तीन परस्पर निकटस्थ अवधारणाओं से टकराना पड़ता है। ये हैं- राष्ट्रीय साहित्य (National Literature), विश्व साहित्य (World Literature) और सामान्य साहित्य (General Literature)। प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी ने 'तुलनात्मक साहित्य की भूमिका' में इन अवधारणाओं को स्पष्ट करते हुए तुलनात्मक और सामान्य साहित्य के संबंध पर सम्यक प्रकाश डाला है।

[1] सामान्य साहित्य

साधारण रूप से सामान्य साहित्य का अर्थ हम किसी भी साहित्य के प्रचलित स्वरूप से लगा सकते हैं। परंतु यहाँ यह एक पारिभाषिक पद के रूप में व्यवहृत है जिसकी अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं, जैसे-सामान्य साहित्य का प्रारंभिक अर्थ था काव्यशास्त्र या साहित्य सिद्धांत का अध्ययन। जेम्स मांटुगमरी ने 1833 में सामान्य साहित्य पर भाषण देते हुए इसके अंतर्गत काव्यशास्त्र अथवा सामान्य सिद्धांत पर ही चर्चा की थी। इसी प्रकार इरविन कोपेन ने तो स्पष्ट कहा है कि सामान्य साहित्य मूलत: साहित्य सिद्धांत ही है। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए हार्स्ट फ्रेंज़ ने कहा है कि सामान्य साहित्य से तात्पर्य है साहित्यिक प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं सिद्धांतों का सामान्य अध्ययन अथवा सौंदर्यशास्त्र का अध्ययन, यहाँ यह बात स्मरणीय है कि तुलनात्मक साहित्य भी साहित्य सिद्धांत अथवा काव्यशास्त्र का भी अध्ययन करता है। मगर उसके अध्ययन की पद्धति तुलनात्मक होती है जबकि सामान्य साहित्य इस प्रकार की किसी पद्धति का निर्धारण नहीं करता।

दरअसल 'सामान्य साहित्य' पद का प्रयोग कुछ पाठ्यक्रमों में परस्पर अंतर को दर्शाने के लिए किया जाता रहा है। जैसे कि, अमरीका में सामान्य साहित्य का प्रयोग उन विदेशी साहित्य के पाठ्यक्रमों या प्रकाशनों के लिए किया जाता है जो या तो अंग्रेजी अनुवादों में उपलब्ध हैं या राष्ट्रीय साहित्य के पाठ्यक्रमों के अंतर्गत स्वतंत्र अध्ययन के विषय हैं। कभी-कभी अनेक साहित्यों की कृतियों के संग्रह, आलोचनात्मक अध्ययन या विवरण को भी इस वर्ग में स्थान दिया जाता है। परंतु लगभग ऐसे ही विषयों के लिए अलग-अलग संदर्भों में तुलनात्मक साहित्य और विश्व साहित्य जैसे नामकरण भी काम में लिए जाते हैं, अत: कहना होगा कि सामान्य साहित्य की अवधारणा बहुत स्पष्ट नहीं है। रेनेवेलक ने भी इसे अयुक्तियुक्त और अव्यावहारिक माना है। वांटिग्हेम ने तुलनात्मक और सामान्य साहित्य का अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि तुलनात्मक साहित्य दो साहित्यों के आपसी संबंधों के अध्ययन तक सीमित है जबकि सामान्य साहित्य का संबंध उन आंदोलनों और फैशनों से है जो अनेक साहित्यों में विद्यमान दिखाई देते हैं। इसमें संदेह नहीं कि यह अंतर भी बहुत सूक्ष्म अंतर है और इन दोनों प्रकार के साहित्यों की सीमाएँ एक-दूसरे पर अपनी छाया अवश्य डालती हैं।

अंतत: क्रेग के निम्नलिखित मत को यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा कि- "राष्ट्रीय साहित्य की चारदीवारी

के भीतर जो अध्ययन है वह राष्ट्रीय साहित्य है और इस चारदीवारी के परे साहित्य का अध्ययन तुलनात्मक साहित्य है तथा दीवारों के ऊपर जो साहित्यिक अध्ययन है वह सामान्य साहित्य है।"

जैसा कि, प्रो. चौधुरी ने कहा है कि पता नहीं इस प्रकार के सीमा निर्धारण से इनमें अंतर निश्चित हो पाता है या नहीं परंतु इनके पारस्परिक संबंध अपने आप में बहुत स्पष्ट हैं।

[2] राष्ट्रीय साहित्य

मनुष्य मात्र की भावनाओं, राग-विराग और संवेदनशीलता की समानता के आधार पर यह माना जाता है कि मनुष्य जाति की एक समेकित संस्कृति है। इस समेकित संस्कृति का निर्माण करने के लिए अलग-अलग देशकाल में मनुष्यों के समूहों ने जो अलग-अलग प्रयत्न किए, साधनाएँ कीं उनका समेकित रूप 'विश्व संस्कृति' है और यह उन मानव समूहों के अपने-अपने साहित्यों के माध्यम से व्यक्त होती है। इन अलग-अलग देशकाल में रचित साहित्यों के समेकित रूप का नाम ही 'विश्व साहित्य' है। स्मरणीय है कि अलग-अलग देशकाल और जाति समूहों से संबंधित जातियों के, मनुष्यों के सांस्कृतिक प्रयत्न है। इसी प्रकार किसी राष्ट्र के अलग-अलग भाषा-भाषी समुदायों द्वारा अपनी संस्कृति के उत्थान और अभिव्यक्तिकरण के क्रम में रचे गए भिन्न-भिन्न भाषाओं के साहित्य का समेकित रूप उस देश का 'राष्ट्रीय साहित्य' होता है। हम यह भी कह सकते हैं कि राष्ट्रीय साहित्य भिन्न-भिन्न भाषाओं में रचे जाने के बावजूद उस राष्ट्र की सामाजिक पहचान को व्यक्त करता है और विश्व साहित्य अलग-अलग राष्ट्रों की साहित्यिक अभिव्यक्तियों में निहित समग्र मानव चेतना का संपुंजन होता है। राष्ट्रीयता और वैश्विकता यहाँ परस्पर पूरक भाव से जुड़ी होती है, अविरोधी होती है अत: विश्व साहित्य, साहित्य के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय लोकतंत्र को संभव कर दिखाता है। जहाँ विभिन्न राष्ट्रीय अस्मिताएँ विश्व नागरिक की भाँति एक-दूसरे के साथ अस्तित्व में रहती हैं।

यहाँ प्रो. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव का यह कथन द्रष्टव्य है कि "भारत एक बहुभाषी देश है। यहाँ न केवल 1652 मातृभाषाएँ हैं अपितु अनेक समुन्नत साहित्यिक भाषाएँ भी हैं। पर जिस प्रकार अनेक वर्षों के आपसी संपर्क और सामाजिक द्विभाषिकता के कारण भारतीय भाषाएँ अपनी रूप रचना में भिन्न होते हुए भी आर्थी संरचना में समरूप हैं, उसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि अपने जातीय इतिहास, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्य एवं साहित्यिक संरचना के संदर्भ में भारतीय साहित्य एक है, भले ही वह विभिन्न भाषाओं के अभिव्यक्ति माध्यम द्वारा व्यक्त हुआ है।" यदि इस संकल्पना का आगे विस्तार करें और भाषा भेद की सीमा को तोड़कर मनुष्य के इतिहास और विकास को देखने का प्रयत्न करें तो विश्व साहित्य की अवधारणा सामने आती है। वास्तव में प्रत्येक भाषा के साहित्य की विषय-वस्तु और रूप अभिव्यक्ति एवं उसकी मूल्य चेतना और विधा निरूपण के इतिहास का राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भ भी हुआ करता है जो उसे क्रमश: राष्ट्रीय साहित्य और विश्व साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

वस्तुत: राष्ट्रीय साहित्य द्वारा तुलनात्मक साहित्य का आधार तैयार होता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा ही राष्ट्रीय साहित्य और उसमें निहित राष्ट्रीयता की तत्वों की पहचान की जा सकती है। इसीलिए आर. ए. साइसी ने तुलनात्मक साहित्य को "विभिन्न राष्ट्रीय साहित्यों का एक-दूसरे के आश्रय से तुलनात्मक संबंधों का अध्ययन" कहा है। इसी प्रकार गोयते ने विश्व साहित्य के संदर्भ में अपनी साहित्यिक परंपराओं से इतर दूसरी परंपराओं के बोध को अनिवार्य माना है। ऐसा करने से विभिन्न राष्ट्र एक-दूसरे को पहचान या समझ सकते हैं तथा अगर एक-दूसरे से प्रेम न भी कर सकें तो कम-से-कम एक-दूसरे को बर्दाश्त करना तो सीख सकते हैं। वास्तव में आपसी पहचान आदान-प्रदान द्वारा राष्ट्रीय साहित्य अपनी विलक्षणता को बनाए रख सकता है।

जैसा कि, पहले भी कहा गया, भारत जैसे बहुभाषी देश में राष्ट्रीय साहित्य का अर्थ है विभिन्न भाषाओं में राष्ट्रीय संस्कृति और मूल्यों की अभिव्यक्ति। इसके लिए तुलनात्मक पद्धति का सहारा लिया जाता है। या कोई एक साहित्य दूसरे साहित्य पर किस प्रकार प्रभाव डालता है। उदाहरण के लिए, हम बंगला और तेलुगु के संबंध की चर्चा कर सकते हैं। बंगला के कथा साहित्य को तेलुगु में इतनी सहजता से ग्रहण किया जाता है कि बहुत से पाठक तो शरत को बंगला के बजाय तेलुगु का ही साहित्यकार समझते हैं। रवींद्रनाथ ठाकुर के साहित्य

ने विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य पर जो प्रभाव डाला वह भी भारत के राष्ट्रीय साहित्य का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसी प्रकार बाबासाहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर के चिंतन से प्रभावित होकर जब मराठी में दलित साहित्य का उदय हुआ तो उसका प्रभाव तेलुगु, हिंदी, उर्दू, पंजाबी यहाँ तक की समकालीन संस्कृत साहित्य पर भी पड़ा- यह भारतीय साहित्य की समस्वरता का द्योतक है। इतना ही नहीं अलग-अलग प्रांत की प्रबुद्ध महिलाओं ने अलग-अलग भाषाओं में भले ही स्वयं ने अलग-अलग प्रकार से अभिव्यक्त किया हो लेकिन स्त्री विमर्श आज किसी एक भाषा के साहित्य की प्रवृत्ति न होकर भारतीय साहित्य की समेकित प्रवृत्ति है। ओल्गा और घंटसाला निर्मला भले ही तेलुगु की कवयित्रियाँ हों, अनामिका और कात्यायिनी हिंदी की हों, निर्मला पुतुल संताली की हों, दर्शन कौर और तरन्नुम रियाज़ पंजाबी की हों - इन सबके द्वारा स्त्री की यातना का चित्रण एक जैसा है और समग्रत: भारतीय स्त्री की यातना का द्योतक है। यह समरसता ही इस तमाम स्त्री विमर्श को भारतीय साहित्य का हिस्सा बनाती है।

इसी प्रकार विभिन्न भाषाओं के साहित्य में प्रयुक्त अंतरवस्तु, मोटिफ, मिथक और काव्य सौंदर्य के उपकरण भी मिलकर किसी देश के राष्ट्रीय साहित्य का रूप निर्धारण करते हैं। अभिप्राय यह है कि राष्ट्रीय साहित्य किसी राष्ट्र की किसी एक भाषा का नहीं बल्कि उसकी विभिन्न भाषाओं के उस साहित्य का सामासिक रूप होता है जिसमें उसके नागरिकों की सांस्कृतिक चेतना और एक समान संवेदना प्रतिबिंबित होती है। यहाँ हम भारतीय साहित्य के संदर्भ में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के एक काव्यांश को देख सकते हैं जिसमें प्रकारांतर से भारत के राष्ट्रीय साहित्य की पहचान का सूत्र दिया गया है-

भारत नहीं स्थान का वाचक,
गुण-विशेष नर का है,
एक देश का नहीं,
शील वह भूमंडल भर का है,
जहाँ कहीं एकता अखंडित,
जहाँ प्रेम का स्वर है
देश-देश में वहाँ खड़ा
जीवित भारत भास्वर है। (दिनकर)

[3] विश्व साहित्य

दरअसल, विश्व साहित्य की अवधारणा का आधार आरंभ में यूरोप का दृष्टिकोण रहा जिसके अनुसार विश्व साहित्य का प्रारंभिक अर्थ यूरोपीय साहित्य तक सीमित था। गोयते ने भी 'वेल्ट लित्रातुर' पद का प्रयोग इसी अर्थ में किया था। इसमें संदेह नहीं कि यह अर्थ अत्यंत सीमित था और आज इसे स्वीकार नहीं किया जाता।

20वीं शताब्दी में विश्व साहित्य के अर्थ में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। विश्व के बारे में जो यूरोप केंद्रित जातिगत विशिष्ट अवधारणा थी, उसके अर्थ में एक खास तरह की व्यापकता आई। इस प्रकार विश्व साहित्य का दायरा यूरोप के बाहर तक फैला और उसके अंतर्गत विश्व के दूसरे क्षेत्रों के साहित्य और तुलनात्मक अध्ययन को स्थान दिया गया। अब विश्व साहित्य का तात्पर्य है- पृथ्वी के किसी भी साहित्य का अध्ययन। अर्थात् सार्वभौमिक स्तर पर साहित्य के इतिहास को ही विश्व साहित्य माना जाता है। प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी ने लिखा है कि "विश्व साहित्य के इतिहास विषयक ग्रंथों में विभिन्न राष्ट्रीय साहित्यों को विभिन्न माध्यमों में बाँटकर या एक-दूसरे के सान्निध्य में रखकर अध्ययन किया जाता है। या फिर विश्व साहित्य के विभिन्न आंदोलनों, प्रवृत्तियों या कालों का विवरण देते हुए विश्लेषण होता है।" जे. ब्रांट कॉर्स्टियस (J. Brandt Corstius) ने इस प्रकार रचे गए विश्व साहित्य के इतिहास की संभावनाओं और सीमाओं का विस्तार से विवेचन किया है। स्पष्ट है कि विश्व साहित्य बड़ी सीमा तक राष्ट्रीय साहित्यों का समूह है अत: इसमें राष्ट्र अथवा देश का तत्व जुड़ा रहता है। कहना न होगा कि इस तत्व के कारण ही विश्व साहित्य की तुलनात्मक दृष्टि का विकास होता है और वे बिंदु उभरते हैं जो विभिन्न राष्ट्रों के साहित्यों में व्यक्त होने वाली मानव जाति की एक जैसी चिंताओं को दर्शाते हैं।

विश्व साहित्य का एक अर्थ यह भी है कि केवल देश ही नहीं 'काल' के संदर्भ में भी जो महान है अर्थात् काल की कसौटी पर जिसकी श्रेष्ठता सिद्ध हो चुकी है वह कालजयी और श्रेष्ठ साहित्य विश्व साहित्य है। जैसे 'डिवाइन कॉमेडी', 'डान कोहटे', 'पैराडाइज लॉस्ट', 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'कुमार संभव' आदि की श्रेष्ठता देश और काल से ऊपर है। अत: ये

अपने-अपने राष्ट्र और भाषा की महान कृतियाँ तो हैं ही। विश्व साहित्य की भी अमर धरोहर हैं। इतना ही नहीं वर्तमान में भी जिन रचनाओं को अपने राष्ट्र की परिधि के बाहर प्रसिद्धि प्राप्त होती है उन्हें भी विश्व साहित्य के अंतर्गत गिना जाता है। परंतु यह विश्व साहित्य का गौण अर्थ है। विश्व साहित्य का मुख्य स्वरूप तो समस्त राष्ट्रों के साहित्य के समुच्चय द्वारा ही प्रकट होता है।

फ्रिट्ज स्टाइच के अनुसार विश्व साहित्य के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं-

(1) अपने राष्ट्रीय साहित्य की परंपरा के साथ ही दूसरे राष्ट्रीय साहित्यों की परंपराओं से परिचित होना।

(2) दूसरे देशों या भाषाओं में लिखित साहित्य के प्रति खुलापन रखना।

(3) विभिन्न साहित्यों में परस्पर आदान-प्रदान का अवसर देना।

विश्व साहित्य के इस स्वरूप के अंतर्गत प्रकाशित ग्रंथों के शीर्षकों की सहायता से भी समझा जा सकता है। जैसे- 'लेयार्ड' द्वारा संपादित 'The World Through Literature' और 'रिप्ले' द्वारा संपादित 'Dictionary of World Literature' अथवा 'Encyclopaedia of Literature' में भी विश्व साहित्य की यही संकल्पना स्वीकार की गई है। तुलनात्मक साहित्य की पद्धतियों का विश्व साहित्य के अध्ययन के लिए उपयोग सहज है, परंतु अनिवार्य नहीं। अर्थात् विविध साहित्यों की तुलना के स्थान पर उनका संकलन करना भी विश्व साहित्य के लिए पर्याप्त है। उदाहरण के लिए यदि तुर्गनेव, हाथॉर्न, थैकरे और मोपसां के निबंधों के संकलन को 'Figures of World Literature' नाम दिया जाए तो यह सहज ही विश्व साहित्य के अंतर्गत स्वीकार्य होगा। भले ही इसमें तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित हो या न हो।

विश्व साहित्य पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में विचार करते हुए प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी ने 'तुलनात्मक साहित्य की भूमिका' में यह बताया है कि रवींद्रनाथ ठाकुर ने सन् 1907 में तुलनात्मक साहित्य के लिए 'विश्व साहित्य' शब्द का प्रयोग किया था। कवींद्र रवींद्र यह मानते थे कि यदि हमें मनुष्य को समझना है जिसकी अभिव्यक्ति उसके कर्मों, प्रेरणाओं और उद्देश्यों में होती है तो संपूर्ण साहित्य के माध्यम से उसके अभिप्रायों से परिचित होना होगा। वास्तव में मनुष्य इतिहास में स्थानीय या सीमित व्यक्ति की अपेक्षा शाश्वत या सार्वभौमिक मनुष्य को देखना चाहता है। उसकी इस अपेक्षा को विश्व साहित्य ही पूरा करता है। विश्व साहित्य में मनुष्य अपनी आत्मा के आनंद को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है। अतः विश्व साहित्य की एक बड़ी कसौटी उसमें मनुष्य की आत्मा के आनंद और रागात्मक संबंधों की अभिव्यक्ति को माना जा सकता है।

रवींद्रनाथ ठाकुर के अनुसार "जिस प्रकार यह विश्व जमीन के टुकड़ों का योगफल नहीं है उसी प्रकार साहित्य विभिन्न लेखकों द्वारा रचित कृतियों का योगफल नहीं है। हमें राष्ट्रीयता की संपूर्ण मनोवृत्ति से अपने को मुक्त करना है। प्रत्येक कृति को उसकी संपूर्ण इकाई में देखना है और इस संपूर्ण इकाई या मनुष्य की शाश्वत सृजनशीलता की पहचान विश्व साहित्य के द्वारा ही हो सकती है।"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विश्व साहित्य मनुष्य की शाश्वत सृजनशीलता की खोज का परिणाम है तथा विभिन्न राष्ट्रीय साहित्यों का समुच्चय होते हुए भी वह राष्ट्रीय संकीर्णताओं से मुक्त तथा 'वसुधैव कुटुंबकम्' की वैश्विक चेतना से अनुप्राणित होता है।

[4] भारतीय साहित्य में भारतीयता

भारतीय साहित्य की पहचान का आधार है- भारतीयता। प्रश्न यह उठता है कि भारतीयता का क्या अभिप्राय है? वस्तुतः वर्तमान संदर्भ में यह शब्द गहरे सांस्कृतिक अर्थ का द्योतक है। कहना न होगा कि "संस्कृति हमारे लिए दार्शनिक, आध्यात्मिक, नैतिक, कलात्मक और प्रवृत्तिगत संसार की अनुगूँज है। वह मूलतः मनुष्य से, प्रकृति से, धर्म से, मूल्य से, आत्मा से, समाज से, विश्व से हमारे संबंधों की प्रकृति सूचित करती है।" (प्रभाकर श्रोत्रिय)। इन्हीं से हमारी सांस्कृतिक पहचान निर्मित होती है जिसे हम विश्व के अन्य देशों की तुलना में विशिष्ट मानकर भारतीयता के नाम से अभिव्यक्त करते हैं।

भारतीयता के कई अभिलक्षण हो सकते हैं। जैसे- सर्वात्मवाद-सबका विकास, सबका उन्नयन, सबका आनंद भारतीय स्वभाव की मूल संस्कृति है। इसी प्रकार भारतीयता को सामासिकता से जोड़ते हुए डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय कहते हैं- "भारत के भौगोलिक, राजनैतिक,

सांस्कृतिक चरित्र में सामासिकता है जिसके केंद्र में है सहिष्णुता जिसे नरेश मेहता 'वैष्णवता' कहते हैं। वैष्णवता का मूल करुणा है। गांधी की प्रार्थना में था- 'वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाने रे।' वैष्णवी भारत एक सहिष्णु, संवेदनशील, सामाजिक भारत है, संगम जिसका स्वभाव है। संगम भारत की सामासिकता की बोधभूमि है। भारत की संस्कृति का निर्माण नीति के उपदेशों या धर्म ग्रंथों से नहीं, काव्य ग्रंथों से हुआ है। 'रामायण', 'महाभारत' तो सांस्कृतिक अवबोधन के काव्य हैं ही, वेद भी एक अर्थ में महान काव्य है।" ('कविता की जातीयता' की भूमिका से)।

भारतीयता अथवा भारतीय संस्कृति की व्याप्ति ही विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य को भारतीय साहित्य का दर्जा देती है। इसलिए भारतीय साहित्य में भारतीयता एक मूलभूत घटक/तत्व (Fundamental Constituents) है।

इसमें संदेह नहीं कि मानवीय संवेदना की दृष्टि से विश्व भर का साहित्य कुछ एक जैसे आद्यप्रारूपों (Archetypes) से जुड़ा हुआ है जिसके कारण विश्व साहित्य में सार्वकालिक और सार्वदेशिक तत्व पाए जाते हैं। परंतु जैसा कि प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी ने 'तुलनात्मक साहित्य की भूमिका' में लिखा है, "विश्व के साहित्य में पाई जाने वाली इस सार्वकालिकता या सार्वदेशिकता के बावजूद प्रत्येक देश का साहित्य काल, परिवेश तथा लेखक के जातीय संस्कार से प्रभावित होता है जिसके फलस्वरूप साहित्य में विशिष्टता आ जाती है।" यह जातीय संस्कार ही वर्तमान संदर्भ में भारतीयता है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य की एक जैसी विशेषताओं के आधार पर भारतीय साहित्य की एकता को प्रतिपादित किया जा सकता है। वी.के.गोकक ने पहले-पहल भारतीय साहित्य की उस चेतना को खोजने का प्रयास किया जिससे भारतीयता की पहचान की जा सकती है। 'The Concept of Indian Literature' में उन्होंने यह बताया कि भारतीय साहित्य की शैली, कथ्य, पृष्ठभूमि, बिंबविधान, काव्य रूप, संगीत तथा जीवन-दर्शन सब मिलकर एक अभिन्न तत्व के रूप में भारतीय साहित्य की भारतीयता को प्रकट करते हैं। डॉ. नगेंद्र और सुनीतिकुमार चटर्जी ने इसे एकता के रूप में विश्लेषित किया है।

भारतीय साहित्य के आमतौर से तीन अर्थ समझे जाते हैं-

1. संस्कृत साहित्य जिनकी विशाल परंपरा है और जो आधुनिक भारतीय साहित्य को प्रभावित करता है। भारतीयों द्वारा अंग्रेजी में लिखा साहित्य। गोकक ने भारतीयता की चर्चा करते हुए भारतीयों द्वारा अंग्रेजी में लिखे साहित्य का ही उदाहरण दिया है।

2. विभिन्न भारतीय भाषाओं हिंदी, तमिल, तेलुगु, बंगला, मणिपुरी आदि में लिखा गया साहित्य जिसमें विषय और भावगत एकसूत्रता दिखाई पड़ती है।

3. भले ही भारत की 22 भाषाओं में अभिव्यक्तियाँ अलग-अलग हों तथापि इनमें मूलभूत एकरूपता देखी जा सकती है। वर्तमान संदर्भ में हम भारतीय साहित्य के इसी अर्थ को ग्रहण करते हैं।

प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी ने इस मूलभूत एकरूपता के दो कारण बताए हैं-

1. एक ही स्रोत से प्रेरणा ग्रहण करना। यह मूल स्रोत है- संस्कृत साहित्य, महाकाव्य, पुराण, जातक, लोकसाहित्य, दार्शनिक साहित्य, कला एवं संगीत।

2. लगभग एक ही प्रकार की अनुभूतियों से प्रेरित साहित्य का निर्माण होना। इसी के कारण हमारी साहित्यिक परंपरा में अटूट निरंतरता दिखाई देती है और आधुनिकता में भी प्राचीनता की प्राणशक्ति प्रकट होती है।

कृष्ण कृपलानी ने भारतीय साहित्य की इसी एकरूपता को देखते हुए कहा है कि हमारा साहित्य मात्र एक दृश्य नहीं पैनोरोमा है। ऊपर से नीचे तक इसमें बहुत से लैंडस्केप दिखाई देते हैं मगर इन विभिन्न लैंडस्केपों के रहते हुए भी अर्थात् अनेकता में भी एक सैद्धांतिक एकता है जो विभिन्न विधाओं, रूपों या अभिव्यक्तियों में प्रतिफलित है।

विद्वानों ने यह परिलक्षित किया है कि हमारे साहित्य में मिथकों, मोटिफों, बिंबों या प्रतीकों के प्रयोग में एक व्यावहारिक संश्लेषण मिलता है जो भारतीय साहित्य की भारतीयता को उजागर करता है। इस भारतीयता की पहचान भारत के 5000 वर्ष के साहित्य की धारा में अवगाहन करके ही की जा सकती है। अभिप्राय यह है कि भारतीय साहित्य में भारतीयता के आविष्कार के लिए समूचे भारतीय साहित्य को स्वीकारना होगा।

डॉ. इंद्रनाथ चौधुरी ने भारतीय साहित्य में भारतीयता के कुछ मूलबिंदु निर्धारित किए हैं जिन पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

1. आध्यात्मिक दृष्टि, 2. रहस्यात्मक बिंबवाद, 3. अद्वैत, 4. आदर्शवाद और 5. मानवतावाद

1. आध्यात्मिक दृष्टि

भारतीय प्राच्य विद्या के जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने कहा है- 'India is always transcendental and beyond.' उनकी यह मान्यता भारतीय साहित्य की आध्यात्मिक अवधारणा पर भी लागू होती है। भारत शब्द का अर्थ ही है 'भा + रत' = 'प्रकाश में रत'। यहाँ प्रकाश का लाक्षणिक अर्थ 'प्रकाशपूर्ण ज्ञान, आत्मा ज्ञान या आध्यात्मिक ज्ञान' है। (भारतीय साहित्य की अवधारणा (लेख),पांडेय शशिभूषण शीतांशु)। वास्तव में इसी तत्व से भारत की मानसिकता का मूल स्वरूप तय होता है जो आध्यात्मिक है। मैथ्यू आर्नल्ड ने इसे भारत की 'निष्काम दृष्टि' (Indian Virtue of detachment) और गोयते ने व्यक्तिगत भावावेग से मुक्त भारतीय कला दृष्टि (India Art without individual passion) कहा है। गीता की शब्दावली में हम इसे 'अनासक्ति' कह सकते हैं। इस अनासक्ति के कारण ही भारतीय साहित्य में कवि अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करते दिखाई नहीं देते। भारतीय साहित्य व्यष्टि से समष्टि की ओर जाने की साधना है जो भारतीय मनुष्य की मनोचेतना में गहरी जमी हुई है। यह दृष्टि ईशोपनिषद् के इस कथन से प्रेरणा लेती है- ईशावास्यमिदं सर्वम् (सर्व ईश का वास है)। इसी बात को रवींद्रनाथ ठाकुर 'सीमार माझे असीम तुमि' कहकर व्यक्त करते हैं तथा निराला कहते हैं- "उस असीम में ले जाओ/मुझे न कुछ तुम दे जाओ।"

यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि आध्यात्मिक दृष्टि का अर्थ धार्मिक या सांप्रदायिक होना नहीं है। भारतीय साहित्य मूलत: मनुष्य के विषय में और मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ को मानता है- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इन्हें ही महाकाव्य का प्रयोजन माना गया है। भारतीय साहित्यकार इनका वर्णन कुछ इस प्रकार करता है कि अंतत: सौंदर्य और आनंद की स्थापना हो सके।

2. रहस्यात्मक बिंबवाद

भारतीय साहित्य में यह देखा गया है कि इसमें सौंदर्यबोध और आनंद की अभिव्यक्ति के साथ नीतिबोध जुड़ा हुआ है। भारत की सौंदर्य दृष्टि आध्यात्मिक ध्यान दृष्टि है जिसके उदाहरण के रूप में विभिन्न देव मूर्तियों को देखा जा सकता है। दरअसल भारतीय साहित्य में यथार्थ को बौद्धिकता के सहारे नहीं, संवेदना और अनुभूति के सहारे ग्रहण किया जाता है। इसीलिए इसमें रहस्यात्मक बिंबवाद की प्रवृत्ति पाई जाती है। रहस्यात्मक बिंबवाद का अर्थ है रूपकों के प्रयोग द्वारा वस्तुपक्ष को जटिल बनाते हुए सत्य की खोज, उदाहरण के लिए संत कबीर का यह रहस्यात्मक बिंब द्रष्टव्य है-

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल

ऋग्वेद के नारदीय सूक्त (जिसमें निषेध के द्वारा ब्रह्म की परिभाषा का प्रयास है) से लेकर आधुनिक युग में रवींद्रनाथ ठाकुर और सुब्रह्मण्य भारती आदि भारतीय भाषाओं के कवियों में यह रहस्यात्मक बिंबवाद बार-बार दिखाई देता है। इसमें विरोधाभास की सहायता से मूल सत्य की खोज की प्रवृत्ति पाई जाती है। यों कहा जा सकता है कि जिस तरह के मानचित्र का एक स्थायी हिस्सा हिमालय है उसी प्रकार भारतीयता का एक स्थायी हिस्सा आत्मा रूपी एक परम सत्य की खोज है, रवींद्रनाथ ठाकुर के शब्दों में-

पहले दिन के सूर्य ने प्रश्न किया था
सत्ता के नए आविर्भाव को
कौन तुम?
उत्तर नहीं मिला।

3. अद्वैत

वेदांत की अद्वैतवादी अवधारणा भारतीय साहित्य में निहित भारतीयता का एक प्रमुख आद्यरूप (Archetype) है। इसके अनुसार पारमार्थिक सत्ता एक मात्र सत्ता है जिसे प्राकृतिक सत्ता के द्वारा समझा जा सकता है। ब्रह्म और प्रकृति की इस दोहरी भावना को भारतीय साहित्यकारों ने अनेक रूपकों द्वारा स्पष्ट किया है। शिव और शक्ति या अर्द्धनारीश्वर भी इसी प्रकार का एक रूपक है। दरअसल यह एक ऐसा युग्म है जिसका एक पक्ष अविकारी है जिसे स्रष्टा, शिव, सत्य, काल या आत्मा कहा गया है। दूसरा पक्ष गतिशील है, परिवर्तनशील है जिसे सृष्टि या शक्ति कहा गया है। यह नए-नए रूपों में जन्म लेती है। आत्मा और देह ही पुरुष और प्रकृति है। इसलिए देह को लेकर यहाँ कोई पाप बोध नहीं हैं। शिव-पार्वती और राधा-कृष्ण की प्रेम

लीलाओं को यहाँ अनैतिक कहकर नकारा नहीं जाता बल्कि इसे आत्मा और प्रकृति की सदा चलने वाली लीला माना जाता है। निराला के शब्दों में-

नव जीवन की प्रबल उमंग,
जा रही मैं मिलने के लिए पार कर सीमा
प्रियतम असीम के संग।

देह प्रेम को यहाँ जीवन चक्र के लिए सहज माना गया है। इसीलिए 'कामसूत्र' में यह कहा गया है कि शयनकक्ष में सिरहाने मूर्ति होनी चाहिए। मलयालम के कवि शंकर कुरूप की कविता यहाँ द्रष्टव्य है-

मैंने उसके पैरों में लगे आलता का लाल रंग देखा
मगर मुझे लगा कि उषा शरमाई हुई है।
वह आसमान में अपनी अंगूठी छोड़ गई है।
मगर मुझे लगा, नहीं वह तो सूर्य है।

4. आदर्शवाद

भारतीय साहित्य के एक अन्य आद्यप्रारूप के तौर पर आदर्शवाद की पहचान की गई है। इंद्रनाथ चौधुरी ने लक्षित किया है कि भारतीय साहित्य में तनाव और संघर्ष है परंतु चरम विरोध नहीं है। यहाँ संघर्ष दो व्यक्तियों की टकराहट नहीं, इच्छा और आदर्श का संघर्ष है जिसमें अंततः आदर्श की विजय होती है। इसीलिए यहाँ ट्रेजिक साहित्य बहुत ही कम लिखा गया है। 'गोदान' में एक ही मृत्यु होती है मगर साथ ही सबका हृदय परिवर्तन होता है। वस्तुतः यहाँ मृत्यु नहीं होती। मृत्यु के बाद जीवन ही यहाँ नियम है। अर्थात् यहाँ पतझड़ और वसंत एक निरंतर/सतत् प्रक्रिया के दो अंग हैं।

भारतीय साहित्य के आदर्शवादी होने का दूसरा कारण चक्राकार काल की संकल्पना है, जिसके अनुसार जीवन और मृत्यु एक ही काल प्रवाह के दो बिंदु हैं और मृत्यु से नया जीवन आरंभ होता है। मोक्ष मिलने तक यह क्रम चलता रहता है (आवागमन से मुक्ति)। यही कारण है कि भारतीय साहित्य में ट्रेजडी नहीं बल्कि संपूर्ण जीवन का चित्र अंकित करने की परंपरा है। यदि भारतीय कवि दुख को जीवन का मूल तत्व बताते हैं तो इसे पाश्चात्य साहित्य में वर्णित मेलेंकली (यातना) नहीं समझना चाहिए बल्कि यह भारत की एक विशिष्ट मानसिकता है जो यातना और दुख के द्वारा भी जीवन के सकारात्मक पक्ष को खोजती है। यहाँ हम अज्ञेय की निम्नलिखित पंक्तियों को याद कर सकते हैं-

दुख सबको माँजता है
और
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किंतु
जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।

इसी प्रकार जब रवींद्रनाथ ठाकुर कहते हैं कि कली के भीतर खुशबू अंधी होकर रो रही है तो इस कथन में हमें दुख का चरम सुंदर रूप दिखाई पड़ता है। यही भारतीय साहित्य का अस्तित्व बोध है जहाँ दुख और आनंद, बुद्धि और अबौद्धिकता, अस्तित्व और विचार एक-दूसरे के पूरक हैं।

5. मानवतावाद

भारतीय साहित्य की भारतीयता का चरमोत्कर्ष उसके भव्य और प्रखर मानवतावाद में दिखाई देता है। उपनिषदों की कल्पना है कि मनुष्य स्वयं ईश्वर है- 'अहम् ब्रह्मास्मि'। महाभारत में मनुष्य को दुनिया का सबसे बड़ा रहस्य कहा गया है। चंडीदास हों या पंत, व्यास हों या वाल्मीकि, शरत हों या प्रेमचंद-सभी मनुष्य को सर्वोपरि सत्य मानते हैं। मनुष्य को देवताओं से भी श्रेष्ठ माना गया है। इसी कारण हमारे साहित्य में नायक का धीर होना अनिवार्य माना गया है। धीरता के द्वारा ही महाकाव्य का नायक हमारे लिए अनुकरणीय बनता है। भारतीय साहित्य में नायक पूजा को मनुष्य की असीम शक्ति के प्रति लेखक की श्रद्धा का निवेदन माना जा सकता है। मध्ययुगीन भक्ति काव्य में विश्वमानवता का आदर्श देखा जा सकता है तो दूसरी ओर तमिल के प्रसिद्ध काव्य 'तिरुक्कुळ' में तिरुवल्लुवर ने कहा है- जो भी हो मेरा पड़ोसी है, जहाँ भी हो मेरा देश है। अर्थात् इस मानवतावाद में न कोई पराया है और न ही परदेश है। इसी का नाम वसुधैव कुटुंबकम् है। इस मानवतावाद के दो आधारतत्व हैं। एक त्याग और दूसरा भक्ति। वास्तव में मानवतावाद की यह व्यापक धारणा नैतिकता और सौंदर्यबोध पर आधारित है जिसके द्वारा मनुष्य में विद्यमान देवत्व को प्रकट किया जाता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि एक 'सर्वभारतीय संवेदना' भारतीय साहित्य के केंद्र में स्थित है। आधुनिक भारतीय साहित्य भले ही विभिन्न भाषाओं

में लिखा जाता हो लेकिन उसमें भी यह संवेदना दिखाई पड़ती है जिसमें वे मूल्य निहित हैं जो भारतीय सांस्कृतिक इतिहास और अनुभव की उपलब्धियाँ हैं। ये मूल्य ही भारतीय साहित्य की भारतीयता के नियामक तत्व हैं।

[5] भारतीय साहित्य की अवधारणा

मनुष्य विविध देशकाल में भाषा, साहित्य और संस्कृति का सृजन और विकास करता आया है जिसमें अनेक प्रकार की विविधताएँ, भिन्नताएँ और समानताएँ पाई जाती हैं। इन भिन्नताओं और समानताओं का अध्ययन क्रमशः व्यतिरेकी अध्ययन और तुलनात्मक साहित्य की दिशा में प्रेरित करता है। मैथ्यू आर्नल्ड ने इसी आधार पर तुलनात्मक विश्व साहित्य की संकल्पना प्रस्तुत की थी। उनके अनुसार आलोचक को विश्व साहित्य में जो कुछ भी श्रेष्ठतम और महनीय है उसका अध्ययन, मनन और प्रचार करना चाहिए ताकि प्राणवान और सत्य विचारों की धारा प्रवाहित की जा सके। ऐसा करने से विभिन्न भाषाओं के साहित्य में विद्यमान समान मूल्यों को खोजा जा सकता है।

भारतीय साहित्य की पहचान : एकता और आत्मज्ञान

विश्व साहित्य की भांति ही तुलनात्मक अध्ययन का एक बहुत व्यापक क्षेत्र भारतीय साहित्य है। वस्तुतः साहित्य मनुष्य की आंतरिक अनुभूतियों और संवेदनाओं का अभिव्यक्त रूप होता है। यह माना जाता है कि मानव की आंतरिक भावनाएँ समान होती हैं। उसकी महसूस करने तथा भाव प्रकट करने की शक्ति भी सार्वभौमिक है। शोक, हर्ष, घृणा, क्रोध, प्रेम और वात्सल्य जैसे अनेक भाव विश्व मानव में समान पाए जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप साहित्य का मूलभूत ढाँचा सभी भाषाओं में एक-सा ही दिखाई देता है। यदि भारत की बात की जाए तो यह ध्यान में रखना होगा कि यह देश बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है अर्थात् भारत की अलग-अलग भाषाओं में जो साहित्य लिखा गया है या लिखा जा रहा है उसमें थोड़ी बहुत भिन्नता के साथ अधिकतर एकता या समानता की स्थिति दिखाई पड़ती है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य की यह एकता या समानता ही भारतीय साहित्य की अवधारणा का केंद्रबिंदु है। इसी के साथ पांडेय शशि भूषण शीतांशु का यह मत भी जोड़ लें तो बात और भी परिपूर्ण हो जाएगी कि "भारतीय साहित्य का अर्थ हुआ आत्मज्ञान को सृजित करने, प्रस्तुत करने और प्रदान करने वाला साहित्य।"

भारतीय साहित्य का विस्तार/व्यापकता

भारतीय साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक है। प्रो. दिलीप सिंह के अनुसार, "भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में जिन 22 भाषाओं और बोलियों का उल्लेख है, उनका साहित्य अत्यंत संवृद्ध है और यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो इन सभी भाषाओं का राष्ट्रीय चेतना और उसमें आने वाले परिवर्तनों के साथ एक-सा संबंध रहा है तथा ये सभी राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे परिवर्तनों से एक-सा प्रभावित रही हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की सभी भाषाएँ और उनका साहित्य भी एकता के सूत्र में बंधा हुआ प्रतीत होता है इसीलिए भारत की इन भिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्य को भारतीय साहित्य कहा गया है।"

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि साहित्यिक धारा, विचारधाराएँ, प्रवृत्तियाँ और सामाजिक सरोकार के धरातल पर भारतीय साहित्य में जो समानताएँ मिलती हैं उन्हें 'भारतीयता' (Indianness) के तत्व या घटक कहा जा सकता है।

भारतीय साहित्य और सामासिक संस्कृति

भारतीय साहित्य की यह अंतर्निहित भारतीयता भारत की संस्कृति का प्रतिबिंब है। भारत की सांस्कृतिक विभिन्नता में विद्यमान एकता को महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सर्वपल्ली राधाकृष्णन और डॉ. राजेंद्र प्रसाद आदि ने बड़ी सूक्ष्मता से पहचाना है। ऊपर से हमें भारत के अलग-अलग प्रांतों और समुदायों की संस्कृति में कुछ भेद दिखाई देते हैं लेकिन यदि गहराई से देखा जाए तो संस्कृति के मूलाधार भारत के सभी समुदायों में समानता लिए हुए दिखाई देते हैं। यदि रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, मेले-त्योहार, शिष्टाचार, खानपान को संस्कृति का सामान्य आधार माना जाए तो भारतीय साहित्य की तरह ही भारतीय संस्कृति की भी अवधारणा स्पष्ट हो सकती है। मुस्लिम शासकों तथा यूरोपियन शासकों के आगमन से भारतीय संस्कृति को कुछ नए आयाम भी मिले। ऐसी स्थिति में भारतीय संस्कृति का स्वरूप केवल हिंदू संस्कृति तक सीमित न रहकर विस्तृत हुआ। ये बाहरी संस्कृतियाँ क्रमशः भारत की मूल संस्कृति में घुलने-मिलने लगीं और मिली-जुली

संस्कृति का अनूठा मिश्रण तैयार हुआ जिसका प्रभाव सभी भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य पर पड़ा।

यह स्पष्ट है कि भाषा और साहित्य दोनों के भीतर उस भाषा समाज के सांस्कृतिक तत्व गुँथे रहते हैं। इसलिए तुलनात्मक भारतीय साहित्य का एक आयाम इन सांस्कृतिक तत्वों की समानता और विषमता के विवेचन का भी हो सकता है। जैसा कि, राबर्ट फ्रॉस्ट ने कहा था कि "मनुष्य के स्वभाव में चिंतन की प्रवृत्ति के साथ-साथ तुलना की प्रवृत्ति भी जैविक स्तर पर ही निहित होती है इसलिए साहित्य के क्षेत्र में भी तुलना स्वाभाविक है। तुलनात्मक भारतीय साहित्य इसी प्रवृत्ति का प्रतिफलन है।"

भारतीय साहित्य : परंपरा का महत्व

भारतीय साहित्य के स्वरूप निर्धारण में विभिन्न भाषाओं के साहित्य की परंपरा के अध्ययन का बड़ा महत्व है उदाहरण के लिए जब हम सूरदास के काव्य का अध्ययन करते हैं तो पीछे जाकर उस परंपरा को भी देखते हैं जो मध्यकाल में एक व्यापक प्रवृत्ति के रूप में पूरे भारत को उसकी सभी भाषाओं को प्रभावित किए हुए थी। इसी प्रकार मध्यकालीन रामकथा की परंपरा को समझने के लिए वाल्मीकि की 'रामायण', कालिदास के 'रघुवंश' और भवभूति के 'उत्तररामचरित' को देखना जरूरी है। यही नहीं आधुनिक काल में भी अनेक साहित्यिक कृतियाँ अपनी मूल प्रेरणा प्राचीन वाङ्मय से प्राप्त करती हैं। यही कारण है कि भारतीय साहित्य के आकर ग्रंथों के रूप में 'रामायण', 'महाभारत' और 'कथा सरित्सागर' का समान रूप से उल्लेख किया जाता है। परंपरा के अध्ययन से ही हम उन कारणों और परिणामों की सटीक व्याख्या कर पाते हैं जो विभिन्न साहित्यों में पाई जाने वाली एक समान प्रवृत्तियों से जुड़े हैं। हम देखते हैं कि नवजागरण काल में सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में कमोबेश एक जैसी आधुनिक चेतना का प्रसार हुआ। यही वह काल था जब भारत ने सदियों पुरानी सामाजिक और राजनैतिक गुलामी के कारणों को पहचानकर उनसे मुक्त होना शुरू किया। बंगला में बंकिमचंद्र चटर्जी और रवींद्रनाथ टैगोर, हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र, तमिल में सुब्रह्मण्य भारती और तेलुगु में गुरजाडा अप्पाराव जैसे रचनाकारों की एक समान चेतना का आधार यह नवजागरण था। इसी प्रकार जिस काल में हिंदी साहित्य छायावादी चेतना से अनुप्राणित था उसी काल में तेलुगु की भाववादी कविता भी वैसी ही चेतना से स्फूर्त थी। हिंदी में प्रगतिवाद और तेलुगु में अभ्युदय का आगमन एक साथ हुआ- अन्य सभी भारतीय भाषाओं में भी ऐसा ही हुआ। भारतीय साहित्य का अध्ययन करते हुए हम ऐसे ही समान प्रेरणा बिंदुओं, सरोकारों और प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हैं।

कुल मिलाकर जैसा कि सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने आर्केस्ट्रा का दृष्टांत देकर समझाया था कि जिस प्रकार भिन्न-भिन्न वाद्य लेकर वाद्यवृंद मंच पर आता है तो उसमें भिन्नता दिखाई देती है लेकिन जब सभी वादक अपने-अपने वाद्य पर एक ही राग छेड़ते हैं तो भिन्नता का यह भाव मिट जाता है और एकता स्थापित हो जाती है। भारतीय साहित्य वस्तुतः साहित्य के माध्यम से इसी सामासिक संस्कृति अथवा भारतीयता की खोज करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. चौधुरी, इंद्रनाथ (1983), तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, चेन्नई : दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

2. (सं) यादव, जगदीश (2011), भारतीय साहित्य : अवधारणा, समन्वय एवं सादृश्य, रायपुर : सिंघई पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

3. (सं) तिवारी, सियाराम (2009), भारतीय साहित्य की पहचान, पटना : नालंदा खुला विश्वविद्यालय

4. (सं) सिंह, दिलीप एवं ऋषभ देव शर्मा, शोध प्रविधि; चेन्नई : दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

5. चौहान, शिवदान सिंह, आलोचना के सिद्धांत, नई दिल्ली : स्वराज प्रकाशन

6. वाचक्नवी, कविता (2009), कविता की जातीयता, इलाहाबाद : हिंदुस्तान एकेडेमी

– 208-ए, सिद्धार्थ अपार्टमेंट्स, गणेश नगर, रामताप्पुर, हैदराबाद-500013

❑❑❑

हिंदी-मराठी साहित्य में राजर्षि शाहू जी महाराज के शिक्षण विषयक विचार एवं प्रासंगिकता

वाढेकर रामेश्वर महादेव

महाराष्ट्र की पृष्ठभूमि वैचारिक रहीं जिसमें फुले, शाहू, अंबेडकर विचारधारा महत्वपूर्ण रही। शिक्षा के क्षेत्र में सबसे पहले जागृति फुले ने की। इसी कार्य से प्रेरणा लेकर राजर्षि शाहू, अंबेडकर, कर्मवीर भाऊराव पाटील, पंजाबराव देशमुख आदि व्यक्तियों ने शिक्षा के क्षेत्र में काम किया।

भारत में लगभग पाँच सौ बाइस संस्थान थे, जिनमें बड़ोदा एवं करवीर लोककल्याणकारी रिसासत थी। जिनमें सही मात्रा में लोकशाही दिखाई देती है, इस कार्य को देखकर अंबेडकर ने करवीर रियासत के बारे में कहा था कि, "सही मात्रा में लोकशाही कैसी होनी चाहिए इसका आदर्श उदाहरण करवीर रियासत है।"

राजर्षि शाहू महाराज के कार्य को सामने रखकर कवि, चिंतक, इतिहासकार ने किताब लिखी। बहुत मात्रा में वैचारिक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें 'राजर्षि शाहू छत्रपती' धनंजय कीर, 'राजर्षि शाहू महाराज विचार आणि कार्य'-शिरीष पवार, 'समाज क्रांतिकारक राजर्षि शाहू'- सुवर्णा नाईक निंबाळकर, 'राजर्षि शाहू छत्रपती जीवन व कार्य'- जयसिंगराव पवार आदि हैं।

मराठी-हिंदी में विधा के रूप में पुस्तकें लिखी गई हैं, जिनमें 'लोकराजा शाहू'- (कादंबरी) श्याम पचिंद्रे, 'राजर्षि', 'रयतेचा विश्वस्त राजा शाहू महाराज' - (कहानी संग्रह, मराठी) -पद्मा पाटील, 'मोल करो तलवार का', 'राजा कालस्य कारणम्' (कहानी संग्रह हिंदी)- पद्मा पाटील, 'छत्रपति शाहू सचित्र जीवनी' -विमल कीर्ति आदि प्रमुख हैं। इसी के साथ 'लोकराजा छत्रपति शाहू'- रमेश जाधव, 'छत्रपति शाहू जी महाराज संघर्ष और इतिहास' - श्यामसुंदर सिंह 'शाहू महाराज के ऐतिहासिक भाषण' आदि के माध्यम से शाहू के शिक्षण विषयक विचार अभिव्यक्त हुए हैं।

शिक्षा :

'महात्मा फुले' को शिक्षण सम्राट नाम से को जाना जाता हैं, इसी कार्य से प्रेरणा लेकर राजर्षि शाहू महाराज ने करवीर में शिक्षा को महत्त्व दिया। समाज में परिवर्तन लाना है, तो शिक्षा महत्वपूर्ण है, इसी कारण उन्होंने भारत में सबसे पहले 24 जुलाई 1917 को कानून बनाकर प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क की शुरूआत की। प्रतिवर्ष एक लाख रुपये शिक्षा पर खर्च करने का निर्णय लिया जो लोग बच्चों को स्कूल नहीं भेजते उन्हें दंड दिया जो बच्चे काम की वजह से दिन में स्कूल नहीं आ सकते थे उनके लिए रात की पाठशाला शुरू की गई।

वर्तमान में शिक्षा की बहुत बुरी हालत दिखाई देती है। प्राथमिक स्कूल में शिक्षक नहीं हैं, जो हैं वे पढ़ाते नहीं। इसी कारण गरीब लोगों के बच्चे शिक्षा से वंचित रहते हैं। जिनके पास पैसे हैं वे प्राइवेट स्कूल में बच्चों को पढ़ा रहे हैं। इसी वजह से प्राथमिक स्कूल बंद हो रहे हैं। भारत सरकार ने प्राथमिक शिक्षा सक्ति तो 2010 में की। वही काम राजर्षि शाहू महाराज ने 1917 में करके दिखाया इसी से शिक्षा विषयक शाहू के

विचार आज भी कितने प्रासंगिक हैं, समझ में आता है।

आरक्षण

आरक्षण विषयक विचार सबसे पहले महात्मा फुले ने अंग्रेजों के सामने 1822 में रखे। लेकिन उसे प्रत्यक्ष रूप में राजर्षि शाहू महाराज अस्तित्व में लाए। आरक्षण उन्होंने किसी जाति पर आधारित नहीं दिया। जो समाज शैक्षणिक, सामाजिक मगास है उन्हें शामिल किया। बहुजनों के लिए पचास प्रतिशत आरक्षण 27 जुलाई 1902 में कानून बनाकर दिया। इसी कार्य की वजह से उन्हें 'आरक्षण का जनक' कहा जाता है। जिस तरह से शाहू महाराज ने जाति के आधार पर आरक्षण नहीं दिया इसी रूप में अंबेडकर ने जाति के नाम पर आरक्षण नहीं दिया। जो समाज शैक्षणिक, सामाजिक मागास है, उन्हें आरक्षण दिया।

जीवन में शिक्षा जितनी महत्वपूर्ण है, उतना ही बहुजनों के लिए आरक्षण...। एकाध समय खाना नहीं मिलेगा तो चलेगा लेकिन शिक्षा मिलनी चाहिए। शिक्षा से ही समाज के सभी द्वार खुलते हैं। शाहू महाराज के शिक्षा एवं आरक्षण विषयक विचार पद्मा पाटील कहानी के माध्यम से बताती हैं –

"हम आप सबके सामने इच्छा प्रकट करते हैं कि, आप कुछ भी करें...जीवन में संघर्ष करें... स्वयं को कष्ट में डालें.... पर शिक्षा अवश्य ग्रहण करें। शिक्षा के पश्चात् आपके लिए हर क्षेत्र आपने आप खुला होगा।"[1]

इसी से शिक्षा एवं आरक्षण का महत्व समझ में आता है। वर्तमान में आरक्षण को लेकर आंदोलन निकल रहे हैं, जिसमें 'गुजर'–राजस्थान, 'पटेल'–गुजरात, 'जाट'–हरियाणा, 'मराठा'–महाराष्ट्र, आदि हैं। वह वर्ग बड़ी मात्रा में प्रबल हैं लेकिन उसमें कुछ पिछड़े लोग होंगे उनको आरक्षण दिया जा सकता है क्या? इसके बारे में सोचने की जरूरत है। इस वर्ग के अलावा भारत में कई वर्ग हैं जो बहुत प्रबल हैं लेकिन उस वर्ग में कुछ ऐसे लोग हैं जिन्हें एक समय की रोटी तक प्राप्त नहीं है। ऐसे लोगों के बारे में सोचने की जरूरत है, वह चाहे किसी भी जाति का क्यों ना हो।

छात्रावास

राजर्षि शाहू महाराज को 'छात्रावास का जनक' कहा जाता है। उन्होंने सबसे पहले छात्रावास निर्माण किए। करवीर में शिक्षा को लेकर बहुत उदासीनता दिखाई देती थी, उसे समझकर सभी जातियों के लिए छात्रावास का निर्माण किया गया। लेकिन सवर्ण लोग बहुजनों का शोषण करते थे, उन्हें नीच जाति का कहकर उनके साथ बुरा व्यवहार करते थे। इसी वजह से शाहू महाराज ने जातिनिहाय छात्रावास निकाले। सभी जातियों को शिक्षा के प्रवाह में लाए। अंत में जातिनिहाय छात्रावास बंद भी किए।

राजर्षि शाहू महाराज छात्रावास के लिए अर्थसहाय्य करते थे। इतना ही नहीं वह काम किस तरह से चल रहा है, छात्रावास समिति के लोग किस तरह से काम कर रहे हैं, यह जानकारी रखते थे। छात्रों के प्रति शाहू का कितना प्रेम था इस वक्तव्य से समझ में आता है–

"छात्रावास की समितियों को छात्र व्यवस्था के साथ ही छात्र की प्रगति के लिए ही निरंतर काम करना चाहिए।"[2]

राजर्षि शाहू महाराज के करवीर रियासत के साथ ही 'प्रिंस शिवाजी मराठा छात्रावास', (पुणे), 'श्रीउदासी मराठा छात्रावास', (नाशिक) आदि क्षेत्र में छात्रावास का निर्माण किया। शाहू महाराज ने कुल मिलाकर बीस छात्रावासों का निर्माण किया। इसी का परिणाम बहुजन समाज प्रवाह में आया। वर्तमान समय में बच्चों के क्या हाल हो रहे हैं, समझ में आ रहा हैं। बच्चों के पास पैसे न होने के कारण बच्चे शिक्षा छोड़कर घर जा रहे हैं। इसी घटना को देखकर शाहू महाराज की छात्रावास विषयक भूमिका कितनी महत्वपूर्ण थी समझ में आती है।

छात्रवृत्ति

राजर्षि शाहू महाराज धर्मनिरपेक्ष राजा थे। उन्होंने करवीर में 20 नवंबर 1919 में कानून बनाकर सभी जातियों के लिए छात्रवृत्ति शुरू की। जो समाज सामाजिक, शैक्षणिक दृष्टि से मगास है तथा शिक्षा के लिए पैसे की जरूरत है ऐसे समाज को छात्रवृत्ति दी। शाहू महाराज ने किसी भी जाति से द्वेष नहीं किया। लेकिन करवीर रियासत में उनके ऊपर ब्राह्मण लोगों ने कई इल्जाम लगाए। ब्राह्मण लोक प्रशासन में बहुत मात्रा में थे इसी वजह से उनकी जगह कम की एवं बहुजनों को

प्रतिनिधित्व दिया। लेकिन उन्होंने ब्राह्मणवादी विचारसरणी का विरोध किया। ब्राह्मण जाति का नहीं। इस कारण तो ब्राह्मण व्यक्ति 'वासुदेव सदाशिव भिडे' को दरमहा छात्रवृत्ति दी। इसी के साथ चिमा जी पाटील-कृषि अधिकारी, सी. आर. तावडे- शिक्षक तज्ञ, भाई माधवराव- समाजसुधारक, बाबासाहेब अंबेडकर- संविधान शिल्पकार आदि व्यक्ति छात्रवृत्ति के कारण भविष्य में महत्वपूर्ण कार्य कर सके।

वर्तमान युग में शिक्षा लेना एक कठिन काम हो गया है। शिक्षा के लिए पैसों की जरूरत होती है, पैसे न होने के कारण शिक्षा अधूरी छोड़ देनी पड़ती है। इसीलिए वर्तमान में जिस बच्चे को आर्थिक सहायता की जरूरत हो उन्हें सरकार द्वारा योजना शुरू करनी चाहिए। वह बच्चा किसी भी जाति का क्यों ना हो। इसी तरह से काम करना जरूरी है।

स्त्री शिक्षा में शाहू महाराज का योगदान

स्त्री शिक्षा की शुरुआत सावित्रीबाई फुले, महात्मा फुले ने की। इसी वजह से शिक्षक दिन के सही हक्कदार वही हैं। उन्ही का आदर्श लेकर राजर्षि शाहू महाराज ने स्त्री शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। जो पिछड़ी जाति की स्त्री है इसके लिए 1919 में कानून बनाकर स्त्री को भोजन एवं रहने की मुफ्त में सुविधा दी। उन्हें छात्रवृत्ति दी। इसी वजह से 'आनंदीबाई जोशी' महाराष्ट्र की प्रथम डॉक्टर बन सकी।

स्त्री को शिक्षा में स्थान देना चाहिए तभी समाज में परिवर्तन होगा। समाज में सम्मान मिलेगा। इसी कारण स्त्री की शिक्षा महत्वपूर्ण है। स्त्री शिक्षा विषयक शाहू महाराज के विचार किस तरह के थे, इसके बारे में अशोक गोविंद कहते है-

"स्त्री शिक्षा के कारण परिवार, समाज विकसित होता है। इसी के साथ स्त्री को समाज में प्रतिष्ठा एवं सम्मान मिलता है।"[3] इसी से स्त्री शिक्षा का महत्व समझ में आता है, वर्तमान में स्त्री शिक्षा को लेकर कोई गंभीर नहीं है, इसी वजह से शिक्षा में पुरुष की तुलना में स्त्री का प्रमाण कम है। स्त्री शिक्षा को लेकर सरकार को योजना शुरू करनी चाहिए। तभी स्त्री शिक्षा के प्रवाह में आ सकती है। तभी फुले, शाहू, अंबेडकर के स्वप्न पूरे हो सकेंगे।

इस तरह से शाहू महाराज ने अपने समय में शिक्षा क्षेत्र में प्रगति की, जो आज प्रसंगिक लगती है। उनके विचार की वर्तमान में जरूरत है। यह समझ में आता है। ऐसे महान व्यक्ति का देहांत 6 मई 1922 में हुआ। एक युग का अंत लेकिन उनके विचार हमें हमेशा के लिए प्रोत्साहन देते रहेंगे।

संदर्भ

1. पद्मा पाटील- 'मोल करो तलवार का' पृ. 10
2. जयसिंगराव पवार- 'राजर्षि शाहू जीवन व कार्य' पृ. 30
3. अशोक गोविंदराव- 'छत्रपती शाहू' पृ. 15

– हिंदी विभाग, डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

❑❑❑

हिंदी तथा बंगला भाषाओं में कारक चिह्न : एक विश्लेषण

डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव

भाषा मानव युग में उच्चरित वाक्-ध्वनियों की समाज द्वारा स्वीकृत यादृच्छिक प्रतीकों की ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा उस समाज के क्रिया-कलाप संपन्न होते हैं। भाषा साध्य भी है और साधन भी। भाषा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्रख्यात भाषाविद् वांद्रियेज का कहना है कि- "विश्व में जितने व्यक्ति है, उतनी ही भाषाएँ भी हैं।" इसका मुख्य कारण है कि किन्हीं दो व्यक्तियों के बोलने का ढंग एक-सा नहीं होता। इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर भाषा के अनंत रूप हो जाते हैं।

भाषा की आंतरिक रचना का संबंध विशेषत: वक्ता के मनोविज्ञान पर आधारित होता है। किसी भी मानवीय भाषा का कारक-विधान, शब्द शक्तियाँ, पदों की योग्यता, आकांक्षा और सन्निधि तथा रागात्मक तत्व-विवृति, बल, सुर और अनुतान आदि आंतरिक धरातल पर अपेक्षित अर्थ की उद्भावना और भावों का प्रस्फुटन करते हैं। जबकि भाषा की शब्द-योजना, प्रतीक विधान तथा रूपात्मक प्रकृति का संबंध भाषा की बाह्य रचना से होता है।

विश्व की सभी भाषाएँ समान हैं और मानव का मस्तिष्क सभी भाषाओं के साथ जुड़ा है। मानव किसी भी मानवीय भाषा को सीखने में सक्षम होता है, जबकि मानवेतर प्राणी मानवीय भाषा को नहीं सीख सकता है।

प्रत्येक भाषा के अपने विशेष नियम एवं पद्धति को ही भाषा का व्याकरण कहते है। व्याकरण वह विधान है जिसके द्वारा हम भाषा को बोल या लिख सकते हैं। अत: इस लेख के माध्यम से हिंदी तथा बंगला भाषाओं के कारक चिह्नों के प्रयोग पर विशेष बल दिया गया है।

कारक शब्द की निष्पत्ति 'कृ' धातु से हुई है और इसमें 'णक्' प्रत्यय का योग है। इस प्रकार बने कारक शब्द का अर्थ है- करने वाला। व्याकरण में क्रिया के निष्पादक को कारक कहा जाता है। इस प्रकार कारक का स्पष्ट संबंध कार्य से है और कार्य को करने, क्रिया से ही संभव है इसलिए कर्ता और क्रिया के निष्पादन में जो विभक्तियाँ सहायक सिद्ध हैं उनके अर्थ को कारक कहा जा सकता है। संस्कृत के वैयाकरण ने कारक के छह भेद ही माने हैं- कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण। संबंध और संबोधन को संस्कृत में कारक नहीं माना जाता। ऐसा मानने का तर्क यह दिया जाता है कि संबंध और संबोधन का क्रिया से सीधा संबंध नहीं होता। संबंध कारक का संबंध केवल संज्ञा और सर्वनाम से होता है क्रिया से नहीं। अंत: बंगला भाषा के कारक-चिह्न को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है:-

	कारक	विभक्ति	विभक्ति रूप
1.	कर्ता कारक	प्रथमा	शून्य
2.	कर्म कारक	द्वितीया	के, रे
3.	करण कारक	तृतीया	दारा, दिया, कोरतृक
4.	निमीतोकारक / संप्रदान	चतुर्थी	के, रे, निमीतो
5.	अपादान कारक	पंचमी	होइते, थेके, चेये, उपेख्या, तुलोनय
6.	संबंध पद	षष्ठी	रे, ऐर
7.	अधिकरण कारक	सप्तमी	ई, ते, माझे, मोध्येय, पासे, कोछे, ऊपोरे
8.	संबोधन कारक	अष्ठमी	शून्य

कर्ताकारक

हिंदी 'ने'

हिंदी में कर्ता कारक का चिह्न 'ने' है, लेकिन इसका प्रयोग सर्वत्र नहीं होता। 'ने' सकर्मक धातुओं बोल, भूल आदि कुछ अपवाद हैं। नहा, खाँस, छींक आदि अकर्मक हैं, किंतु अपवादत: इसके साथ आता है) के भूतकालिक कृदंतों से बने कालों के साथ (मोहन ने पत्र लिखा, मैने राजा को देखा) आता हैं।

बंगला ए, य, ते

कर्ता कारक के एक वचन में साधारणत: कोई विभक्ति नहीं लगती। सुनीति कुमार चटर्जी एवं सुकुमार सेन के अनुसार- "कर्ता के अनिर्दिष्ट होने पर 'ए' विभक्ति पूर्वी बंगला में होती है।"

हिंदी एवं बंगला दोनों भाषाओं के कर्ता कारक में सर्वत्र कारक चिह्नों का प्रयोग नहीं होता। हिंदी कर्ता कारक में 'ने' विशिष्ट चिह्न है किंतु बंगला भाषा में अन्य चिह्नों का भी प्रयोग किया जाता है।

हिंदी में 'ने' का प्रयोग कर्ता के कर्म में ही प्रयोग होता है, किंतु बंगला भाषा में कर्ता के अनिर्दिष्ट होने पर कर्ता के कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य एवं भाववाच्य में (ए, य, ते, के, र आदि का) प्रयोग होता है।

कर्म कारक, संप्रदान कारक

वाक्य में जिस संज्ञा या सर्वनाम पद पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है। वह कर्म कारक कहलाता है। इसका विभक्ति चिह्न 'को' है। जैसे- अध्यापिका ने छात्रों को पढ़ाया। कर्मकारक की अभिव्यक्ति 'से' से भी होती है। उदाहरण - मैंने लड़के से रास्ता पूछा।

संज्ञा के उस रूप को संप्रदान कारक कहा जाता है, जिसके लिए कोई क्रिया की जाती है। इस कारक का चिह्न है- 'को'।

उदाहरण-

मैंने मोहन को पुस्तक दी।

अनुराधा ने नौकर को पैसे दिए।

बंगला में कर्म-संप्रदान कारक

कर्म जब अप्राणिवाचक होता है, तब विभक्ति का चिह्न 'के' लुप्त रहता है। कर्म कारक में कभी-कभी 'के' की जगह 'रे' लगाया जाता है। जैसे-

"के तारे बुझाइते पारे जदि न बुझे।" (बंगला)

"कौन उसको समझ सकता है यदि (वह खुद) न समझा दे।" (हिंदी)

छेलेटी बई पड़े (बंगला)

लड़का किताब पढ़ता है (हिंदी)

के, य, ए, ऐरे, रे

उपर्युक्त पाँच चिह्नों का प्रयोग हिंदी के कर्म संप्रदान के चिह्नों के स्थान पर किया जाता है। इनमें सर्वाधिक प्रयोग के, का होता है। अन्य चिह्नों का प्रयोग सीमित है। कर्म-कारक में कभी-कभी विभक्ति चिह्न का प्रयोग नहीं होता है, लेकिन संप्रदान कारक में विभक्ति-चिह्न का प्रयोग सर्वदा होता है। हिंदी कर्मकारक एवं संप्रदान कारक के चिह्न को के संबंध में जिन मतों का विवेचन किया गया है, लगभग वही मत बंगला कर्म संप्रदान कारक के चिह्न के संबंध में भी मिलते हैं।

करण कारक- हिंदी से

करण कारक संज्ञा के उस रूप को कहा जाता है, जिससे क्रिया के साधन का बोध होता है। अत: इस कारक का चिह्न है- 'से' हे।

उदाहरण- रवि मेरी कलम से लिख रहा है।

बच्चे गेंद से खेल रहे हैं।

करण कारक- बंगला से

बंगला भाषा में करण कारक के चिह्न मुख्यत: 'दारा', दिया, कर्तृक है।

उदाहरण-

हाथ दिए काज करो (बंगला)

हाथ से काम करो। (हिंदी)

चछु दारा दिखो (बंगला)

आँख से देखो (हिंदी)

छुरी दिए केक काटो (बंगला)

चाकु से केक काटो (हिंदी)

सुनीति कुमार चटर्जी ने बंगला भाषा के कारक चिह्नों पर विचार करते हुए बताया है कि बंगला में, करण कारक के चिह्न 'ए', 'दारा', 'दिया', 'कर्तृक', 'करिया' हैं। इनमें से 'दारा' एवं 'कर्तृक' 19वीं शताब्दी में अधिकता से प्रयुक्त होने लगे। ये दोनों तत्सम् शब्द साहित्यिक भाषा में प्रयुक्त होते हैं। 'करिया' एवं 'दिया' का प्रयोग बोलचाल की भाषा में होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि हिंदी और बंगला करण कारक के चिह्न परस्पर भिन्न हैं। उनके मूल शब्द भी भिन्न हैं, कर्म कारक की भाँति मूलत: एक नहीं हैं।

अपादान कारक- हिंदी में

अपादान कारक संज्ञा के उस रूप को कहा जाता है जिससे किसी के अलग होने की सूचना मिलती है। इस कारक का चिह्न है- से।

उदाहरण- पेड़ से पत्ता गिरा।

सोहन स्कूल से आया।

अपादान कारक- बंगला से

बंगला में अपादान कारक के लिए 'हइते', 'थेके', 'चेये', 'ते', 'ए' आदि का प्रयोग होता है। लेकिन उपर्युक्त सभी कारक के चिह्नों का प्रयोग के स्तर पर पूर्णत: समान नहीं होता है। इनमें 'हइते' का प्रयोग प्राय: साहित्यिक भाषा में होता है। 'चेये' शब्द का प्रयोग केवल तुलना में किया जाता है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित वाक्यों को देखा जा सकता है।

उदाहरण-

चोखे थेके जल पोड़छे। (बंगला)

आँख से पानी गिर रहा है। (हिंदी)

राम श्यामेर चेय बोड़ो। (बंगला)

राम श्याम से बड़ा है। (हिंदी)

गाछ हइते फल पड़िलो। (बंगला)

पेड़ से फल गिरा। (हिंदी)

घरे थिके बेरिये जाओ। (बंगला)

घर से बाहर निकल जाओ। (हिंदी)

बंगला में करण कारक की भाँति अपादान कारक को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न शब्दों को जोड़ा जाता है, उसमें हिंदी की भाँति विभक्ति चिह्न नहीं होते। अत: इनका स्वतंत्र होना स्वाभाविक है।

संबंध कारक- हिंदी से

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका संबंध किसी दूसरी संज्ञा से बताया जाता है, उसे संबंध कारक कहा जाता है। यह परसर्ग विशेषणात्मक है। इसका संबंध क्रिया से न होकर संज्ञा से होता है। संबंध कारक का चिह्न का, के, की हैं।

उदाहरण-

राम का बेटा

लड़के का कपड़ा।

संबंध कारक- बंगला से

बंगला भाषा में संबंध कारक के चिह्न 'र' और 'एर' है। कार्य < केरअ > केर, कार, कर। ए, र आदि इन्हीं का विकसित रूप है।

उदाहरण-

सोनार आंगिठी (बंगला)

सोने की अंगूठी (हिंदी)

चोखेर पाता पोडछेना (बंगला)

आँखों की पलक नहीं गिर रही है। (हिंदी)

अधिकरण कारक- हिंदी से

संज्ञा के जिस रूप से क्रिया के आधार (स्थान) का बोध होता है, उसे अधिकरण कारक कहा जाता है। अधिकरण कारक के दो चिह्न हैं- में, पर।

'में' सामान्य रूप से किसी के अंदर होने का अर्थ देता है।

उदाहरण-

मछली जल में है।

हम कमरे में हैं।

'पर' सामान्य रूप से किसी के ऊपर होने का अर्थ देता है।

उदाहरण-

रमेश पलंग पर सो रहा है।

कलम मेज पर है।

अधिकरण कारक- बंगला से

बंगला में अधिकरण कारक में 'ते', 'य', 'ए' प्रयुक्त होते हैं। आधुनिक बंगला एवं असमिया भाषा में 'त' रूप मिलता हैं इसके विपरीत परिनिष्ठित बंगला में 'ते' रूप मिलता है। जैसे-

आमरा ऐइ ग्रामे बास करी। (बंगला)

हम इस गाँव में रहते हैं। (हिंदी)

मेयरा विद्यालय पड़े। (बंगला)

लड़कियाँ विद्यालय में पढ़ती हैं। (हिंदी)

छेलेरा रास्ताये खेला करे। (बंगला)

लड़के रास्ते पर खेलते हैं। (हिंदी)

संबोधन कारक- हिंदी से

संज्ञा के जिस रूप से उसे पुकारना या बुलाना सूचित होता है, उसे संबोधन कारक कहा जाता है।

उदाहरण-

दिनेश! तुम यहाँ बैठो। (यहाँ, 'दिनेश' संबोधन कारक है)

आलोक! ये मेरी बहन है।

(आलोक! संबोधन कारक है।)

संबोधन कारक- बंगला से

संबंध के साथ वाक्यांतर्गत क्रिया का कोई साक्षात् संपर्क नहीं होता। अत: इस कारण बंगला व्याकरण में इसे कारक न कहकर संबंध पद कहा जाता है। संबंध पद में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण-

रामेर भाई जाइतेछे (बंगला)

राम का भाई जा रहा है। (हिंदी)

बंगला में संबंध पद का रूप संबंधी शब्द के लिंग, वचन आदि के अनुसार बदलता नहीं है।

उदाहरण-

रतन बड़ो आदोरेर छेले (बंगला)

रतन बड़ा प्यारा लड़का है। (हिंदी)

संबोधन के साथ भी क्रिया का कोई संबंध नहीं रहता। इसलिए, बंगला भाषा में इसे भी कारक नहीं कहा जाता है जैसे-

उदाहरण-

हे नाथ! आमार अपराध क्षमा करेन (बंगला)

हे नाथ! मेरा अपराध क्षमा कीजिए (हिंदी)

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिंदी संरचना में कारक चिह्नों की अत्यंत विविध और प्रभावी भूमिका है। कारकीय रूपों की दृष्टि से हिंदी में एकवचन में भी परिवर्तन होता है लेकिन बंगला में ऐसा नहीं होता। हिंदी और बंगला भाषाओं में कारक-चिह्न असमान होते हैं। अत: इस लेख के माध्यम से हिंदी और बंगला के कारक चिह्नों के साम्य और वैषम्य को ढूँढने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ

1. हिंदी भाषा, भोलानाथ तिवारी, भाग दो, किताब महल, दिल्ली, संस्करण-1991

2. सुनीति कुमार चटर्जी, ओरिजन एंड डेवलपमेंट ऑफ बंगाली लैंग्वेज, कोलकाता यूनिवर्सिटी प्रेस, 1926,

3. सुकुमार सेन- भाषार इतिवृत्त

4. घोष एवं सेन- बंगला भाषार व्याकरण, नवम् संस्करण

5. हिंदी व्याकरण- पं. कामता प्रसाद गुरु, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-संस्करण-2013

6. हिंदी और बंगला भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. संतोष जैन, शब्दकार, दिल्ली, संस्करण-1974

7. प्राथमिक बंगला व्याकरण रचना और अनुवाद शिक्षा, विधुभूषण दासगुप्त-प्रणित, समन्वय-भारती, कोलकाता।

– जूनियर रिसोर्स पर्सन/लेक्चरर ग्रेड, राष्ट्रीय परीक्षण सेवा-भारत, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर, कर्नाटक

❑❑❑

साधारणीकरण के परिप्रेक्ष्य में सार्वभौम साहित्य की प्रकल्पना

डॉ. पशुपति नाथ उपाध्याय

साधारणीकरण से अभिप्राय किसी सर्जनात्मक कृति के भावबोध का ग्रहण आस्वाद्य रूप में पाठक द्वारा किया जाना है- उसे संस्कृत काव्यशास्त्र में साधारणीकरण की संज्ञा दी गई है। उसे दूसरे रूप में- काव्य के मूल सौंदर्य का रसास्वादन पाठक को जिस प्रक्रिया द्वारा होता है- उसे साधारणीकरण कहा जाता है। वस्तुतः भाव और अनुभूति के माध्यम से रस की अनुभूति होती है जिसके मूल में सौंदर्य निहित होता है। अतएव साधारणीकरण मूलतः रसानुभूति की ही प्रक्रिया है और वह भावोद्रेक पर आधारित होती है। संस्कृत काव्यशास्त्र में आचार्य भट्टनायक ने साधारणीकरण की प्रक्रिया का विस्तृत और व्यापक फलक पर विवेचन-विश्लेषण किया है। नवीं और दसवीं शती में साधारणीकरण का सांगोपांग और तर्कसंवत विवेचन करके उन्होंने अपना आचार्यत्व प्रमाणित किया था जिसके कारण भट्टनायक और उनका सिद्धांत 'साधारणीकरण' ऐतिहासिक महत्व को प्राप्त कर सका।

'साधारणीकरण' का सहज-सरल अर्थ है- असाधारण को साधारण, असामान्य को सामान्य तथा असहज को सहज बना देना। इस प्रक्रिया में व्यक्ति, वस्तु और भाव के देश काल और व्यक्ति संसर्गगत वैशिष्ट्य विलयन कर उन्हें असाधारण से साधारण और विशेष से सामान्य बना दिया जाता है। यही कारण है कि व्यक्ति सहज-सरल रूप में जनसामान्य की तरह दिखाई पड़ता है तथा पाठक और श्रोता से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। विशेष और विशिष्टता का भेद मिट जाता है तथा अभेद की प्रतीति होती है। वैशिष्ट्य और व्यष्टिगत संसर्गगत लगाव से मुक्त हुए बिना वह आस्वाद्य का विषय भी नहीं बन सकता।

साधारणीकरण के फलस्वरूप इस प्रक्रिया में रसास्वादन पाठक को ही होता है जिसके परिणाम स्वरूप काव्यकृति और पाठक के बीच तादात्म्य की स्थिति बनती है क्योंकि यह एक सीधी प्रक्रिया है। काव्य में कवि प्रतिभा और दूसरी ओर पाठक के सहृदय होने की कल्पना के अभाव में साधारणीकरण संभव नहीं होता।

साधारणीकरण पर डॉ. नगेंद्र ने 'रीतिकाव्य की भूमिका' और 'रस-सिद्धांत' में जो विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत किया है- वह तर्कसंगत, शास्त्र-सम्मत एवं मौलिक है। उसके संबंध में संस्कृत काव्यशास्त्र में भिन्न-भिन्न विवेचन देखने को मिला है। जिसका तार्किक पर्यवेक्षण, निरीक्षण एवं परीक्षण कर डॉ नगेंद्र ने अपना अभिमत प्रकट और व्यक्त किया है। उनकी स्पष्ट अवधारणा है कि 'काव्य के भावन द्वारा पाठक या श्रोता का भाव की सामान्य भूमि पर पहुँच जाना' ही साधारणीकरण है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि किसी काव्य में दुष्यंत की शकुंतला के प्रति रति प्रकट की गई है तो श्रोता या पाठक उसका भावन करते हुए भाव की उस अवस्था तक पहुँच जाता है जहाँ वह रति शकुंतला के प्रति दुष्यंत की न रहकर पुरुष की स्त्री के प्रति साधारण रति रह जाती है।[1]

आचार्य शुक्ल ने साधारणीकरण आलंबन धर्म का माना है किंतु डॉ. नगेंद्र ने अनेक युक्तियों और चिंतन मनन के आधार पर उसे कवि की अनुभूति का

साधारणीकरण माना है क्योंकि 'कवि अथवा प्रतिभा संपन्न कलाकार में इतनी क्षमता होती है कि वह अपनी अनुभूति को सभी लोगों की अनुभूति बना सके। डॉ. नगेंद्र ने उल्लेख किया है कि कवि अपनी अनुभूति का साधारणीकरण करता है जिसके द्वारा पाठक या श्रोता भी उसकी अनुभूति के साथ अपनी अनुभूति का तादात्म्य स्थापित करने में समर्थ होते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि डॉ. नगेंद्र ने साधारणीकरण का विवेचन रचयिता की अनुभूति को सर्वोच्च वरीयता प्रदान करते हुए करना न्यायसंगत और समीचीन समझा है क्योंकि उनकी दृष्टि में, कवि वह होता है जो अपनी अनुभूति का साधारणीकरण कर सके।[3] इस सिद्धांत को आधार मानकर उन्होंने विभिन्न काल के कवियों का और उनकी कृतियों का व्यावहारिक धरातल पर विवेचन-विश्लेषण किया है जिससे भ्रम निवारण हुआ है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि 'भारत की अव्यक्तिगत काव्य-परंपरा के कारण साधारणीकरण के आविष्कारक भट्टनायक और अभिनवगुप्त तथा अपनी वस्तु सीमित दृष्टि के कारण आधुनिक आलोचना में उसके सबसे प्रबल पृष्ठपोषक शुक्ल जी स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर पाए हैं।[4] डॉ. वेंकट शर्मा के शब्दों में "नगेंद्र जी ने साधारणीकरण की सामान्य शक्ति सभी लोगों में स्वीकार कर कवि को उसकी विशेष शक्ति से संपन्न माना है जो अपनी समृद्ध भाव शक्ति तथा सजग अनुभूतियों के कारण भाषा का भावमय प्रयोग कर मानव-सुलभ सहानुभूति को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।"[5]

साधारणीकरण के संबंध में डॉ. नगेंद्र आचार्य शुक्ल से अलग विचार रखते हैं। उनके प्रसिद्ध निबंध 'साधारणीकरण और उक्ति वैचित्र्यवाद' को संदर्भित करते हुए डॉ. नगेंद्र ने राम-सीता प्रणय संबंधित प्रकरण पर अपना अलग विचार रखा है जिससे आचार्य शुक्ल की नैतिकतावादी भाव भूमि को आघात पहुँचा है। शुक्ल जी ने 'आलंबनत्व धर्म' का साधारणीकरण स्वीकार किया है जिसके परिणामस्वरूप काव्यगत पात्र की व्यक्तितता' बनी रहती है, उसकी पहचान बनी रहती है तथा उसमें प्रदर्शित गुण-धर्म साधारणीकृत हो जाते हैं और समस्त समाज सहृदय की स्थिति एक समान प्रतीत होती है। इस मत से भिन्न दृष्टिकोण रखते हुए डॉ. नगेंद्र ने कहा है कि 'अर्थात्' सीता कामिनी बनकर रह जाती हैं; यह बात नहीं, वरण वे अपने शील सौंदर्य आदि सामान्य गुणों के कारण सभी के प्रेम का विषय बन जाती हैं।[6] वस्तु स्थिति यह है कि शुक्ल जी ने काव्यगत चित्रण को बलाघात दिया है, कैसे आलंबन का चित्रण किया जाए कि उसको साधारणीकृत रूप में सामाजिक ग्रहण कर सके। वास्तव में शुक्ल जी का आग्रह है, काव्यगत व्यक्ति की 'व्यक्तितता' के बने रहने पर। इस प्रकार विभावादि के साधारणीकरण घटित होने की सामान्य शास्त्रीय स्थापना के विरोध में जानबूझकर शुक्ल जी ने कहा है कि काव्यावादन के संदर्भ में व्यक्ति तो विशेष ही रहता है। सामान्य काव्यानुभव शुक्ल जी के पक्ष में पड़ता है। काव्यास्वाद में 'व्यक्ति' का सर्वथा विलोप नहीं होता, फिर भी कवि द्वारा अभिलषित प्रभाव समस्त सहृदय-समाज पर पड़ता है।[7] अतएव काव्यास्वाद में व्यक्ति का वैशिष्ट्य बना रहता है यही शुक्ल जी की स्थापना है। साधारणीकरण के प्रसंग में भट्टनायक और अभिनव गुप्त की स्थापना से सहमत होते हुए भी डॉ. नगेंद्र ने अपनी अलग स्थापना की है जो आचार्य शुक्ल की स्थापना से भिन्न है। साधारणीकरण से हमारा आशय असाधारण को साधारण तथा असामान्य को सामान्य तथा विशिष्ट को सम या विषम को सम बनाने से है। यही कारण है कि जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस प्रकार अभिव्यक्ति करता कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कह सकते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति विद्यमान है। अनुभूति सभी में होती है। सभी व्यक्ति उसे यथोचित व्यक्त भी कर लेते हैं परंतु साधारणीकरण की शक्ति सबमें नहीं होती।[8]

डॉ. नगेंद्र का साधारणीकरण विषय का सीधा संबंध रसानुभूति से है जिससे सौंदर्यानुभूति की भावना का भी पता चलता है। उन्होंने सार्वभौम साहित्य की प्रकल्पना को अपनी सभी व्यावहरिक कृतियों के माध्यम से व्यक्त करने का भरसक प्रयास किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि डॉ. नगेंद्र का साधारणीकरण प्रकारांतर से रस की सार्वभौमिकता सिद्ध करता है जो उनकी रसवादी दृष्टि का परिचायक है। शाश्वत प्रतिमान के निर्धारण में उनका यह सिद्धांत हिंदी आलोचना में एक नया मानदंड स्थापित करता है।[9] "उनका

साधारणीकरण का सिद्धांत मानवतावाद का समर्थन करता है तथा साहित्य को सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक मानता है।"[10] इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉ. नगेंद्र ने सार्वभौम साहित्य शास्त्र की परिकल्पना को मुख्य रूप से रीतिकाव्य की भूमिका और रस-सिद्धांत कृतियों के माध्यम से सार्थक बनाया है। साथ ही सभी सैद्धांतिक और व्यावहारिक कृतियों में भी अपने प्रतिपाद्य विषय से वे अलग नहीं हुए हैं- यह डॉ. नगेंद्र के रसवादी समीक्षक की विशेषता रही है।

आलंबन या आलंबनत्व धर्म का साधारणीकरण प्रकरण में आचार्य शुक्ल की सीमा-रेखा को डॉ. नगेंद्र ने पार कर दिया है। उनका कहना है "स्वयं शुक्ल जी को इसकी प्रतीति हुई है, इसीलिए वे आलंबन से हटकर आलंबनत्व या आलंबन धर्म तक पहुँच गए हैं" और फिर उन्हें उनको नैतिक आधार प्रदान करना पड़ता है। ऐसा आलंबन शुक्ल जी को ग्राहय नहीं है, जिसका आधार नैतिक न हो क्योंकि उसका तो साधारणीकरण हो नहीं हो सकता। यहाँ आप देखें कि कठिनाई किस प्रकार बढ़ती जा रही है- आलंबन, फिर आलंबन धर्म और फिर उसका औचित्य या नैतिक आधार। यह सब इसलिए हो रहा है कि भाव के विषय को भाव से अधिक महत्व दिया जा रहा है और साधारणीकरण की प्रक्रिया में एक अंग स्वतंत्र हो गया है। तीसरा आक्षेप यह किया जाता है कि इस प्रकार आलंबन का क्षेत्र सीमित हो जाता है और परंपरा द्वारा निर्धारित आलंबन ही काव्य में ग्राह्य हो सकते हैं- अर्थात् रामादि सदा प्रीतिकर भावों के और रावणीदि अप्रातिकर भावों के ही आलंबन बन सकते हैं। अत: यह रस दृष्टि परंपरागत नैतिक मूल्यों से परिबद्ध है। सामान्यत: परंपरा एवं नैतिक मूल्यों का अनुशासन श्रेयस्कर होता है और काव्य मूल्य उससे सर्वथा स्वतंत्र नहीं हो सकते, फिर भी नैतिक मूल्य और साहित्यिक मूल्य पर्याय नहीं बन सकते। इस तरह तो भावक्षेत्र का विकास रुक जाएगा और मेघनाथ वध महान् काव्यों की रसक्ता ही खंडित हो जाएगी। वास्तव में परंपरा और नीति-संहिता का बड़ा महत्व है, परंतु मानवता उनसे बड़ी चीज है। अतएव परंपरा और नीति-विधान के प्रतिनिष्ठावान् रहते हुए भी काव्यमूल्यों को तो मानवीय और सार्वभौम बनना पड़ेगा।[11]

उपर्युक्त लंबे विवेचन के उपरांत डॉ. नगेंद्र के रसवादी समीक्षक ने मानवतावादी दृष्टि का परिचय देते हुए 'मानवीय और सार्वभौम' काव्यमूल्यों के परिप्रेक्ष्य में अपना सिद्धांत निरूपित किया है ताकि साहित्यशास्त्र की उपयोगिता और सार्थकता किसी भी तरह प्रभावित न हो। लगातार तीन आक्षेपों से आचार्य शुक्ल के आलंबन और आलंबनधर्म को घायल किया है तथा रस-विषयक परंपरानुमोदन में नैतिकतावादी दृष्टिकोण को डॉ. नगेंद्र ने खारिज कर दिया है। उनका यह विवेचन व्यंग्योक्ति के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है जिसके मूल में रस के प्रति आग्रह का भाव देखा गया है।

आचार्य शुक्ल भी रसवादी परंपरा के समीक्षक हैं जिन्होंने साधारणीकरण को आलंबनधर्म के धरातल पर अधिष्ठित किया है। "इस प्रकार शुक्ल जी भी साधारणीकरण को भट्टनायक वाले अर्थ में स्वीकार करते हैं। और आश्रय या कवि के साथ तादात्म्य की स्थिति को रसानुभूति की उच्चदशा मानते हैं किंतु जहाँ कवि के साथ तो सहृदय का तादात्म्य हो, पर आश्रय के साथ तादात्म्य न होकर उसके हृदय में कुछ प्रतिक्रियात्मक भाव उठें, वहाँ शुक्ल जी मध्यकोटि की रसानुभूति मानते हैं।"[12] डॉ. नगेंद्र के मतानुसार आचार्य रामचंद्र शुक्ल रस-सिद्धांत को एक सार्वभौम साहित्य सिद्धांत के रूप में विकसित करने की कल्पना कर रहे थे- जो उनके अस्वास्थ्य और असामयिक निधन के कारण अपूर्ण रह गई। पाश्चात्य साहित्य शास्त्र में भी कल्पना और अनुभूति तत्व का आरंभ से ही प्राधान्य रहा है। सहस्राब्दियों के मंथन तथा सैद्धांतिक संघर्ष के उपरांत वहाँ के मनीषियों की अनुभूति के कल्पनात्मक आस्वाद की जैसी सांश्लिष्ट एवं सर्वांगपूर्ण प्रकल्पना हमारे रस-सिद्धांत में निहित है, वैसी अन्यय दुर्लभ है।[13]

रस-सिद्धांत की परंपरा में सार्वभौमिकता और सार्वकालिकता को रेखांकित करते हुए डॉ. मनोहर काले ने कहा है कि रस-सिद्धांत की इतनी व्यापक परिधि पर मूल्य मीमांसा करके डॉ. नगेंद्र ने साहित्य-सिद्धांतों के चिंतन की दिशा में अपेक्षत गांभीर्य एवं पांडित्य का परिचय दिया। है। इससे हिंदी में रस-सिद्धांत विषयक अध्ययन को विशेष गरिमा प्राप्त हो सकी है। युग-युग से चिंतित रस-सिद्धांत के अपने पुनराख्यान द्वारा डॉ. नगेंद्र ने सार्वभौमिकता के तत्व को 'मानवीय अनुभूति'

और 'मानव संवेदना' के मूल और शाश्वत आधार पर प्रतिष्ठापित करके 'कलात्मक सत्य' के निकट पहुँचाने का सशक्त प्रयत्न किया है।

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी ने भी साधारणीकरण प्रक्रिया पर डॉ. नगेंद्र द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत का समर्थन किया है। उनका अध्ययन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की निर्मिति में सहायक सिद्ध हुआ है। उनके मतानुसार डॉ. नगेंद्र रस को कवित्व की अनिवार्य शर्त मानने में आचार्य शुक्ल के साथ है; पर कवित्व की चर्वणा विश्रांति में मानने से स्वच्छंद चिंतकों की भाँति प्राक् मध्यकालीन चिंतक आनंदवर्धनादि के साथ है और रस का 'समन्वित मनोवृत्ति' पर्यवसित रूप स्वीकार करने में वे आई. ए. रिचड्र्स के साथ हैं। साधारणीकरण, जो मूलत: रसानुभूति की प्रक्रिया है और वह भावोद्रेक पर आधृत है- को विश्लेषित करते हुए प्रेमकांत टंडन ने लिखा है कि भट्टनायक के द्वारा प्रवर्तित किए जाने के उपरांत 'साधारणीकरण' पर संस्कृत और प्रवर्तित किए जाने के उपरांत 'साधारणीकरण' पर संस्कृत और हिंदी के प्रमुख काव्यशास्त्रियों के विचार-विवेचन की एक अखंड परंमरा चली है। इस सभी आचार्यों के विवेचनों और उनकी स्थापनाओं का सुस्पष्ट और सम्यक् निरूपण करना अपने में एक बहुत कठिन कार्य है। डॉ. नगेंद्र के द्वारा यह गुरुतर कार्य बहुत ही निपुणतापूर्वक संपन्न हुआ है।

डॉ. नगेंद्र ने संस्कृत और हिंदी के प्राय: सभी प्रसिद्ध आचार्यों और व्याख्याकारों के एतद्विषयक मतों का न केवल अत्यंत स्पष्ट निरूपण किया है बल्कि उनकी मान्याताओं के स्थूल और सूक्ष्म, वस्तु और व्यक्ति परक आदि विविध पक्षों का निदर्शन करते हुए उनकी शक्ति और सीमाओं का भी बहुत अच्छा स्पष्टीकरण किया है। इस क्रम में डॉ. नगेंद्र की बहुत बड़ी उपलब्धि यह रही है कि उन्होंने न केवल संस्कृत काव्यशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली की आधुनिक व्याख्या की बल्कि संस्कृत आचार्यों की साधारणीकरण विषयक मान्यताओं को आधुनिक अनुसंधानों के आलोक में विवेचित करते हुए उन्हें नई संगति और अभिनव अर्थवत्ता भी प्रदान की है और इस प्रकार उसके महत्व की समुचित प्रतिष्ठा की है। सार्वभौम साहित्य की परिकल्पना डॉ. नगेंद्र के साहित्यकार के मस्तिष्क से एक क्षण के लिए भी ओझल नहीं होती और न ही विस्मरण हो पाती है। 'आस्था के चरण' के अधिकांश निबंधों में इसके साक्ष्य विद्यमान हैं। क्योंकि सार्वभौम से इतर वे साहित्यिक क्षेत्र में जाना नहीं चाहते।

डॉ. नगेंद्र ने विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ, आचार्यशुक्ल आदि आचार्यों के मतों को एकांशी घोषित करते हुए अपना सार्वभौमिक साहित्यिक सिद्धांत प्रतिपादित किया है। भट्टनायक के अनुसार साधारणीकरण सर्वांग का होता है- को भी अस्वीकार कर दिया है। केशव प्रसाद मिश्र के अनुसार साधारणीकरण के प्रभाव स्वरूप प्रमाता की चेतना के एकतान और साधारणीकृत हो जाने पर प्रमाता को विभावादि सभी कुछ साधारण प्रतीत होने लगता है- की धारणा भी रसवादी समीक्षक डॉ. नगेंद्र की एकातानता ही संविद्धिश्रांति है और वही रस है। अत: वह साधारणीकरण का कारण नहीं हो सकती, वह तो कार्य या परिणति है।[14]

'रस-सिद्धांत' के तृतीय अध्याय में डॉ. नगेंद्र ने रस की निष्पति, रस का स्थान और साधारणीकरण को विवेचित किया है। उन्होंने भारतीय आचार्यों के मतों का खंडन-मंडन भी किया है तथा रस निष्पंति की अवधारणा को मनोवैज्ञानिक धरातल पर विश्लेषित किया है। रसग्राही डॉ. नगेंद्र का समीक्षक विभाव, अनुभव और व्यभिचारी भावों के साक्षात्कार को श्रोता तथा दर्शक के मानस में आनंदमयी चेतना के रूप में संचारित करता है। आनंदमयी भावना का संचार ही आत्मानुभूति है। यही भावानुभूति है, और यही सौंदर्यानुभूति है तथा प्रकारांतर से यही रस का काव्यानंद है। डॉ. कुमार विमल ने भी डॉ. नगेंद्र के रस-विषयक सिद्धांत और उनके द्वारा स्थापित साहित्य शास्त्र की सार्वभौम परिकल्पना की अनुशंसा करते हुए लिखा है कि "अपने इसी रसवादी दृष्टिकोण का विस्तृत पल्लवन और विवेचन इन्होंने 'रस-सिद्धांत' नामक ग्रंथ के 'शक्ति और सीमा' शीर्षक अध्याय में किया है ताकि मानव मूल्यों पर आश्रित रस-सिद्धांत की सार्वभौमता एवं सार्वकालिकता सिद्ध हो सके। अतएव सार्वभौम साहित्यशास्त्र के निर्माण में रस-सिद्धांत का मौलिक योगदान रहा है।"

साधारणीकरण की प्रक्रिया में कवि प्रतिभा और पाठक अथवा श्रोता की उपस्थिति अनिवार्य है क्योंकि एक ओर कवि की प्रतिभा संपन्नता होती है और दूसरी

ओर पाठक अथवा श्रोता की सहृदयृता की अनिवार्यता अपेक्षित होती है। ये दोनों ही साधारणीकरण के कारक हैं, विधायक हैं एवं नियामक भी सिद्ध होते हैं जिसका माध्यम है काव्य भाषा। रिचड्र्स के शब्दों में 'भावमय भाषा' - जिसे इमोटिव लैंग्वेज' कहा जाता है। प्रेमकांत टंडन ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'प्राय: यह आरोप लगाया जाता है कि संस्कृत काव्यशास्त्र सिद्ध कलाकृति को सामने रखता है, कवि और कर्म से उसका कोई प्रयोजन नहीं रहता। यह आरोप वस्तुवादी अलंकार, रीति और वक्रोक्ति-सिद्धांतों के संबंध में तो ठीक हो सकता है, परंतु आत्मवादी सिद्धांतों, विशेषकर रस-सिद्धांत के संबंध में यह आरोप ठीक नहीं लगता, क्योंकि अभिनव गुप्त ने तो रस की स्थिति स्पष्ट रूप से कवि, काव्य और पाठक-तीनों में स्वीकार की है; रस प्रक्रिया इन तीनों के योग से ही पूरी होती है, भले काव्य में रस की सत्ता लाक्षाणिक ही हो।

यह तथ्य भी विचारणीय है कि भट्टनायक के द्वारा प्रवर्तित और पुनर्स्थापित किए जाने के बाद भी 'साधारणीकरण' पर संस्कृत और हिंदी के प्रमुख काव्यशास्त्रियों के विचार विवेचन-विश्लेषण की एक अखंड और अनवरत परंपरा चलती आ रही है। इन सभी विद्वान आचार्यों के विवेचन व्याख्यानों और उनके द्वारा स्थापित सिद्धांतों का अपने आप में निरूपण और मूल्यांकन करना अवश्य ही कठिन कार्य है परंतु डॉ. नगेंद्र ने गंभीर अध्ययन-अध्यापन, लंबे अनुभव एवं चिंतन-मनन से ऐसे गंभीर विषय को भी बोधगम्य एवं पठनीय बना दिया है। उन्होंने संस्कृत और हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकारों द्वारा पुनर्स्थापित सिद्धांतों को आत्मसात् करते हुए दो टूक शब्दावली में अपना स्पष्ट मत रखा है जिससे समीक्षकों को भी संतुष्टि मिली है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में डॉ. नगेंद्र ने साधारणीकरण विषयक मान्यताओं और अवधारणाओं का आकलन और मूल्यांकन किया है ताकि उनकी सार्वभौम साहित्यशास्त्र की प्रकल्पना प्रमाणित हो सके और उसको पूरा समर्थन प्राप्त हो सके। आधुनिक खोजों के परिपार्श्व में विवेचित करते हुए नव्य संगति और नव्य अर्थवत्ता भी डॉ. नगेंद्र ने प्रदान की है।

आचार्य अभिनव गुप्त ने आचार्यों के योगदान को अपना समर्थन देते हुए साधारणीकरण के माध्यम से एक बात रखी है जो आमतौर से सबको अच्छी लगती है। उन्हीं के शब्दों में 'पूर्ववर्ती आचार्यों की स्थापनाओं की समुचित संगति लगा देने में मौलिक स्थापनाओं का-सा ही फल मिलता है। इस दृष्टि से काव्यशास्त्र के वे ही आचार्य उद्भावक आचार्य नहीं हैं जिन्होंने नवीन सिद्धांतों का आविष्कार किया है- आख्यान और पुनराख्यान करने वाले गंभीर चेता आचार्य भी उसी कोटि में आते हैं। यह कथन न केवल डॉ. नगेंद्र जैसे आख्यान और पुनराख्यान करने वाले चिंतनशील आचार्यों को प्रेरित और प्रोत्साहित करने में संजीवनी का कार्य करता है। अपितु अज्ञात कुल नवलेखकों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत और प्रेरक बना है। यही कारण है कि कहा गया है कि डॉ. नगेंद्र के संदर्भ में आचार्य अभिनव गुप्त की प्रस्तुत मान्यता का स्मरण आवश्यक है और इस दृष्टि से साधारणीकरण विवेचन में डॉ. नगेंद्र का अपना महत्व है। अतएव नव्य स्वतंत्र चिंतन द्वारा डॉ. नगेंद्र ने साधारणीकरण विषयक मान्यताओं का खंडन और समर्थन दोनों किया है- जो युगीन आवश्यकता थी।

भट्टनायक ने साधारणीकरण की शक्ति काव्य भाषा के एक विशेष 'भावकत्व' नामक व्यापार में निहित होना स्वीकार किया हैं उन्होंने काव्यगत शब्दार्थ के भय व्यापारों का संकेत दिया है जिसमें अभिधा, भावकत्व एवं भोजकत्व निहित है। वास्तव में अभिधा शब्दार्थ का सामान्य वाच्य विषयक व्यापार है जो काव्य, इतिहास तथा शास्त्रादि सभी में समान रूप से विद्यमान रहता है लेकिन काव्य के तीनों व्यापारों का समावेश होने के कारण इनसे वह विलक्षण और भिन्न दिखाई देता है। अभिधा व्यापार से काव्य में भी शब्द के वाच्यार्थ का बोध होता है। इसके बाद विभावादि के साधारणीकरण की सामर्थ्य से युक्त अर्थात् उनके साधारणीकरण के कारण भूत भावकत्व-व्यापार के द्वारा काव्य में अन्य अनेक विशेषताओं का भी समावेश हो जाता है-

(1) अर्थात् सर्वप्रथम सहृदय के चित्त की व्यक्तिगत राग-द्वेष जन्य अज्ञान से मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकार उसमें अपने-पराए की भावना नहीं रहती इससे वह ऊपर उठ जाता है तथा आनंदानुभूति में बाधक न होकर साधक बन जाती है। वह आनंद का विषय बन जाता है।

(2) विभावादि का साधारणीकरण भी इस व्यापार का मूल तत्व है।

(3) तीसरा तत्व रस का भावन है- अर्थात् स्थायीभाव भावित होकर रस में 'परिणति पा जाता है। यह भावन व्यापार काव्य और नाटक का विशिष्ट व्यापार है जिसमें विभावादि के साधारणीकरण की शक्ति काव्यदोष के अभाव तथा गुणालंकार के सद्भाव एवं नाटक में चतुर्विध अभिनय के कारण उत्पन्न होती है। समग्रत: कहा जा सकता है कि दोष रहित और गुणालंकार सहित होने के कारण नाटक में चतुर्विध अभिनय के कारण ही विभावादि को साधारणीकृत करने वाला विशेष व्यापार घटित होता है- इसी को भट्टनायक ने 'भाव कत्व'-व्यापार की संज्ञा दी है।

डॉ. नगेंद्र के मतानुसार भावन व्यापार और साधारणीकरण परस्पर अभिन्न हैं- क्योंकि भावन व्यापार के मूल में आनंदानुभूति की भावना निहित होती है और साधारणीकरण में भी व्यक्ति का अपना निज राग-द्वेष समाप्त हो जाता है और वह आनंद की स्थिति में अपना पराया की भावना से भी सर्वथा मुक्त होता है। यही कारण है कि डॉ. नगेंद्र सार्वभौम साहित्यशास्त्र के निर्माण के द्रष्टा हैं, सर्जक चिंतक हैं- इसलिए आनंदवाद के भी आग्रही दिखाई पड़ते हैं। डॉ. नगेंद्र का स्पष्टमत है कि 'आधुनिक शब्दावली में भावन का अर्थ है- 'कल्पनात्मक प्रतीति' और स्थायी भाव के भावन का अर्थ है- भावकत्व व्यापार के फलस्वरूप रत्यादि की प्रत्यक्ष प्रतीति की कल्पनात्मक प्रतीति में परिणति। परिणामत: स्थायीभाव की 'कल्पनात्मक प्रतीति' और उसके 'साधारणीकरण' में कोई भेद नहीं रह जाता, क्योंकि व्यक्तिबद्ध प्रत्यक्ष प्रतीति कल्पना का विषय बनकर स्वतंत्र एवं साधारणीकृत ही हो जाती है।[15]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डॉ. नगेंद्र ने साधारणीकरण और भावन को एक ही रूप में स्वीकार किया है। साधारणीकरण में भी व्यक्ति राग-द्वेष से मुक्ति पा जाता है, सहृदय की स्थिति में आ जाता है तथा आनंद की अनुभूति करता है। यही स्थिति 'भावन' व्यापार में भी होती है क्योंकि वह क्रिया कलाप तथा कार्य-व्यापार आनंद का स्रोत सिद्ध होता है। यह अभेद की प्रतीति ही सार्वभौमिकता की स्थिति और परिस्थिति ला देती है। भिन्नता में अभिन्नता ही सार्वकालिकता का द्योतक सिद्ध होता है- जो सार्वभौम साहित्यशास्त्र का गुण है- विशेषता भी है। इसलिए इस प्रसंग में कहा गया है कि "काव्य में भावन-व्यापार-अर्थात् स्थायी भाव की कल्पनात्मक प्रतीति अथवा उसके साधारणीकरण को शक्ति दोषाभाव एवं गुणालंकार के सद्भाव तथा (नाटक में) चतुर्विध अभिनय अर्थात् कल्पनातत्व के समावेश से आती है। वैसे तो भट्टनायक ने साधारणीकरण व्यापार में कवि के योग का उल्लेख कहीं नहीं किया है लेकिन डॉ. नगेंद्र की उक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि भावकत्व व्यापार की संपन्नता में कवि के योग की अनिवार्यता से भट्टनायक भी अनभिज्ञ नहीं थे, क्योंकि जिस कल्पना से समन्वित होकर भाषा दोषहीन और गुणालंकार युक्त बनती है, वह वास्तव में कवि कल्पना ही होती है। इसी भाषा में पाठक-दर्शक की तत्समान कल्पना को उद्बुद्ध करने की भी शक्ति होती है।"

भट्टनायक के अनुसार रस भोग्य है, आस्वाद-रूप नहीं; और इस रूप में उसकी वस्तुपरकता अभी नि:शेष नहीं हुई है। अतएव काव्यगत शब्दार्थ के सहृदय विषयक तीसरे व्यापार 'भोजकत्व' के द्वारा ही सहृदय भावकत्व से सिद्ध रस का पान करता है, भोग करता है और आनंदानुभूति की स्थिति में अपने को पाता है, पहुँच जाता है। यही साधारणीकरण की भी स्थिति है जहाँ भेद में अभेद की प्रतीति तथा अनेकता में एकता की प्रतीति होती है। यही आनंद की अवस्था में भी होती है। अतएव डॉ. नगेंद्र इस तथ्य को भी स्वीकारते हैं कि भट्टनायक रस की स्थिति शब्दार्थ में नहीं मानते। उनके द्वारा प्रयुक्त "निविड निमोहसंकटा निवारण कारिणा में निज" शब्द से स्पष्ट है कि सहृदय का चित्त वैयक्तिक रागद्वेष से मुक्त होकर (अपने) स्थायी भाव का साधारणीकृत आस्वादन करता है तथा साधारणीकृत स्थायी ही रस है। यही कारण है कि भट्टनायक ने रस की सत्ता को सहृदय के हृदय में ही माना है क्योंकि भावकत्व और भोजकत्व व्यापारों की क्रिया-भूमि वास्तव में सहृदय चित्त ही है। अतएव भट्टनायक का वस्तुपरक दृष्टिकोण उसी सीमा तक रस भोग का विषय सिद्ध हुआ है।

डॉ. नगेंद्र की यह भी स्थापना है कि भट्टनायक के अनुसार रसरूप में योग्य स्थायी भाव सहृदय का अपना स्थायी भाव होता है। डॉ. नगेंद्र ने अपना मत

साफ शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखा है कि "रस के समस्त अवयवों-विभाव, अनुभाव, स्थायी और संचारी का साधारणीकरण होता है। साधारणीकरण की प्रक्रिया में थोड़ा-सा (असंलक्ष्य) क्रम रहता है-विभावादि का साधारणीकरण पहले होता है और स्थायी का उसके परिणामस्वरूप बाद में। इसमें विषय तथा विषयी दोनों पक्षों का संतुलन है।[16] इस कथन से स्पष्ट हो गया है कि रस अपने आप में साधारणीकरण का विषय है तथा रस के सभी अवयवों का ही साधारणीकरण काव्य या नाटक में होता है क्योंकि स्थायी भाव में स्थायीत्व होता है, थोड़ी सी स्थिरता रहती है- इसलिए उसका साधारणीकरण अपेक्षाकृत विभावादि के बाद में संपन्न होता है। अतएव डॉ. नगेंद्र का यह मत व्यावहारिक है और अपीलिंग भी।"

डॉ. नगेंद्र ने भट्टनायक के सिद्धांत सूत्रों का गहनता और सूक्ष्मता से अध्ययन किया है तथा व्यावहारिक धरातल पर निरखने-परखने के पश्चात् ही अपना निष्कर्ष दिया है। भट्टनायक के साधारणीकरण सिद्धांत की शक्तियों का निदर्शन करते हुए डॉ. नगेंद्र ने कहा है: -

(1) "कवि के या कवि-निबद्ध पात्र के भाव सहृदय समाज आस्वाद्य किस प्रकार बन जाते हैं? इसका समाधान सर्वप्रथम भट्टनायक ने साधारणीकरण-सिद्धांत की उद्भावना के द्वारा किया। मेरी धारणा है कि विश्व के आलोचना शास्त्र में भट्टनायक से पूर्व इस मूल प्रश्न का ऐसा प्रामाणिक समाधान किसी आचार्य ने प्रस्तुत नहीं किया।" इस कथन पर कुछेक समीक्षकों ने आपत्ति उठाई है और डॉ. नगेंद्र के आग्रही भाव की आलोचना की है लेकिन गंभीरता से अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि डॉ. नगेंद्र ने अपने अध्ययन-अध्यापन और अलोड़न-विलोड़न के बाद ही अपना मत व्यक्त किया है और वह भी तटस्थतावादी धरातल पर। उसमें पक्षपात या आग्रह का कोई भाव नहीं हैं। वह निष्पक्ष कथा है।

(2) "साधारणीकरण सिद्धांत के द्वारा भट्टनायक ने करुणादि रसों की आनंदरूपता को अत्यंत प्रामाणिक रूप से सिद्ध किया है।" यह कथन भी अनुभव के आधार पर व्यक्त किया गया हैं क्योंकि वाल्मीकि के समय से ही करुण रस प्रतिष्ठित हो चुका था- और करुण रस ही वास्तव में ससो में सर्वोपरि है। अन्य रस तो सहायक और निमित्त मात्र हैं। प्रेमकांत टंडन ने लिखा है कि "कालांतर में मूलत: भट्टनायक का मत अभिनव गुप्त के किंचित संशोधनों के साथ मान्य हुआ।" वास्तव में अभिनवगुप्त पर भट्टनायक का बहुत अधिक प्रभाव था। उनके मत से कई स्थानों पर अपनी असहमति व्यक्त करते हुए भी अभिनव गुप्त चेतन-अचेतन रूप से उनसे इतने अधिक प्रभावित थे कि रस और साधारणीकरण के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने किंचित् हेर-फेर के साथ भट्टनायक के दृष्टांतों को ही ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त, अभिनव गुप्त द्वारा रस की प्रतिष्ठा के मूल में भी भट्टनायक का ही प्रभाव काम कर रहा था, अन्यथा, शायद को आनंदवर्धन के समर्थक बन गए होते। टंडनजी का यह कथन एकांगी प्रतीत होता है और वे भट्टनायक के पक्षधर लगते हैं। चूँकि डॉ. नगेंद्र का भी झुकाव भट्टनायक की ओर ही अधिक रहा है- इसलिए हो सकता है कि डॉ. नगेंद्र के कथन से सहमत होते हुए उन्होंने ऐसा वक्तव्य दिया है।

'अभिनव भारती' और 'ध्वन्यालोकलोचन' के आधार पर डॉ. नगेंद्र ने साधारणीकरण विषयक विवेचन-विश्लेषण इस प्रकार प्रस्तुत किया है:

(1) साधारणीकरण विभावादि का नहीं होता, स्थायी भाव का भी होता है। जिस प्रकार विभावादि स्थायी भाव के कारण होते हैं; उसी प्रकार विभावादि का साधारणीकरण भी स्थायी के साधारणीकरण का कारण होता है।

डॉ. नगेंद्र की इस स्थापना के मूल में उनका रसवादी दृष्टिकोण काम्य सिद्ध है क्योंकि साधारणीकरण में ही अभेद की प्रतीति सहृदय को होती है तथा ऐक्यानुभूति की प्रबलता देखने को मिलती है। डॉ. नगेंद्र ने परोक्ष रूप से सार्वभौम साहित्यशास्त्र की संकल्पना का ही पोषण किया है। अनुभूति ही प्रकारांतर से रस का रूप धारण करती है और आस्वाद का हेतु बनती है जिसकी परिणति आनंदवाद में हो जाती है। अतएव डॉ. नगेंद्र रसवादी और आनंदवादी भी हैं।

(2) स्थायीभाव के साधारणीकरण का अर्थ है देशकाल के बंधन, व्यक्ति संसर्ग आदि से मुक्ति। स्थायी भाव प्रत्येक सहृदय के चित्त में संस्कार-रूप में विद्यमान रहते हैं, संस्कार-रूप होने के कारण ने समान भी होते हैं- क्योंकि अनादि संस्कारों द्वारा चित्रित

चित्रवाले सभी सामाजिकों की एक जैसी भावना होती है। व्यक्ति चेतना के कारण ही भाव की प्रतीति में सुख-दु:खात्मकता का समावेश रहता है, उसके अभाव में ऐंद्रिय सुख-दुख की भावना भी नष्ट हो जाती है।

डॉ. नगेंद्र साहित्य का संबंध रागात्मक धरातल पर स्वीकारते हैं। वे इस-सिद्धांत को शास्त्र रूढ़ियों से मुक्त व्यापक और विकासशील रूप में काव्य का सार्वभौम सिद्धांत मानते हैं। यही कारण है कि स्थायीभाव के साधारणीकरण में भी उन्हें रसानुभूति होती है तथा सहृदय मुक्तावस्था में आनंद प्राप्ति करता है। साधारणीकरण में चूँकि सभी समान होते हैं, सभी की मनोदशा एक-सी प्रतीत होती है। इसलिए रस के स्तर पर जुड़कर समभाव की प्रतीति प्रीतिकर और सुखकर होती है। रस को ही वे सार्वभौम साहित्यशास्त्र का मेरुदंड भी मानते हैं जिसके मूल में व्यक्ति का रागतत्व है और रागात्मक वृत्ति सर्वत्र समीकृत हो जाती है। वह अपना-पराया का भेद नहीं जानती और न वह खंडित रूप में ही होती है- इसीलिए अखंड चेतना की प्रतीति सहृदय को साधारणीकृत में सही रूप में ही होती है जिसको डॉ. नगेंद्र ने स्वीकार किया है। ऐसी स्थिति में व्यष्टि समष्टि बन जाता है। उसमें सब और सब में वह अपना ही स्वरूप अनुभव करता है जिसके परिणाम स्वरूप वह मनोविकारों से सर्वथा मुक्ति पा लेता है।

(3) काव्यात्मक शब्द से (वाक्य से) सहृदय व्यक्ति को सामान्य अर्थ बोध से अधिक प्रतीति होती है। यह प्रतीति साधारणीकृत और साक्षात्कारात्मिका होती है, अर्थात् इससे मन की आँखों के सामने (कल्पना में) चित्र-सा अंकित हो जाता है। आधुनिक शब्दावली में अर्थबोध धारणा रूप होता है और यह प्रतीति बिंब रूप होती है।

सहृदय व्यक्ति को सामान्य अर्थ बोध से अधिक प्रतीति होना ही काव्यानुभूति की सच्चाई है और यह काल्पनिक अनुभूति सौंदर्य-जन्मा होती है जो सार्वभौमिकता और सार्वकालिकता का द्योतन करती है। प्रतीति की बिंब रूप में उपस्थिति मनोवैज्ञानिक निरूपण का संकेत है जिसको डॉ. नगेंद्र के रसवादी समीक्षक ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर निरखने-परखने का प्रयास किया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. नगेंद्र : विचार और विवेचन पृ. 30
2. उपरिवत् पृ. 31
3. उपरिवत् पृ. 33
4. उपरिवत् पृ. 34
5. डॉ. वेंकट शर्मा : आधुनिक हिंदी साहित्य में समालोचना का विकास पृ. 399
6. डॉ. नगेंद्र : रस-सिद्धांत पृ. 202
7. डॉ. नगेंद्र : साधना के नए आयाम पृ. 113
8. डॉ. नगेंद्र : रीति काव्य की भूमिका पृ. 47
9. डॉ. पशुपति नाथ उपाध्याय : समन्वयवादी समीक्षा और डॉ. नगेंद्र पृ. 200
10. डॉ. मक्खन लाल शर्मा : आधुनिक हिंदी आलोचना : एक अध्ययन पृ. 250
11. डॉ. नगेंद्र : रस-सिद्धांत पृ. 206
12. रससिद्धांत और छायावादोत्तर कविता पृ. 144
13. डॉ. नगेंद्र : रस-सिद्धांत पृ. 73
14. डॉ. नगेंद्र : रस-सिद्धांत पृ. 209
15. डॉ. नगेंद्र : रस-सिद्धांत पृ. 166
16. डॉ. नगेंद्र : रस-सिद्धांत पृ. 205

– 8/39ए, शिवपुरी, अलीगढ़-202001 (उ. प्र.)

❑❑❑

सूरदास और पेरियाष़्वार के काव्य में वात्सल्य भाव का चित्रण

डॉ. एम. शेषन्

भक्ति के जितने प्रकार बताए गए हैं उन सब में वात्सल्य भाव की भक्ति उत्तम मानी गई है। आचार्यों ने इसे हृदय का शुद्ध भाव माना है और इसमें निष्काम प्रेम भाव ही सर्वाधिक होता है। "डॉ. मुंशीराम शर्मा के अनुसार प्रेमभाव की व्यापकता एवं तीव्रता जितना वात्सल्य के रूप में प्रकटित है, उतना अन्य किसी रूप में नहीं।"[1] अतएव भक्त कवियों ने वात्सल्य भाव को अपना पाथेय मानकर भगवान के सान्निध्य लाभ का सफलतापूर्वक प्रयास किया है। इसके परिणाम स्वरूप तमिल और हिंदी के भक्तिकाल में वात्सल्य रस प्रधान काव्य का प्रणयन प्रचुर मात्रा में होने लगा। हिंदी प्रदेश में वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित भक्ति ने वात्सल्य की नैसर्गिक अनुभूति को संबल प्रदान कर उसके प्रस्फुटन के मार्ग को अधिक प्रशस्त किया। उसमें आराध्य एवं आराधक का अंतर लुप्त-सा हो गया। मातृ रूप में कवि की अनुभूतियाँ स्वयं नदी की बाढ़ के समान प्रवाहित होने लगी। इस अवरोधहीन प्रभाव ने वात्सल्य को अधिक व्यापक रूप प्रदान किया तथा उसकी महत्ता का प्रतिपादन किया। हिंदी के भक्त कवियों ने अपनी विलक्षण आनंदानुभूतियों से केवल विभाव या अनुभाव मात्र में ही रस की निष्पत्ति करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।

तमिल के आष़्वार भक्तों के समक्ष मंदिरों की अर्चामूर्ति ही सब कुछ है। भागवत कथा के आधार पर कृष्ण के शिशुरूप के दर्शन कर स्वयं माता या पिता मानकर भगवान के गुणगान करते थे। ये भक्त कवि तमिल एवं संस्कृत के प्रकांड पंडित होने की वजह से सूत्र रूप में छोटे-छोटे पदों में रस-संचार करने में सफल हुए। ये आष़्वार भक्त तमिल एवं संस्कृत दोनों के काव्य शास्त्र एवं काव्य-परंपरा से खूब परिचित थे। अतः उपयुक्त शैली में पद-रचना करने में इन्हें कोई कठिनाई नहीं महसूस हुई। ये आष़्वार भक्त कृष्ण की बाल-सुलभ स्वाभाविक चेष्टाओं, क्रीड़ाओं में उद्दीपन विभाव द्वारा जहाँ रस-संचार करते हैं वहाँ विरहाभि-व्यक्ति में सात्विक भाव एवं अनुभव द्वारा रस की व्यंजना करते हैं। वात्सल्य रस का पूर्ण परिपाक माता यशोदा एवं पिता नंद द्वारा होता है। यशोदा की वात्सल्यानुभूति को जहाँ सूर ने तटस्थ होकर हमें दर्शाया है वहाँ पेरियाष़्वार स्वयं माता यशोदा बनकर भाव प्रवाहित करते हैं। सूर नंद में भी पुरुषोचित धैर्यव्यक्त करते हैं जबकि पेरियाष़्वार नंद में कहीं-कहीं वात्सल्य रस को दर्शाते हैं। माता यशोदा के हृदय के प्रत्येक उद्गार और प्रत्येक उच्छवास को जहाँ पेरियाष़्वार ने बड़ी मार्मिकता के साथ दर्शाया है, वहाँ सूर के काव्य में कृष्ण के प्रति वात्सल्यभाव दर्शाने वाली माता यशोदा और अन्य वयस्का गोपांगनाओं में भी वात्सल्य का चरमोत्कर्ष प्राप्त है। पेरियाष़्वार में भी यही बात होती है। सूर ने यशोदा के रूप में सहज स्नेहशील मातृत्व का सजीव चित्रण खींचा है। उसमें मातृत्व के सभी गुणों का समावेश हो जाता है। उन्होंने मातृत्व की संपूर्ण विभूति माता यशोदा को ही दी है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने सूर के बारे में जो लिखा है वह पेरियाष़्वार के

संबंध में बहुत कुछ सत्य माना जा सकता है। उनका कथन है "…..माता यशोदा के वात्सल्य में वह सब कुछ है जो 'माता' शब्द को इतना महिमाशाली बनाए हुए है। ....यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृहृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल एवं हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। माता संसार का ऐसा पवित्र रहस्य है जिसे कवि के अतिरिक्त और किसी को व्याख्या करने का अधिकार नहीं। सूरदास जहाँ पुत्रवती जननी के प्रेमाप्लावित हृदय को छूने में समर्थ हुए हैं, वहाँ वियोगिनी माता के करुणा-विगलित हृदय को छूने में भी समर्थ हुए हैं।"[2] यह सही है कि वात्सल्य का सर्वाधिक तीव्र और स्पष्ट रूप अष्टछाप में सम्मिलित कवियों के काव्य में प्रकट है।

पेरियाष़्वार द्वारा रचित "पेरियाष़्वार तिरुमोषि़" में 461 पद संगृहीत हैं। इनमें प्रथम 221 पदों में संयोग वात्सल्य भाव से संबंधित पद हैं जिन में कृष्ण के जन्म से लेकर वयो-विकास क्रम के अनुसार उनकी लीलाओं के तथा माता यशोदा के मन पर पड़ी प्रतिक्रियाओं का वर्णन कर पाठकों को अभिभूत करते हैं। आगे दस पदों में माता यशोदा की वियोग जनित वेदना का अंकन कर प्रात:काल घर से निकलकर संध्या तक पुत्र की प्रतीक्षा में रहने वाली माता के हृदय की अंतर्दशाओं का जीवंत चित्र प्रस्तुत करते हैं।[3] आगे गोचारण के अनंतर प्रत्यागमन करने वाले बालकृष्ण की शोभा से अति प्रसन्न होने वाली माता के हृदय की अंतर्दशाओं का जीवंत चित्र प्रस्तुत करते हैं।[4] आगे गोचारण के अनंतर प्रत्यागमन करने वाले बालकृष्ण की शोभा से अति प्रसन्न होने वाली माता यशोदा के चित्रण में कवि अत्यंत सफल हैं। इन पदों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि बालकृष्ण की मधुर लीलाओं में कवि का मन कितना रम गया है। कृष्ण के शिशु रूप से आकर्षित होकर बड़ी मार्मिकता के साथ बालकृष्ण की विविध चेष्टाओं का वर्णन कर वात्सल्य-रस की ऐसी अद्भुत धारा प्रवाहित की है जो समस्त तमिल साहित्य में अत्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होती है। शैशव काल की विभिन्न अवस्थाओं में शिशु की चेष्टाओं में होने वाले परिवर्तनों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या इसमें प्राप्त है। बच्चों को खिलाते, पिलाते, सुलाते, नहलाते, इठलाते और प्यार करते समय तमिल प्रदेश की माताएँ जो मधुर लोकगीत गाती हैं, उनको साहित्यिक रूप प्रदान कर पेरियाष़्वार ने तमिल साहित्य की अभूतपूर्व सेवा की है। तमिल भाषा में 'पिळ्ळै तमिष़्' कहलाने वाले इन गीत शैली की परंपरा के वे ही प्रणेता और सूत्रधार माने जाते हैं। उनके उपरांत आगे अनेक कवियों ने इस विशिष्ट 'पिळ्ळै तमिष़्' काव्य परंपरा को आगे बढ़ाया है, विकसित किया है।

1. सूर एवं पेरियाष़्वार की यशोदा:

श्री कृष्ण को अपने पुत्र रूप में पाकर यशोदा माता के वात्सल्य के कारण जो आनंदानुभूति प्राप्त करती है उसका जीवंत चित्रण सूरदास के पदों में हमें प्राप्त होता है। "सुहागिन यशोदा भाग्यवती माता है कि उसे हरि ही पुत्र रूप में प्राप्त है। उसके मुख से अपना मुख लगाकर बात करती है कि यह पुत्र मुझ निर्धनी का धन है। किलकारी करने वाले मनमोहन की छवि पर वह बलिहारी होती है। पुत्र को एकटक निहारती है और उसे गोद में उठाकर मन ही मन अति प्रसन्न होती है। आनंदविभोर होकर कहती है कि मैं पुत्र पर न्योछावर हो जाऊँगी। कन्हैया के मनोरम चक्षुओं के सौंदर्य पर यशोदा बलिहारी होती है।"[5]

कृष्ण जन्म के कुछ दिनों बाद यशोदा अपनी सहेलियों से कहती है- "पालने में छोड़ने पर पद-प्रहार करता है। कि उसके टूट जाने का भय रहता है। गोद में उठा लूँ तो कमर तोड़ देता है। छाती से लगा लूँ तो पेट को धक्का देता है। मुझसे इस शिशु को संभालना नहीं हो पाता। मैं क्या करूँ?[6]

किड़क्किल तोट्टिल किळ्ळिय उदैत्तिडुम्
ऐडुत्तुक्कोळ्ळिल मरुंगैयिरुत्तिडुम्
ओडुक्कि पुल्किळ उदरते पाय्दिडुम्
मिडुक्किल्लामैयाल नान् मेलिंदेन् नंगाय्।

पेरियाष़्वार स्वयं माता यशोदा बनकर संध्या को बछड़ों के पीछे-पीछे जाने वाले बालक कृष्ण के रूप-सौंदर्य को निहारते हैं और मुग्ध होकर कहते हैं कि "कुंडलों से सुशोभित कर्ण, सिर पर रक्तपुष्प, कटि पर पीतांबर धारण किए हुए एवं वक्ष पर मुक्ताहार पहने, बछड़ों के पीछे-पीछे आने वाले रत्नाकर के वर्णवाले कृष्ण की वेशभूषा को आकर देखिए!! इस पुत्र की माता मैं हूँ और कोई नहीं।"[7]

परियाळ्वार हरि के लोक-सौंदर्य को इतरों को भी दर्शाना चाहते हैं। उसमें माता का उचित गर्व प्रकट होता है।

2. बालस्वभाव की प्रवृत्तियों का चित्रण

बाल-सुलभ चेष्टाओं के सूक्ष्म वर्णन में दोनों कवि बेजोड़ हैं। चोरी के अपराध से, मिट्टी खाने के अपराध से, गोपियों को छेड़ने के अपराध से माता यशोदा कृष्ण को मथनी से मारती है, ओखले से बाँध देती है, कभी बलराम, कृष्ण को हाऊ का भय दिखाता है। परंतु कृष्ण के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं होता।

3. संतानोत्पत्ति के उल्लासपूर्ण वातावरण का चित्रण

भारतीय परिवारों में संतानोत्पत्ति के अवसर पर उत्सव मनाया जाता है। ऐसे अवसरों पर माता-पिता के अतिरिक्त बंधु-बांधव, इष्ट मित्र तथा गाँव के जन भी उसमें भाग लेते हैं। आनंद का पारावार नहीं होता। सूरदास का वर्णन इस प्रकार है :- "गोकुल में यशोदा माता प्रसववेदना की मूर्छा से छूटकर आँखें खोलकर शिशु को निहारती है कि उसका सारा अंग पुलकित हो जाता है। हृदय में आनंद समा नहीं पाता, हर्षातिरेक से उसका कंठ अवरुद्ध हो जाता है, कुछ बोलते नहीं बनता। नंद को बुलाकर कहती है कि पुत्र का मुख तो देखो। नंद बाबा दौड़कर आते हैं और पुत्र का मुख देखकर उन्हें सुखानुभूति होती है वह अवर्णनीय है।"[8]

पेरियाष्वार कृष्ण-जन्म का चित्रण बड़ी खूबी के साथ करते हैं। वे तिरुक्कोट्टियूर को ही ब्रजप्रदेश के रूप में भावित कर वहाँ के मंदिर को ही नंद बाबा का राजमहल मान लेते हैं जहाँ कृष्ण का जन्म हुआ। वे कहते हैं "कि सुंदर प्राचीरों से घिरे तिरुक्कोट्टियूर में केशव के जन्म पर आनंदित होकर लोग तेल और हल्दी के चूर्ण को घोलकर एक-दूसरे पर डालने लगे। उसके पृथ्वी पर गिरने एवं प्रवाहित होने से सारा आँगन पंकिल हो गया।"[9]

4. पालना प्रसंग

नवजात शिशु को नए पालने में पीठ के बल पर लिटाकर सुलाने के संस्कार के रूप में दोनों कवियों में पुष्कल रूप में प्रकट होता है। सूर का वर्णन देखिए:

ब्रज वनितायें सोहर गीत गाती हैं: रे बढ़ई! अतिशीतल चंदन को कटवाकर उसे खरादकर रंगों एवं नाना प्रकार की चित्रकारी से अलंकृतकर जल्दी बनाकर ले आओ! रे जाड़िया! तुम पाँच रंगों का रेशम लगाकर हीरे मातियों से मढ़ना और सारा जड़ाऊ काम कर लाना। ब्रजराज के छैला के लिए विश्वकर्मा ने बढ़ई बनकर और कामदेव ने सुनार बनकर पालना बनाया जिसमें असंख्य मणियाँ लगी थीं। ऐसा सुंदर पालना जब तैयार होकर आया तो ब्रज ने बारंबार कहा कि "हे गढ़ने वाले! तुम धन्य हो कि सुंदर पालना बनवा लाए हो। सखियों ने मंगल गान से और बहुत से बाजे बजाकर शिशु कृष्ण को ले जाकर पालने में लिटाया।"[10]

सूरदास का एक अन्य मनोरम एवं जीवंत चित्र इस प्रकार है- "माता यशोदा बालक को पालने में सुला रही है। वह उसे हिलाती-डुलाती है, दुलार करती है, चूमती है, बार-बार देखकर कुछ गाती है कि हे निंदिया! तू मेरे लाल के निकट आजा। आकर इसे क्यों नहीं सुलाती, वेग से क्यों नहीं आती। तुझे कन्हैया बुला रहा है। बालक कन्हैया तो कभी पलकें बंद करता है तो कभी उसके अधर फड़कते हैं। उसे सोता हुआ जानकर माता यशोदा मौन साध लेती है और बारंबार संकेत द्वारा दूसरों को कन्हैया के सोने की बात कहती है। पर इस बीच बालक कृष्ण आतुरतापूर्वक जग जाता है।"[11]

सूरसागर के ये दोनों प्रसंग अत्यंत विलक्षण हैं। आँखों के अंधे, प्रज्ञा चक्षु से इस अद्भुत एवं मनोरम दृश्य का दर्शन करते हैं जो अत्यंत सामान्य होते हुए भी अत्यंत जीवंत चित्र है।

पेरियाष्वार के लोरी गीतों में कृष्ण के पूर्वावतारों का उल्लेख है और वर्णन में सहजता दर्शनीय है।

"इंद्र ने तुझे किंकिणी युक्त नूपुर तथा कमरबंध भेजा है। वह स्वयं तेरे सामने खड़ा है, देखो तो!! स्वर्ग के देवताओं ने उत्तम दक्षिणामुखी शंख (तमिल में वलंबुरी संगु) कमलचरणों के उपयुक्त नूपुर, सुंदर कलाइयों में पहनने के लिए स्वर्ण कंकण और स्वर्ण मेखला भेजे हैं। हे देवकी के सिंह शावक! पुंडरीकाक्षाय!! हे घनश्याम! तू सो जा! तू सो!!"

हे विषपायी! (पूतना का विषपान से) भूदेवी ने तुझे उपहार के रूप में स्वर्ण मेखला, स्वर्ण धुरिका, किनारेदार पट्टवस्त्र, सुवर्ण पाटक, रत्न की टीका तथा स्वर्ण पुष्प भेजे हैं। तू रो मत। तू सो जा!!

हे श्रीरगंशायी!! दुर्गा तेरे शरीर पर लेपन के लिए सिंदूर लाकर खड़ी है, तेरे विशाल अक्षों पर लगाने के निमित्त अंजन, ललाट पर लगाने के लिए सिंदूर लाकर खड़ी है। हे कन्हैया!! तू रो मत! तू सो जा!!

उपर्युक्त इन गीतों के प्रसंग में यह स्पष्ट है कि शिशु के लिए अलंकरण की वस्तुओं और आभुषणों को स्वर्ग के देवताओं ने भेजा है। कवि स्वयं यशोदा माता बन सहज ही उसे दिव्य शिशु मानकर अनुभव करते हैं कि स्वयं दिव्य वातावरण में विद्यमान हैं। इस प्रकार रस निष्पत्ति में दोनों कवि सफल दीखते हैं।

5. बाल-चेष्टाओं और क्रीड़ाओं का चित्रण

माता-पिता को शिशु अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं अपनी क्रीड़ाओं से ही मोह लेता है। सूर एवं पेरियाष़्वार के गीतों में ऐसे वात्सल्य रस के प्रसंग अभूतपूर्व हैं। तुलनात्मक रीति से कुछ प्रसंगों का यहाँ उल्लेख किया जाता है-

बालक घुटनों के बल चलने का प्रयास करता है। माँ-बाप के आनंद की कोई सीमा नहीं है। सूर का घुटनों के बल रेंगने वाले कन्हैया का कैसा भव्य चित्र है :-

शोभित कर नवनीत लिए

घुटरनि चलत रेतु तन-मंडित, मुख दधि लेप किए।

चारुकपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए।

लट लटकनि मनुमत मधुपगन मादक मधुहिं पिए।

कठुला कंठ, ब्रज के हरि नख-राजन रुचिर हिय।

धन्य सूर एको पल इहिं मुख, का सतकल्प जिए।[12]

आगे सूरदास लड़खड़ाते हुए अपने पैरों चलने वाले बाल कृष्ण की छवि का मनोरम वर्णन करते हैं।

साथ ही चलते समय कष्ट उठाने वाले पुत्र को देख द्रवित होने वाली माता की मनोदशा भी अंकित है

चलत श्यामघन राजत, बाजति बैजनि पग-पग चारु मनोहर।

डगमगात डोलत आँगन में निरखि विनोद मगन सुरमुनि नर।

उदित मुदित अति जननि जसोदा, पाछे फिरती गहे अंगुरि कर।

मनौं धेनु तृन छांडि बच्छ-हित प्रेम द्रवित चित्त स्रवत पयोधर।

कुंडल लेल कपोल बिराजत, लटकति लटुरिया भू पर।

सूर श्याम-सुदर अवलोकन विहरत बाल-गोपाल नंदघर।[13]

उपर्युक्त चित्रण में माता के सात्विक अनुभाव की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। तमिल काव्य में पिळ्ळैत् तमिल की काव्य परंपरा के लक्षण के अनुसार शिशु के विकास-क्रम में तेरहवें महीने से यह अवस्था होती है। पेरियाष़्वार पैरों चलते-चलते बालक कृष्ण को अपने निकट बुलाते हैं। कवि बालक के वसन हीन (अनावृत) सौंदर्य का ही रसास्वादन करते हैं जो कि सहज एवं स्वाभाविक है। उनका एक अद्भुत चित्र निम्न प्रकार है :-

"लौहशृंखला में बंधा हुआ हाथी उस सांकल के गंभीर निनाद एवं स्वर्ण रज्जु से बाँधे हुए घंटियों की ध्वनि के साथ तीन प्रकार के मदनीर को झरते हुए जैसे चलता जाएगा, वैसे ही पादों के नूपुरों के झनकार सहित कटितट पर ही मेखला की क्षुद्र घंटिकाओं के मधुर निनाद सहित शारंगपाणि अपने युगल पादों से अरबराते हुए मेरे निकट आता है।"

तिरैनीर चंदिर मंडलम् पोर् चेंगणमाल केशवन् तन्।

तिरुनीर मुकत्तु तुलंग चुट्टि तिकळ्तेंगुं पुडै पेयर।
पेरुनीर निरयेळ गगैयिलु पेरियदोर तीर्थवलं
तिरुनीर चिरु शुण्णं तुळ्ळु चोर तळर नडै नऽवानो।[14]

6. तुतली बोली

बालक की तोतली बोली माता-पिता को मधुर लगती है और वे अत्यंत आनंद से भर जाते हैं। सूर का एक सुंदर चित्र निम्न प्रकार है:-

सखियों में एक का कथन है:

स्रवत सुनत उतकंठ रहत हैं जब बोलत तुतरात हीं।[15]

अन्य सखी कहती है

'हे सखि! यशोदा आनंद के साथ दही मथ रही है। उसकी मथनी 'घर-घर' की आवाज करती हुई घूम रही है। उसका पुत्र मोहन नाच रहा है और भूमि पर उसके चरण अटपटे पड़ रहे हैं। श्याम जब हँसते हुए तोतली बोली बोलता है तो उसकी दँतुलियाँ चमक जाती हैं:-

बोलत स्याम तोतरी बतियाँ हँसि-हँसि दँतियाँ दूमै।[16]

तमिल में पेरियाष़्वार चंद्र प्रस्ताव का चित्र इस प्रकार खींचते है- यशोदा चाँद को संबोधित कर उससे कहती है, हे चंद्र! तुझे बुलाने वाले इस शिशु की मीठी श्रुति-मधुर तोतली बोली तेरे कानों में नहीं सुनाई पड़ती? क्या तू बहरा है?

अऴगिय वायिल अमुदु पूरल तेळिवुरा
मऴलैं मुट्राद इन चोल्लाल उन्नै कूवुकिरान्
कुळगन शिरीदरन कूव-कूव नी पोदियेल
पुळयित वाकादे निन् चेवि पुकर मामदि।[17]

तमिल के नीतिग्रंथ "तिरुक्कुरळ" में भी कवि तिरुवळळुवर कहते हैं कि जो अपनी संतान की तोतली बोली नहीं सुनता, वही वीणा और वेणु केरव की मधुरता मानेंगे।

कुऴलिनिदु चाऴ इनिदु एन्ब तम मक्कळ
मऴलैच् चोल केळादार।[18]

शिशु के नवनीत नाट्य का चित्र सूरदास के शब्दों में देखें:

जसुमति दधि मथन करति, बैठि वरधाम अजिर
ठाढे हिर हँसते नान्हि दँतिमनि छवि छाजै।
चितवन चितलै चुराइ, सोभा बरनि न जाइ।
मनु मन-हरन काज मोहिनी दल साजै
जननि कहति नाचौ तुम दे हौं नवनीत मोहन,
रुनक झुनक चलत पाइ, नूपुर धुनि बाजै।
गावत गुन सूरदास, बढ़यौ जस भुव-अकास,
नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै।।[19]

इन्हीं का एक अन्य चित्र प्रकार है। गोप का कथन है:-

ऐरि आनंद सौ दधिमथति जसोदा, धमकि मथनियाँ घूमैं।

निरतलाल ललित मोहन, पग परत अटपटे भूमैं।

चारु चखौड़ा पर कुंचित कच, छबि मुक्ता ताहूँ मैं।

मनु मकरंद बिंदु लै मधूकर सुत प्यावन-हित झुमै।

बोलतस्याम तोतरी बतियाँ, हँसि-हँसि दतियाँ दूमै।
सूरदास बारी छबि ऊपर जननि कमल मुख चूमै।[20]

कृष्ण के नृत्य का मनोरम वर्णन लगभग सभी आऴवार भक्तों ने किया है। पेरियाष़्वार ने अखराते पादों से नृत्य करते-करते माता जसोदा के पास पहुँचने वाले कृष्ण के नृत्य का वर्णन कर माता जसोदा के हर्षाधिक्य का सुंदर चित्र खींचा है।

"कृष्ण की करधनी की किंकिनी, नूपुर एवं सिर पर टीका धारण करके पैजनियों के रुनक झुनक निनाद के साथ विद्युत सहित मेघ सदृश सामने से आने वाले बालक कृष्ण से जसोदा कहती है कि हे हमारे कुल-केतु आ, मुझसे गले लग ले।"[27]

सूरदास के कृष्ण का अपना प्रतिबिंब दर्शन प्रसंग अत्यंत मनोहर है जो तमिल काव्य में अत्यंत दुर्लभ है। सूर का वर्णन देखिए-

किलकत कान्ह घुटुरु बनि आवत।

मनिमय कनक नंद कै आँगन, बिंब पकरिबैं धावत।

कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौंकर सौंपकरन चाहत।

किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनिपुनि तिहिं अब गाहत।

कनक भूमि पर कर-पग छाया, यह उपमा इक राजति।

करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि वसुधा, कमल बैलकी राजति।

बल दसा-सुख निरखि जखोदा पुनिपुनि नंद बुलावति।
अँचरातर लौ दाँकि सूर के प्रभु कौ दूध पियावति।।[22]

एक और अनोखा चित्र सूरदास प्रस्तुत करते हैं जो अन्यत्र दुर्लभ है:

हरि ने मक्खन खाते हुए, हँसते हुए और किलकारी भरते हुए स्वच्छ जल का घड़ा पकड़कर देखा। उसमें अपना प्रतिबिंब देखकर और यह समझकर कि कोई दूसरा लड़का घूर रहा हो, वह क्रुद्ध हुआ। नंदबाबा के पास जाकर बोला, "बाबा इस घड़े में कोई छुपा हुआ है। इसने मेरा मक्खन खा लिया है।" ब्रजराज उसे गले लगाकर मुँह पोंछकर, चुंबन देते हुए उस स्थल पर आए और जब अपने बाबा के गले लगा हुआ पुत्र को देखा तो और भी गुस्से में आ गया। तुरंत यशोदा के पास गया और बोला "मैया मैं तेरा पुत्र हूँ। नंदबाबा ने तो आज दूसरा पुत्र बना लिया और मेरा कुछ भी मान नहीं किया।" जसुमति इस बाल-विनोद को समझकर उसी स्थान पर उसे ले आई और घड़े को दोनों हाथों से पकड़कर हिलाने लगी। उसमें अब मोहन का प्रतिबिंब

दिखाई नहीं दिया तब कुमार कृष्ण आनंदित होकर हँस पड़ा। नंदरानी इससे प्रसन्न हुई।"[23] "इसी प्रकार चोटी बढ़ाने की लालच वाला सूर का पद वात्सल्य का ज्वलंत उदाहरण पेश करता है।"[24] ऐसा प्रसंग तमिल काव्य में अलभ्य है। सूरदास की अनोखी मनोवैज्ञानिक सूझ के कारण अत्यंत सूक्ष्म भाव यहाँ व्यंजित है।

7. माखन-चोरी

कृष्ण की बाल्य लीलाओं में माखन चोरी प्रसंग महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चाहे हिंदी काव्य में हो चाहे तमिल काव्य हो दोनों में इस प्रसंग ने अधिक महत्वपूर्ण स्थान पाया है। माखन चोरी का प्रसंग सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं आकर्षक भी है और सूर ने इस प्रकार के शताधिक पद रचे हैं। माखन चोरी कर रंगे हाथ पकड़े जाने पर भोली मुख मुद्रा से बहाना बनाना आदि के माध्यम से जसोदा मैया और इतर ब्रज-बनिताएँ रसानुभूति करती हैं। निम्न प्रसंग में लौकिक-अलौकिक की आँख मिचौनी मार्मिक है:-

मैया री! मोहिं माखन भावै
अजो मेवा पकवान कहति तू मोहिं नही रुचि आवै।
ब्रज युवति इक पाछैं ठाढ़ी, सुनत स्याम की बात।
मन-मन कहति कबहूँ अपनै घर देखौ माखन खात।
बैठि जाइ मथनियाँ ढिग, मैं तब रहौं छपानी।
सूरदास प्रभु अंतर जामी, ग्वालिनी मन की जानी।[25]

ऐसे कई प्रसंगों की उद्भावना सूरदास ने की है जिससे वात्सल्य का रसोत्कर्ष होता है।

तमिल काव्य में पेरियाळ्वार ने श्रीकृष्ण की माखन-चोरी प्रसंग पर सविस्तार ध्यान दिया है। स्वयं जसोदा बन कवि संतान सुख की अपनी भावना के प्रकर्ष द्वारा अनुभव करने की उनकी शैली अद्भुत है।

जसोदा कृष्ण को नहलाकर खिला-पिलाकर कंघी चोटी करके केशों को सुमनों से अलंकृतकर (दक्षिणी परंपरा) अपने निकट लिटाकर सुख की नींद सोती है। बाद में प्रभात के समय अपने कामकाज में लग जाती है। तब कन्हैया भी जागकर घर-घर में घुसकर माखन की चोरी करके खाता है, बरतन भांडे फोड़ देता है। गरम दूध पी लेता है, छोटी लड़कियों का कंगण निकालकर उसे बेचकर जामुन खरीदकर खाता है। माखन-चोरी प्रसंग का चित्रण पेरियाळ्वार ने मार्मिक ढंग से किया है। बालकृष्ण एक गोपी के घर में घुसकर माखन को निश्शेष निगलकर रिक्त पात्र को फेंक देता है। उससे निकली आवाज़ से कृष्ण प्रसन्न होता है। उस घर की गोपिका जसोदा के पास आकर शिकायत करती हे कि तेरे बालक की चोरी के कारण हम सब परेशान हैं। तू तुरंत आकर उसे नखरे करने से मना करो। जले पर नमक छिड़कने जैसे कार्यों को घर-घर में जाकर करने में चतुर पुत्र की जननी जसोदा! तू अपने पुत्र को संभाल।[26]

इन उलाहनों के कारण माता जसोदा कृष्ण को अपने पास बुला लेती है। एक गोपिका जसुमति से कहती है- "जसोदा क्या तेरे घर में खाद्य वस्तुओं का अभाव है जो तेरा पुत्र हमारे घरों में आकर इस प्रकार की शरारत करता है। अंगीठी पर घी बनाने के लिए मक्खन रखा हुआ था। पूरे मक्खन को सफ़ाचटकर भांडे को भी फोड़कर इधर तेरे निकट अनजान बना खड़ा है। अरी यशोदा! तेरे घर के आस-पड़ोस में रहने वालों पर तेरे पुत्र द्वारा जो अन्याय हो रहा है वह रीति नहीं अनरीति है। यदि कुमार कृष्ण को तू अपने निकट नहीं बुलाएगी तो हमारा जीना दूभर हो जाएगा।"

उपर्युक्त चित्रणों में गोपियों के उपालंभ, उलाहना आदि द्रष्टव्य हैं। परंतु पेरियाळ्वार के माखन-चोरी प्रसंग में कृष्ण के कथन का उद्दीपन विभाव के रूप में प्रयोग नहीं हुआ। इस विषय पर सूरदास तो सर्वोपरि जान पड़ते हैं।

8. गोचारण प्रसंग

कृष्ण काव्य में गोचारण प्रसंग अत्यद्भुत है जिसमें कृष्ण बालबालकों में एक बालक बन अपने सौलभ्य को दिखाकर सबको आनंद विभोर कर देते हैं। इस प्रसंग में ही कृष्ण की अतिमानवीय लीलाएँ अधिकतर हुईं जैसे- वत्सासुर वध, धेनुकासुर वध, बकासुर वध, अघासुर वध इत्यादि। इस प्रसंग में सख्य भक्ति का पूर्ण विकास भी हमें प्राप्त होता है।

सूरदास का कृष्ण अपनी माता यशोदा से कहता है कि "मैया, मेरे गाय चराए जाने की बात नंद बाबा से कहो और कहो कि मैं बड़ा हो गया और अब न डरता हूँ। हलधर के साथ ही रहूँगा। बंसीवट की छाया में ग्वालों के साथ खेलने में मुझे आनंद प्राप्त होता है।

बहँगी में तू भात भेज दे तो भूख लगने पर खा लूँगा। सौगंध खाता हूँ जमुना जल में न नहाऊँगा।"[27]

इसके विपरीत पेरियाळ्वार की यशोदा इस बात पर ग्लानि व्यक्त करती है कि मैंने कृष्ण को गाएँ चराने के निमित्त वन भेजकर बड़ी भूल कर दी है। दिन भर कृष्ण की अनुपस्थिति से व्यथित एवं बेचैन माता यशोदा, संध्या को घर लौट आने वाले कृष्ण से कहती है कि "तुझे गोचारण के लिए वन भेजकर मैंने तुझ पर बड़ा अन्याय किया है। आज के बाद तू गायों के पीछे चारागाह न जाए।[28] पेरियाळ्वार के मातृहृदय की स्वाभाविक चिंता, भय एवं ग्लानि उक्त कथन में द्रष्टव्य है।

दिन भर गैयों के पीछे-पीछे भागते और उन्हें चराते हुए तेरा क्रांतियुक्त शरीर धूल-धूसरित एवं मलिन हो गया है। तेरे स्नान के निमित्त स्वच्छ जल तैयार रखा है। तू जा और जल्दी स्नान कर आ जा। तेरे साथ भोजन करने के लिए तेरे पिता नंद बाबा भी तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।[29]

वन से गाएँ चराते कृष्ण को कहीं असुरों से हानि न पहुँचे, इस स्वाभाविक चिंता से माता यशोदा कृष्ण की खैर की कामना करती हुई ईश्वर से प्रार्थना करती है और साथ उसे हानि पहुँचाने वाली दुष्ट शक्तियों को नष्ट हो जाने का शाप देती है।[30]

जहाँ सूरदास बालकृष्ण में युवकोचित साहस; निर्भयता का स्वाभाविक चित्रण कर हमें अभिभूत कर देते हैं, वहीं पेरियाळ्वार में मातृहृदय की स्वाभाविक चिंता, भय एवं ग्लानि का मार्मिक चित्रण है।

निष्कर्ष रूप में हमें इतना ही कहना है कि चाहे तमिल के वैष्णव भक्त पेरियाळ्वार हों, चाहे हिंदी के कृष्ण भक्त शिरोमणि सूरदास हों दोनों बाल्य-लीलाओं के मनोयोगपूर्वक चित्रण करने में अपनी-अपनी भाषा में अद्वितीय स्थान रखने हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी की शब्दावली का प्रयोग करते हुए अगर कहा जाए तो वात्सल्य का कोना-कोना झाँकने में इन दोनों भक्त-प्रवर कवियों ने कोई कसर न उठा रखी।

संदर्भ सूची

1. डॉ. मुंशीराम शर्मा - भक्ति का विकास - पृ. सं. 104-105

2. पेरियाष्वार तिरुमोषि् - 3 : 2; 1-20; 3: 3; 1-10

3. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी-सूरसाहित्य पृ. सं. 129-130

4. पेरियाष्वार तिरुमोषि् - 3 : 2; 1-20; 3: 3; 1-10

5. सूर-सागर - दशमस्कंध - 72-990

6. पेरियाष्वार - तिरुमोषि् - 1-1-9

7. पेरियाष्वार - तिरुमोषि् - 3-3-1

8. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 13

9. पेरियाष्वार - तिरुमोळि् - 1-1

10. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 41-659

11. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 41-659

12. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 99-717 व पद 124-742

13. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 124-742

14. पेरियाष्वार - तिरुमोळि् - 1-7-10

15. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 136

16. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 147

17. पेरियाष्वार - तिरुमोळि् - 1-4-5

18. तिरुक्कुरल - कुरल 66

19. सूर-सागर - दशमस्कंध-147 -पृ. सं. 785

20. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 147-765

21. पेरियाष्वार - तिरुमोळि् - पद 1-84

22. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 10

23. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 156-774

24. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 175-793

25. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 264 पृ. 882 और पद 265 पृ. 883

26. पेरियाळ्वार - तिरुमोळि् - 2-9-1

27. सूर-सागर - दशमस्कंध - पद 412 : पृ.सं. 1030

28. पेरियाळ्वार - तिरुमोळि् - 3-3-3

29. पेरियाळ्वार - तिरुमोळि् - 3-3-7

30. पेरियाळ्वार - तिरुमोळि् - 3-3-7

– 'गुरुकृपा' प्लॉट-790, डॉ. रामास्वामी सलाइ, के. के. नगर (पश्चिम), चेन्नई-600078

❑❑❑

कफ़न : उल्लास और विद्रोह की गाथा

डॉ. पंकज साहा

'कफ़न' न केवल प्रेमचंद की बल्कि हिंदी की सबसे चर्चित और सबसे विवादास्पद कहानी है। प्रेमचंद के जीवन-काल से आज तक इस कहानी के पक्ष-विपक्ष में अनेक पाठ आए हैं। 'जाकी रही भावना जैसी' के साथ विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से इस पर विचार किया है।

डॉ. हंसराज रहबर ने इसे अराजकता को प्रोत्साहित करने वाली गलत कहानी माना है। उनका मानना है कि इस कहानी के घीसू और माधव नकारात्मक पात्र हैं। वे पतनोन्मुख साहित्य के हीरो बन सकते हैं, स्वस्थ और संघर्षशील साहित्य के नहीं। लेकिन डॉ. नामवर सिंह इसे हताशा की कहानी नहीं मानते। उन्होंने अपने एक लेख 'प्रेमचंद : अंतर्विरोध और स्वाधीनता-संग्राम' में लिखा है, "अपनी 'कफन' कहानी में प्रेमचंद ने शोषण के भयावह रूप का चित्रण किया है। लेकिन उसे निराशा की कहानी समझना भूल होगी, वह विद्रोह की कहानी है।" (प्रेमचंद और प्रगतिशील लेखन, सं.- विजय गुप्त, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. -15)

इस कहानी के यथार्थ पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए डॉ. इंद्रनाथ मदान ने कहा कि "कहानी जिस सत्य को उजागर करती है, वह जीवन के तथ्य से मेल नहीं खाता।" दरअसल प्रेमचंद और अन्य कथाकारों में अंतर यही है कि जहाँ साधारणत: कथाकार यथार्थ को कथा का रूप देते हैं, वहीं प्रेमचंद कल्पित कथा को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वह यथार्थ प्रतीत होती है। आदर्शवाद से यथार्थवाद की ओर उन्मुख प्रेमचंद समाज की कार्य-कारण प्रक्रिया की जटिलताओं में यथार्थ की खोज करते हैं। ब्रेख्त के अनुसार, "यथार्थवाद का उद्देश्य है समाज की कार्य-कारण-प्रक्रिया की जटिलताओं की खोज करना, समाज जिन भीषण कठिनाइयों से गुजर रहा है उनसे मुक्ति के सर्वाधिक व्यापक उपाय पेश करने वाले सर्वहारा वर्ग के दृष्टिकोण से रचना करना, विकासशील तत्वों को महत्व देना, संभावनाओं को मूर्त रूप देना और ठोस वस्तुस्थिति से संभावित सामान्य निष्कर्ष निकालना।"

प्रेमचंद और कुछ दिन जीवित रहते तो उनकी यथार्थ-दृष्टि और साफ होकर प्रकट होती।

हिंदी आलोचना के शिरोमणि आचार्य रामचंद्र ने इस कहानी को पढ़ने के बाद अत्यंत आहत होकर कहा, "अब प्रेमचंद की कल्पना अधिक उड़ाने भरने लगी है।" दरअसल शुक्ल जी साहित्य में मानुषी भावों की रक्षा देखना चाहते थे, इसीलिए वे 'कफन' का समर्थन न कर सके। शुक्ल जी की मानुषी-दृष्टि सामंतवादी है। प्रेम भी एक मानुषी-भाव है, परंतु शुक्ल जी ने कृष्ण-भक्त कवियों द्वारा अभिव्यंजित कृष्ण की प्रेम-लीलाओं को साहित्य और समाज के संवर्धन में बाधक माना है। दरअसल वे कृष्ण को भी राम की तरह लोक-रक्षक रूप में देखना चाहते थे। सामंती मूल्यों के साथ राम ने लोक-रक्षक की जो भूमिका निभाई, शुक्ल जी श्रीकृष्ण को उसी भूमिका में पाना चाहते थे। अर्थात् बड़े-बड़े भूपालों के बीच लोक-व्यवस्था की रक्षा करते हुए द्वारका को कृष्ण के रूप में न कि प्रेमोन्मत्त गोपिकाओं से घिरे हुए गोकुल के कृष्ण के रूप में। ऐसे में सामंतों, सेठों, सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रति घृणा-भाव

रखने वाले घीसू-माधव की प्रशंसा वे कैसे कर सकते थे? जबकि घृणा भी एक मानुषी भाव है। घृणा की बदबू सामाजिक व्यवस्था की सड़ांध से उत्पन्न होती है। शुक्ल जी ने अपने 'घृणा' निबंध में कहा भी है, "अरुचिकर विषयों के उपस्थित होने पर अपने ज्ञान से उन्हें दूर रखने की प्रेरणा करने वाला भाव घृणा कहलाता है।"

घीसू और माधव को परिश्रम से घृणा है। उन्हें प्रेमचंद ने कामचोर, निकम्मा, और आलसी बताते हुए कहा है, "घीसू एक दिन काम करता, तो तीन दिन आराम। माधव इतना कामचोर था कि आध घंटे काम करता, तो घंटे भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुट्ठी भर भी अनाज मौजूद न हो, तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माधव बाजार में बेच आता। और जब-तक पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे फिरते। जब फाके की नौबत आती, तो फिर लकड़ियाँ तोड़ते या मजदूरी तलाश करते।"

प्रश्न यह है कि क्यों उन्हें काम करने में रुचि नहीं थी? इसका उत्तर देते हुए प्रेमचंद कहते हैं, "जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा संपन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।"

डॉ. राजेंद्र यादव ने 'कफन' को हृदय-स्तब्धता या विजड़ित संवेदना की कहानी माना है। डॉ. शुकदेव सिंह ने 'कहानियाँ' की प्रस्तावना में लिखा है, "गरीबी के कारण घीसू और माधव जैसे दलित, पिता-पुत्र की मर्यादा विस्मृत कर अपनी भूख में हास्यास्पद हो गए हैं, परिवार के सदस्य की मृत्यु के बारे में संवेदन शून्य हो गए हैं।"

'विचारधारा के अंत' की बात भले ही पचास के दशक से की जाने लगी हो, संवेदना का अंत तो पूँजीवाद के उदय से ही होने लगा था। आज तो हम इतने संवेदनहीन हो गए हैं कि सिर्फ शक के आधार पर किसी की पीट-पीटकर हत्या कर देते हैं। किसी दुर्घटना में किसी व्यक्ति को तड़पते देखकर भी उसे अस्पताल पहुँचाने के बदले तमाशा देखने एवं उसका वीडियो लेने में सुख का अनुभव करने लगे हैं। लेकिन 'कफन' में घीसू-माधव इतने संवेदनहीन नहीं हैं। यह नकारात्मक सोच की कहानी नहीं है। डॉ. कमल किशोर गोयनका 'कफन' को मृत्यु नहीं, जीवन की कहानी मानते हुए कहते हैं, "उसमें संवेदना और मानवीयता से परिपूर्ण प्रसंगों की कमी नहीं है। घीसू में हमदर्दी का भाव है। उसकी औरत मरी थी तो वह तीन दिन तक उसके पास से हिला भी नहीं था। वह माधव से प्रसव-वेदना से चीखती बुधिया को देखने-संभालने को कहता है। बुधिया मरती है तो पड़ोसी सांत्वना देते हैं और गाँव की नर्म दिल स्त्रियाँ आँसू बहाने आती हैं तथा गाँव के दूसरे लोग कफन तथा लकड़ी को एकत्र करने में मदद करते है। यह सब गाँव की सामूहिक संवेदना का प्रमाण है। माधव का दो बार रोना भी भावावेग ही है। हँसना और रोना दोनों ही मनुष्य की संवेदनशीलता के अंग हैं।" (विश्व-भारती पत्रिका, खंड : 66, पृ.-7)

साहित्य संवेदनाओं के माध्यम से ही मूल्यों का प्रचार-प्रसार करता है, लेकिन संवेदना अंततः समाज-सापेक्ष होती है। मार्क्स-एंगेल्स का मानना है कि "मनुष्यों की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उल्टे उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना का निर्धारण करता है। अपने विकास की एक खास मंजिल पर पहुँचकर समाज की भौतिक उत्पादन-शक्ति तत्कालीन उत्पादन संबंधों से टकराती है, जिसके अंतर्गत वह उस समय तक काम करती होती है। ये संबंध उत्पादन शक्तियों के विकास के अनुरूप न रहकर उनके लिए बेड़ियाँ बन जाते हैं। तब सामाजिक क्रांति का एक नया युग शुरू होता है।" (उद्धृत 'उत्तरार्द्ध', अंक : 20, अक्तूबर 1982, पृ.-IX)

नामवर जी प्रेमचंद को क्रांतिकारी लेखक मानते हुए कहते हैं कि "यद्यपि लोग उन्हें गांधीवादी कहते हैं, लेकिन वे गांधी से दो कदम आगे बढ़कर आंदोलन और क्रांति की बात करते हैं। प्रेमचंद महाजनी (पूँजीवादी) और सामंतवादी व्यवस्था को समाप्त कर शोषण-मुक्त समाज देखना चाहते थे। 'रंगभूमि' के बाद वे यह समझ गए थे कि किसान मजदूर बन जाएँ तो उसका रूढ़िवाद और परंपरागत कुसंस्कारों से पिंड छूटता है और नए आर्थिक संबंध उसे अधिक क्रांतिकारी बना देते हैं। वे यह भी समझ रहे थे कि क्रांति परिश्रमी वर्ग द्वारा ही

संभव है। 'पूस की रात' कहानी का नायक हल्कू किसान (परिश्रमी वर्ग का) है। हल्कू द्वारा राख के पास गर्म जमीन पर चादर ओढ़कर सोने और पकी हुई फसलों के नष्ट हो जाने पर प्रसन्न होने की घटनाएँ निरर्थक नहीं हैं। 'राख' सर्वहारा का बोधक है। 'गर्म जमीन' क्रांति की गर्माहट की प्रतीक है और 'चादर ओढ़कर सोना' क्रांति के पूर्व सन्नाटे एवं क्रांति के उपरांत निश्चिंतता के संकेत हैं। पकी हुई फसलों के नष्ट हो जाने पर हल्कू की प्रसन्नता नई सामाजिक व्यवस्था के लिए क्रांति का बिगुल ही है। सच्चा योद्धा मुख भारी करके, तनाव के साथ युद्ध-क्षेत्र में नहीं उतरता।

'ईदगाह' का हामिद भी प्रसन्न भाव से चिमटा खरीदता है। चिमटा वह सिर्फ अपनी दादी अमीना के लिए नहीं खरीदता। वह उसके संघर्ष का हथियार भी है। चिमटा खरीदते समय दादी का हाथ जलने का ख्याल उसे अवश्य रहता है, परंतु उसके अंतस में अपने शत्रुओं ('मित्र होते तो मित्रता निभाते') से बदला लेने की भावना अधिक बलवती है। प्रेमचंद कहते हैं, "उसके पास न्यास का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है।"

तो क्या प्रेमचंद अपनी रचनाओं के द्वारा क्रांति की जमीन तैयार करना चाहते थे? क्या वे किसानों-मजदूरों द्वारा वर्ग-संघर्ष की प्रेरणा देना चाहते थे? फरवरी, 1919 ई. के 'जमाना' में छपे एक लेख में उन्होंने लिखा भी था, "आने वाला जमाना अब किसानों और मजदूरों का है। दुनिया की रफ्तार इसका साफ सबूत दे रही है।.... इंकलाब के पहले कौन जानता था कि रूस की पीड़ित जनता में इतनी ताकत छिपी हुई है?" (विविध प्रसंग, खंड-1 पृ. 268) लेकिन उनके उपन्यासों पर दृष्टि डालने से हम पाते हैं कि प्रेमचंद की किसान चेतना 'वरदान' (1912), 'सेवासदन' (1918) से उत्तरोत्तर विकसित होती हुई 'प्रेमाश्रम' (1922) में वर्ग-संघर्ष के मुहाने तक आती है फिर अपना मार्ग बदलकर किसान-समस्या का गांधीवादी हल ढूँढ़ने लगती है। आश्चर्य है कि गांधी की विचारधारा से प्रभावित होते हुए भी उन्होंने कहा था, "मैं गांधीवादी नहीं हूँ" तथा मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होते हुए भी उन्होंने स्पष्ट कहा था, "मेरा कम्युनिज्म केवल यह है कि हमारे देश में जमींदार, सेठ आदि जो कृषक के शोषक हैं न रहें।"

प्रेमचंद शोषणहीन समाज का सपना देखते थे, समाज में साम्य देखना चाहते थे, परंतु मार्क्स के वर्ग-संघर्ष के रास्ते नहीं बल्कि भारतीय आदर्शवादी तरीके से। शायद इसीलिए अपनी रचनाओं में वे वर्ग-विषमता, वर्ग-चेतना आदि तो खूब व्यक्त करते हैं, परंतु वर्ग-संघर्ष संगठित विद्रोह या क्रांति का खुलकर प्रदर्शन करने में संकोच करते हैं। अपने 'हतभागे किसान' लेख में उन्होंने स्पष्ट कहा है, "हमें तो उन्नति के लिए ऐसे विधानों की जरूरत है जो समाज में विप्लव किए बिना ही काम में लाए जा सकें। हम श्रेणियों में संग्राम नहीं चाहते। हाँ, इतना अवश्य चाहते हैं कि सरकार और जमींदार दोनों ही इस बात को भूल न जाएँ कि किसान भी मनुष्य है, उसे भी रोटी और कपड़ा चाहिए, रहने को घर चाहिए, उसके घर में शादी-गमी के अवसर आते हैं, उसे भी अपनी बिरादरी में अपनी कुल-मर्यादा की रक्षा करनी होती है। बीमारी औरों की तरह उस पर भी व्याप्त होती है। इसलिए लगान बाँधते समय इस बात का ख्याल रखें कि किसान को कम-से-कम खेती में इतनी मजूरी तो मिल जाए कि वह अपने बाल-बच्चों का पालन कर सकें।" (हंस, 19 दिसंबर, 1932)

'गोदान' प्रेमचंद की इस सोच का परिणाम है। दरअसल गोदान तक आते-आते प्रेमचंद की विचारधारा अत्यंत विकसित हो गई थी। वे अंग्रेजी सरकार, भारतीय रजवाड़ों, जमींदारों, अफसरशाहों और पूँजीपतियों की मिलीभगत से चलाए जा रहे शोषण के दुष्चक्र को भली-भाँति समझ गए थे। उनकी शोषण-चक्की में पिसती खेतीहर जनता के दुख-दर्दों को देख-समझकर वे अत्यंत विचलित थे। अब वे किसी सिद्धांत अथवा विचारधारा की लाइन पर चलते हुए समस्याओं का हल प्रस्तुत करने में उत्साहित नहीं थे बल्कि वस्तुस्थिति को समझकर, सामाजिक यथार्थ को उपस्थित करना चाहते थे। परंतु शोषण के विरुद्ध उनकी व्यक्ति-चेतना मर नहीं गई थी। 'गोदान' में धनिया, गोबर, गिरिधर, हरखू आदि के माध्यम से, 'कफन' में घीसू-माधव के माध्यम से और 'मंगलसूत्र' में पं. देवकुमार के माध्यम से जनता की सक्रिय भागीदारी को वे जीवित रखना चाहते थे। अब वे न तो रामराज्य का सपना देख रहे थे न समाजवाद का। उनका विद्रोह भी स्थूल से सूक्ष्म की

ओर जा रहा था, समष्टि से व्यष्टि की ओर जा रहा था। यही विद्रोह छायावादी कवियों में भी देखा जा सकता है। 'छायावाद की शव-परीक्षा' करते हुए डॉ. नवल किशोर गौड़ ने लिखा है, "स्थूल से सूक्ष्म की ओर पलायन और वर्तमान से अतीत का पुनर्दर्शन, मैं दोनों को एक ही चित्र के दो पहलू मानता हूँ। छायावाद की इस प्रवृत्ति ने हमें स्वस्थ सर्जनात्मक जीवन-दर्शन भले ही न दिया हो, किंतु उसने हमारी मौलिक विद्रोह-भावना को उत्तेजना अवश्य ही दी है।"

'कफन' में घीसू-माधव का चरित्र निश्चय ही हमें कोई सर्जनात्मक जीवन-दर्शन नहीं देता, पर जब घीसू उल्लास की लहरों में तैरता हुआ कहता है, "वह न बैकुंठ में जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं"- तब घीसू का विद्रोह सामाजिक व्यवस्था के अमानवीय चरित्र का पर्दाफाश कर देता है। घीसू यहाँ मुखर होकर विद्रोह करता है। इसके पूर्व माधव की असंवेदनशीलता और घीसू-माधव की कामचोरी में भी विद्रोह की भावना निहित है। राजा-महाराजाओं के समय रानियों का कोप-भवन में जाना, गांधी जी का असहयोग आंदोलन करना, नेताओं एवं अन्य लोगों का अनशन, भूख-हड़ताल करना, किसानों की आत्महत्या, आंदोलनकारियों का आत्मदाह आदि विरोध एवं विद्रोह के ही रूप हैं।

'गोदान' का गिरिधर ताड़ी पीकर पूरी सामाजिक व्यवस्था को मुँह चिढ़ाता है, तो वहाँ उसके उल्लास में विद्रोह का भाव प्रकट है। घीसू-माधव का उल्लास और विद्रोह ही 'कफन' कहानी का मूल कथ्य है। जीवन का उल्लास और विद्रोह छायावादी काव्य की भी मूल चेतना है। फर्क सिर्फ दोनों की दृष्टि में है। छायावादी कवियों के विद्रोह में राजनैतिक मुक्ति की चाह बलवती थी तो प्रेमचंद में सामाजिक-आर्थिक मुक्ति की। जीवन का उल्लास दोनों में है, पर स्तर-भेद भी है।

'ईदगाह' कहानी में हामिद का उल्लास और विद्रोह एक साथ प्रकट हुआ है। 'पूस की रात' में उल्लास प्रत्यक्ष है विद्रोह प्रच्छन्न। 'कफन' में घीसू और माधव विद्रोह-भावना के बावजूद उल्लसित होकर जीवन का पर्व मनाते हैं। डॉ. कमल किशोर गोयनका की यह बात जँचती है कि "कहानी इस प्रकार ईश्वरीय विश्वास एवं पारलौकिक सत्ता के माया-जाल के तिलिस्म को निरावृत्त करके मृत्यु तथा उससे जुड़े स्वर्ग-नर्क, बैकुंठ-परलोक आदि की अवास्तविक कल्पना पर जीवन की वास्तविकता एवं श्रेष्ठता को स्थापित करती है। कहानीकार मृत्यु एवं परलोक का गौरव नहीं, जीवन का सम्मान चाहता है और इसीलिए वह 'कफन' कहानी को मृत्यु की कहानी न बनाकर जीवन की कहानी के रूप में रचता है। पराधीन भारत के मरणासन्न समाज को मृत्यु के अंधकार-लोक एवं अस्तिवहीन परलोक के स्थान पर जीवन के उल्लास की ही आवश्यकता थी।" (विश्व-भारती पत्रिका, खंड : 66, पृ. -16) गौतम बुद्ध ने भी जीवन-सघंर्षो के बीच मधु की कुछ बूँदों की प्राप्ति को ही जीवन माना है।

अपने जीवन के अंतिम दिनों में प्रेमचंद जीवन का वैज्ञानिक विश्लेषण कर रहे थे। वे भौतिकवाद के माध्यम से ही अध्यात्मवाद को प्राप्त करना चाहते थे। वे भाग्यवाद के एकदम विरोधी हो गए थे। इसीलिए कहानी के अंत में घीसू-माधव के मुख से "होहिहे वही जो राम रची राखा" नहीं गवाते। जबकि वैसी परिस्थिति में भारतीय जनता के मुख से ऐसी उक्ति निकलना ही स्वाभाविक है। भारतीय जन की भाग्यवादी विचारधारा के विपरीत घीसू-माधव द्वारा कबीर का निर्गुण गवाना दरअसल सवर्णवादी सगुणवाद के विरुद्ध अवर्णवादी निर्गुणवाद का विद्रोह भी है।

– एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर (प. बं.)-721305

❑❑❑

मीर और उनकी शायरी की दुनिया

सुशील सरित

मीर की शायरी में उर्दू कविता की परंपरागत रचनाधर्मिता का पूरी तरह से निर्वाह हुआ है। उनके 6 दीवान हैं। हालाँकि इन दीवानों में संकलित कुल 15000 शेरों में से कई शेर ऐसे हैं जो मीर के हैं या नहीं, इस पर विद्वानों में विवाद है। कुल्लियात-ए-मीर (मीर का समग्र साहित्य) में दर्जनों मसनवियाँ, कसीदे, वासोख्त और मर्सिये संकलित हैं। इसका प्रकाशन मीर की मौत के एक साल बाद सन् 1811 में हुआ।

मीर को इश्क और दर्शन का शायर कहा जाता है। ये एक बुनियादी सच्चाई है कि हर शायर ज़िंदगी के जिन-जिन दौरों से गुजरता है, उन दौरों की छाया उसकी शायरी पर पड़ती है। ग्यारह साल की छोटी-सी उम्र में पिता के साये से महरूम होकर मीर ने जिस मुफलिसी के दौर का सामना किया उसने ताजिंदगी उनका दामन थामे रक्खा। उनकी जिंदगी का सबसे बेहतरीन दौर लखनऊ में नवाब आसफउद्दौला के दरबार में रहने का दौर कहा जा सकता है। लेकिन लखनऊ ने उन्हें ऐसे ही नहीं कुबूल कर लिया था। यह वह जमाना था जब दरबारों की शान शायरों से ही मानी जाती थी। उस वक्त भी नवाब आसफउद्दौला के दरबार में अनेक शायरों को पनाह मिली हुई थी। उन शायरों ने लखनऊ पहुँचने पर मीर की खिल्ली उड़ाई और उन्हें दीवाना शख्स कहकर दर-दर भटकने वाला कहा। इसके जवाब में मीर ने तीन शेर कहे-

क्या बादाकश (शराबी) पूछो हो पूरब के साकिनो
हमको गरीब जान के हँस-हँस पुकार के
दिल्ली जो एक शहर था आलम में इंतखाव (चुना हुआ)
रहते थे मुंताखब (चुनाव) ही जहाँ रोजगार के
उसको फ़लक ने लूटकर वीरान कर दिया
हम रहने वाले है। उसी उजड़े दियार (क्षेत्र) के

उनकी इस कहन ने उन्हें लखनऊ के दरबार में इज्जत बख्शी। धीरे-धीरे वो नवाब के प्रिय शायरों में शामिल हो गए। एक बार उन्हें नवाब साहब के साथ शिकार पर जाने का मौका मिला तो उन्होंने जो शिकारनामा तैयार किया उसका उर्दू अदब में अलग ही मुकाम है। मीर को गुजरे हुए लगभग 250 बरस हो रहे हैं और इसमें भी कोई संदेह कि उनके बाद उर्दू साहित्य के कोष को अपनी सियाही से आबाद करने वाले सुखनगरों (शायरों) की लंबी फेहरिश्त (सूची) है जिसमें दुनिया का नंबर वन शायर का मुकाम हासिल करने वाला नाम ग़ालिब भी शामिल है, लेकिन मीर के शेरों की न तो आब अब तक ज़रा भी फीकी पड़ी है, न ही उनका प्रभाव ही कम हुआ है, उल्टे वक्त के साथ उनकी चमक में इज़ाफा ही हुआ है।

कहते हैं कि मीर के वालिद हुजूर ने अपने आखिरी वक्त में मीर से कहा था कि "बेटा इश्क इख्तियार कर कि दुनिया के इस कारखाने में उसी का कमाल है।" शायद ये इन्हीं शब्दों का असर था कि मीर अपनी आखिरी साँसों तक इश्क की इबादत करते रहें।

मीर ये इश्क भारी पत्थर है
कब ये मुझ नातवां (कमजोर) से उठता है।

इश्क ही इश्क है, नहीं है कुछ
इश्क बिन तुम कहो कहीं है कुछ

अब इन दो शेरों की गहराई पर अगर गंभीरता से विचार किया जाए तो मीर की सोच और इश्क के बारे में उनका फलसफा स्पष्ट हो जाता है।

मीर इश्क को एक ऐसा जरिया मानते हैं जिससे सब कुछ हासिल किया जा सकता है। दीन (खुदा) और दुनिया दोनों में कामयाबी हासिल करनी है तो इश्क को ही माध्यम बनाना पड़ेगा। इश्क ही वह ड्योढ़ी है जिसके एक ओर दुनिया है, दुनिया की नेमते हैं, महबूब है, महबूब के साथ की लज्ज़त है तो दूसरी ओर खुदा का दीदार है, रूह का सुकून है और उस सुकून से प्राप्त आनंद है।

इश्क का फ़लक इतना विशाल है कि न उसके सिरे को पाया जा सकता है, न उसका एहसास कभी खत्म हो सकता है।

इश्क है ताज़ाकार ताज़ा ख़याल
हर जगह इसकी एक नई है चाल।

यानी यहाँ इश्क की विशेषता का वह वर्णन है जो मीर को अपने समकालीनों से अलग करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो इश्क की कैफियत वही है, जो खुदा की है। जैसे खुदा हमेशा नए रंग में खुद को व्यक्त करता रहता है, इश्क भी हर जगह एक नई चाल में नजर आता है।

अपनी एक मसनबी में मीर मुहब्बत को लेकर कुछ इस तरह बयान करते हैं।

मुहब्बत न जुल्मात (अंधेरा) से काढ़ा है नूर (रोशनी)
न होती मुहब्बत न होता जुहूर (प्रकटीकरण)
मुहब्बत ही इस कारखाने में है
मुहब्बत से सब कुछ जमाने में है।

यहाँ एक बात जो सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है वह यह है कि मीर की शायरी उर्दू कविता का वह मुकाम है जहाँ कविता फ़ारसी से उर्दू की तरफ बाकायदा करवट लेती नजर आती है। हालाँकि मीर से पहले ही ये कोशिश शुरू हो चुकी थी लेकिन मीर ने जिस तरह आम फ़हम भाषा को शायरी की भाषा बनाकर उसकी प्रभाव क्षमता का इस्तेमाल किया वह शायरी की दुनिया की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है।

मीर की कहन (अर्थात् शेर कहने का वह अंदाज जो सुनने वाले के दिन में उतर जाने की कुव्वत रखता है) ही उनके शेरों की वह खूबी है जो 250 सालों के वक्त को पार कर आज भी ताजगी का एहसास कराती है।

बेखुदी ले गई है कहाँ हमको
देर से इंतजार है अपना
कुछ करो फिक्र मुझ दीवाने की
धूम है फिर बहार आने की
दिखाई दिए यूँ कि बेखुद किया
मुझे आपसे ही जुदा कर चले

मीर के इन सादा मगर खूबसूरत कहन के मालिक उपरोक्त शेरों जैसे अन्य अनेकों शेरों की प्रभाव क्षमता का इससे बढ़कर प्रमाण क्या हो सकता है, कि हमारे आज के दौर के सबसे सशक्त माध्यम फिल्मों में उनके शेरों का ज्यों का त्यों या मामूली से फेरबदल के साथ खूब इस्तेमाल किया गया है।

उपरोक्त तीन शेरों में "दिखाई दिए....." को (शेर जिस ग़ज़ल में शामिल है वह पूरी ग़ज़ल) सन् 1982 में बाजार फिल्म में ज्यों का त्यों इस्तेमाल किया गया। लताजी के स्वर में खैय्याम के संगीत निर्देशन में गाई गई ये ग़ज़ल फिल्मी गीतों के संसार में अलग से जगमगाती नजर आती है। "यारो मुझे मुआफ करना मैं नशे में हूँ।" और "पत्ता-पत्ता बूटा-बूटा हाल हमारा जाने है", जैसे मिसरों को भी फिल्मों में ज्यों का त्यों इस्तेमाल किया गया।

याद उसकी इतनी खूब नहीं मीर बाज आ
नादान फिर वो जी से भुलाया न जाएगा

बेहद सादा से लगने वाले शेर की ऊँचाई इसे बस दो लफ्ज़ों "बाज आ" से कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है, इसका बयाँ करना आसान नहीं है।

मीर के बारे में एक किस्सा बड़ा मशहूर है। अमरोहा के एक बहुत बड़े आर्टिस्ट 'सादिकैन' को यह कमाल हासिल था कि वे बड़े से बड़े शायर के शेरों में व्यक्त ख़्याल को बड़ी ही खूबी से सामने पोर्टरेट पर उतार देने में सिद्धहस्त थे। किसी कदरदान ने जो शायरी और आर्ट के साथ-साथ सादिकैन साहब के हुनर के भी कद्रदान थे, सादिकैन साहब से मीर के एक मशहूर शेर-

नाज़ुकी उसके लब की क्या कहिए

पंखुड़ी एक गुलाब की सी है। को सुनाते हुए मीर के ख़्याल को रंगों में उतरवाने की इच्छा व्यक्त की। इस पर सादिकैन साहब ने इस शेर को कई बार पढ़ा। फिर सोच में डूब गए। कदरदान महोदय ने कहा "मियाँ कोई दिक्कत महसूस हो रही है क्या" सादिकैन साहब का जवाब था, "इतनी देर से यही सोच रहा हूँ कि मीर पंखुड़ी गुलाब की कहते तो मैं बड़ी ही आसानी से गुलाब की खूबसूरत नाजुक पंखुड़ी को पोर्टरेट में उतार देता, लेकिन वो तो कह रहे हैं 'पंखुड़ी गुलाब की सी है' अब इस 'सी' को कहाँ से लाऊँ ये समझ में नहीं आ रहा है।"

कब और ग़ज़ल कहता मैं इस जमीं में लेकिन
परदे में मुझे अपना अहवाल सुनाना था।

जो भी किसी भी स्तर पर (रचनाकार/श्रोता) शायरी से जुड़े हैं। वे इस सच्चाई से पूरी तरह वाकिफ हैं कि हर शायर अपनी शायरी में कहीं खुद हाजिर रहता है। ऊपर जिस शेर का हमने जिक्र किया है उसमें एक बड़ा ही हसीन शब्द इस्तेमाल हुआ है "अहवाल" इसका सीधा अर्थ है 'परिस्थितियाँ' अब ये परिस्थितियाँ व्यक्तिगत भी हो सकती हैं और समष्टिगत भी। याने दर्दे-तन्हा भी और ग़मे ज़माना भी, जब तक इन दोनों का एकीकरण न हो, कविता में तुकबंदी तो हो सकती है लेकिन कविता ऊँचाई नहीं छू सकती।

'रोमांटेसिज्म', जो अच्छी शायरी का एक खास पहलू, है मीर की शायरी में भी जी भर के शामिल है, बल्कि अगर ये कहा जाए कि मीर उर्दू शायरी के पहले प्रामाणिक शायर हैं तो कुछ गलत न होगा। मीर ने अपने और अपने वक्त के अहवाल को अपनी शायरी में कुछ इस तरह शामिल किया कि ये दोनों मिलकर एक रंग हो गए।

हम पहले ही इस बात का जिक्र कर चुके हैं कि दिल्ली को लुटते और बरबाद होते मीर ने अपने आँखों से दो-दो बार न केवल देखा बल्कि अपने रंगों में महसूस किया। इस बरबादी का एहसास उनकी कलम ने बार-बार दिलाया है और पूरी शिद्दत से दिलाया है।

दिल की वीरानी का क्या मजकूर (बयान) है
यह नगर सौ मर्तबा लूटा गया।

उसके गए पे दिल की खराबी न पूछिए
जैसे किसी का कोई नगर हो लूटा हुआ
दिल वह नगर नहीं कि फिर आबाद हो सके
पछताओगे, सुनो हो, यह बस्ती उजाड़कर।

ये तीनों ही शेर तीन अलग-अलग ग़ज़लों में अपना बयान आप हैं। मीर का तारीखी माहौल (ऐतिहासिक वातावरण) इन शेरों के आईने में इतना साफ नजर आता है, कि उसकी व्याख्या करने की जरूरत ही नहीं है।

इस संदर्भ में एक और खास बात है। आप खुद विचार कीजिए, अपने जेहन में झाँककर देखिए वैयक्तिक अनुभूति कभी शास्त्रीय भाषा में संभव ही नहीं है। वह अनुभूति कितनी भी गहरी हो, किंतु उसकी अभिव्यक्ति आम बोल-चाल की भाषा में ही होगी। यही भाषा जब कविता की भाषा बनती है तो अनुभूति की प्रामणिकता स्वयं ही सिद्ध हो जाती है। मीर के साथ भी यह बात बखूबी लागू होती है।

क्या जाने लोग कहते हैं किसको सुरूरे-कल्ब (हृदय)

आया नहीं यह लफ़्ज तो हिंदी ज़बाँ के बीच

मीर की भाषा की सादगी उनके जमाने के हिसाब से तो लाजवाब है ही, आज के जमाने में भी इसे आसानी से दिल की भाषा मानी जा सकती है।

बेखुदी ले गई कहाँ हमको
देर से इंतजार है अपना
शाम ही से बुझा सा रहता है
दिल हुआ है चिराग मुफ़लिस का

अब इस उपरोक्त शेर में मुफ़लिसी (गरीबी) की बड़ी ही खूबसूरत व्याख्या है या शायर के दिल की, कौन बता सकता है। हम तो सिर्फ यह कह सकते हैं कि दोनों अभिव्यक्तियों को एक-सा करके मीर ने अभिव्यक्ति को जिस ऊँचाई तक पहुँचाया है और वह भी जिस सादगी से पहुँचाया है उसे ही मीर की शायरी की वह विशेषता मानना चाहिए जिसके लिए वह दुनिया के बेहतरीन शायरों में अपना स्थान बनाए रखने में सफल सिद्ध हुए हैं।

एक शायर जब फकीरी को पूरी शिद्दत से महसूस करता है तो यह दुनिया उसे बेमज़ा मालूम होने लगती है। भीड़ में रहकर भी जब तन्हाई का एहसास

शायर को होता है तब वह अध्यात्म की ओर, रूहानियत की ओर मुड़ता है।

इन उजड़ी हुई बस्तियों में दिल नहीं लगता है
जी में वहीं जा बसे वीराना जहाँ हो
फकीराना आए सदा कर चले
मियाँ खुश रहो हम दुआ कर चले,
सब्ज होती ही नहीं सरजमीं
तुख्मे ख्वाहिश (इच्छाओं के बीज) दिल में तू बोता है क्या

मुकामी शायर की खास पहचान बरबादी की राख से भी सृजन के बीज खोज लेना है और मीर इस निगाह से जहाँ हैं, वहाँ पहुँचना बेशक नामुमकिन न हो, लेकिन आसान भी नहीं है।

हम हैं मजरूह (घायल) माजरा है ये
वो नमक छिड़के है मजा है ये
आग थे इस्तदा-ए-इश्क में हम
अब जो हैं खाफ इन्तिहा है ये
मीर को क्यों न मुज्नतम (अच्छे लोगों में बचा हुआ) जाने
अगले लोगों में इक रहा है ये।

– 36, अयोध्या कुंज, ए, आगरा-282001, उत्तर प्रदेश

❑❑❑

मलयालम से हिंदी में अनुवाद की समस्याएँ : सांस्कृतिक समतुल्यों के संदर्भ में

डॉ. संतोष अलेक्स

भारत के सांस्कृतिक संदर्भ में अनुवाद का सर्वाधिक महत्व है, कारण कि बहुभाषी देश होने के कारण भाषाओं के बीच आदान-प्रदान लाज़मी है जो अनुवाद के माध्यम से ही बखूबी निभाया जा सकता है। अनुवाद का विकास मानव सभ्यता के साथ हुआ है। अलग-अलग भाषाओं वाले समाजों के बीच विचारों और अनुभवों के आदान-प्रदान के लिए अनुवाद की परंपरा है। आज के इंटरनेट युग में अनुवाद की जरूरत बढ़ गई है। आज बैंकिंग, इतिहास, संचार-माध्यम, शिक्षा, न्यायालय, धर्म और राजनीति लगभग सभी क्षेत्रों में अनुवाद का सहारा लिया जा रहा है।

अनुवाद के महत्व पर टिप्पणी करते हुए आलोचक डॉ. ए. अरविंदाक्षन कहते हैं "प्रत्येक साहित्य अपने आपमें समर्थ होता है, बावजूद इसके वह अन्य साहित्य से काफी कुछ ग्रहण करता है। अनुवाद की 'प्रासंगिकता उसी संदर्भ में है। गोर्की, दस्तॉयवस्की, काफ्का, बोरहेस, रिल्के नेरूदा जैसे रचनाकारों को अधिकतर भारतीय पाठकों ने अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से ही पढ़ा है। यह कार्य पठन-पाठन तक ही सीमित नहीं है। यह उस भाषा-साहित्य को आत्मसात करने को लेकर भी है। माने हमने विश्व की प्रमुख भाषाओं के प्रमुख रचनाकारों को अपने साथ लेकर चलने का कार्य किया है न कि अपने साहित्य के सीमित संकीर्ण गलियारे में सिमटने का"[1] अनुवाद के संदर्भ में देखें तो हिंदी ऐसी भाषा है कि वह दूसरी भारतीय भाषाओं की रचनाएँ बिना किसी हिचक के साथ स्वीकारती है। इस कारण आज हिंदी की हैसियत काफी महत्वपूर्ण है। सालों से भारतीय साहित्य की रचनाएँ हिंदी में अनूदित होकर आ रही हैं, जिससे भारतीय साहित्य का स्वरूप काफी हद तक स्पष्ट हो जाता है। अरविंदाक्षन आगे कहते हैं। कि "हिंदी भाषा ने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक भाषा वैविध्य की समाजशास्त्रीय प्रासंगिकता को बनाए रखते हुए एक स्वीकृत और व्यापक भाषा के माध्यम से भारतीय साहित्य की परिकल्पना को साकार किया जा सकता हैं अत: हिंदी की आज अनुवाद के क्षेत्र में जो प्रासंगिकता है वह मूल्यवान है"[2]

किसी भी क्षेत्रीय भाषा या बोली से हिंदी में अनुवाद करते समय अनुवादक के सामने कई कठिनाईयाँ होती हैं। वही अनुवादक सफल होता है जिसे क्षेत्रीय भाषा या बोली के ज्ञान के साथ-साथ वहाँ की प्रचलित शब्दावली एवं सांस्कृतिक माहौल की भी जानकारी हों। वाल्टेर बेंजेमिन के अनुसार "अनुवादक को लक्ष्यभाषा में मूल की प्रतिध्वनि लाने की जरूरत पड़ती है।"[3] जब सांस्कृतिक समतुल्यों की बात आती है तो बेंजेमिन के कहे अनुसार मूल की प्रतिध्वनि में कठिनाई होती है। इस अध्याय में मलयालम से हिंदी में अनुवाद करते समय सांस्कृतिक समतुल्यों के अनुवाद में आने वाली दिक्कतों पर अध्ययन किया गया है। मलयालम से हिंदी में अनुवाद करते समय निम्नलिखित सांस्कृतिक समतुल्यों के अनुवाद में कठिनाइयाँ होती हैं।

1. सांस्कृतिक अर्थवाले शब्द
2. ऐतिहासिक संदर्भों के शब्द

3. दैनिक प्रयोग में आनेवाले शब्द

4. खान-पान में उपयोग में आनेवाले शब्द

5. मुहावरों के अनुवाद की समस्या

2.1 सांस्कृतिक अर्थवाले शब्द

सांस्कृतिक संदर्भों या शब्दों का अनुवाद अनुवादक के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। क्षेत्रीय भाषाओं की अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं। ऐसे में अनुवादक को सूझ-बूझ के साथ अनुवाद करना पड़ता है ताकि स्रोत भाषा की शब्दावली या भाव लक्ष्य भाषा में सही रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

उदाहरण 1. णालुमणि पू

मलयालम कहानीकार एन. एस. माधवन की कहानी 'तिरूत्तू' (संशोधन) का हिंदी अनुवाद करते समय मैं एक वाक्य पर अटक गया। वाक्य नीचे दिया गया है। मूल मलयालम : सोडियम वेपर विलक्कुकलुडे मंजा वेलिचत्तीनु वेयिल पदिटटडीयुडे दैन्यम कलरणा तिलेक्क उंडायिरून्नू[4] वेयिल पदिटटडी का अर्थ है शाम को खिलनेवाला फूल, इसे मलयालम में 'णालुमणि पू' (चार बजे खिलने वाला फूल) भी कहते हैं। उत्तर भारत में ऐसा कोई फूल नहीं है जो चार बजे खिलता हो, ऐसे में इसका अनुवाद मुश्किल बन जाता है। इसके लिए मैंने 'साँझ का फूल' का उपयोग किया। अब उपर्युक्त वाक्य का हिंदी अनुवाद देखिए।

हिंदी अनुवाद: सोडियम वेपर की बत्तियों के पीले प्रकाश में साँझ के मुरझाए फूल की-सी मद्धिम चमक थी। 'साँझ का फूल' का प्रयोग लक्ष्य भाषा में फिट बैठता है और मूल का अर्थ भी देता है। इस प्रकार स्रोत भाषा के शब्द का समतुल्य शब्द लक्ष्य भाषा में लाया गया।

उदाहरण 2. तटटकम

के. सच्चिदानंदन की गाँव शीर्षक कविता में 'तटटकम' शब्द का प्रयोग हुआ है।

गाँव
चुराई गई
हाथ पाँव बाँधकर
जहाज में विदेश ले जाई जा रही
एक काली गूंगी कुल देवी जिस प्रकार
पहाड़ से बह आए पानी से भरे तटटकम[5] को
याद करती है
उसी प्रकार मैं अपने गाँव को
याद कर रहा हूँ

तटटकम- हिंदू धर्म में यह विश्वास किया जाता है कि देवी पुण्य जगहों की निगरानी करती है। देवी द्वारा निगरानी किए जानेवाले जगहों को तटटकम कहते हैं।

आलोचक प्रेमशंकर के अनुसार "कविता का अनुवाद कठिन कार्य है, एक प्रकार से चुनौती, रचना-स्तर पर"[6] कविता का अनुवाद मुश्किल होता है और उसमें सांस्कृतिक संदर्भ वाले शब्द आ जाते हैं तो अनुवादक की दुविधा बढ़ जाती है।" प्रस्तुत उदाहरण में तटटकम को पाद टिप्पणी द्वारा समझाया गया है।

भोलानाथ तिवारी के अनुसार कविता पाठक पर जो प्रभाव डालती है उसमें कथ्य और कथन या अभिव्यक्ति दोनों का योग होता है और ये दोनों भी एक सीमा तक एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं। हर भाषा में कथ्य और अभिव्यक्ति की विशिष्टता का तालमेल उसी अनुपात में नहीं बैठाया जा सकता है और न ही हर भाषा में कथ्य और अभिव्यक्ति, के योग से एक-सा प्रभाव ही उत्पन्न किया जा सकता है। यही कारण है कि काव्यानुवाद में प्राय: मूल प्रभाव का या प्रभाव उत्पन्न करनेवाले मूल काव्य तत्वों का कुछ अंश भी कभी जुड़ सकता है जो मूल में नहीं होता। लेकिन बात जब सांस्कृतिक अर्थवाले शब्दों के अनुवाद की होती है तो अनुवाद मुश्किल हो जाता है। ऐसे में अनुवादक को पाद टिप्पणी का सहारा लेना पड़ता है।

उदाहरण 3. कायल

कायल शब्द हिंदी में भी प्रयुक्त है, लेकिन मलयालम में इसका अर्थ हिंदी से भिन्न है। केरल में कायल एक झील को कहते हैं जो कहीं समुद्र से सीधे जुड़ी होती है या नदी के माध्यम से समुद्र से जुड़ी होती है। इस कारण इस पर समुद्री तूफान का भी प्रभाव पड़ता है। यह झील जलमार्ग का कार्य भी करती है। इसका हिंदी में झील अनुवाद करने से केरलीय झील की अवधारणा स्पष्ट नहीं हो पाएगी। अंत: इसे पादटिप्पणी में समझाना पड़ेगा।

2.2 ऐतिहासिक संदर्भवाले शब्द

मलयालम से हिंदी में अनुवाद करते समय ऐतिहासिक संदर्भवाले शब्द का अनुवाद एक समस्या है। कभी-कभी अनुवाद करते समय अनुवादक के सामने ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है जिसके लिए पाद-टिप्पणी के बिना अनुवाद असंभव बन जाता है, खासकर ऐसे शब्द जो उस प्रदेश के इतिहास से जुड़े हों।

के. सच्चिदानंदन और सावित्री राजीवन की कविताओं में आए शब्दों को उदाहरण के रूप में दिया जा रहा है।

उदाहरण 1. ज्ञानापाना[7]

सच्चिदानंदन की एक कविता का शीर्षक है ज्ञानापाना। इस कविता को समझने के लिए ज्ञानापाना का अर्थ समझना बहुत जरूरी है, ऐसे में इसके अर्थ को पादटिप्पणी में दिया गया।

ज्ञानापाना- पूंतानम द्वारा लिखा गया वैष्णव भक्ति का मूल पाठ।

उदाहरण-चंद्रिका

सावित्री राजीवन की चंद्रिका शीर्षक कविता में बहुत सारे शब्दों का उपयोग हुआ है जो ऐतिहासिक संदर्भ को सूचित करते हैं। कविता नीचे प्रस्तुत है।

चंद्रिका
मैं चंद्रिका हूँ
मुगल राजकुमारी
सुंदर गुलाम
घुंघरूहीन कर्णकी की अनुयायी या
उण्णियार्चा की बाद की पीढ़ीवाली भी नहीं हूँ
शीलावती की प्रसिद्ध टोकरी
पार्वती की लंबी तपस्याएँ
गांधारी की आँखों की पट्टी
सावित्री की व्रत निष्ठा नहीं

प्रस्तुत कविता में कवयित्री ने कर्णकी, उण्णियार्चा, शीलावती आदि शब्दों का प्रयोग सोच समझकर किया है जिससे वह अपनी बात स्पष्ट कर सकती है।

कर्णकी-तमिल क्लासिक चिलपतीकारम की नायिका है,

उण्णियार्चा-मलयालम लोकगीत वडक्कनपाट्टू की प्रसिद्ध महिला योद्धा है

शीलावती - महाभारत का एक पात्र है जो आदर्श स्त्री का प्रतिरूप है। इन शब्दों को पादटिप्पणी में देने पर ही कविता का अर्थ खुलता है। तात्पर्य है कि अनुवाद में ऐतिहासिक संदर्भों का समतुल्य अनुवाद कठिन होता है। यह इस बात की ओर भी संकेत देता है कि अनुवादक को दो भाषाओं का सम्यक् ज्ञान ही नहीं होना चाहिए उसे अच्छा पाठक भी होना चाहिए जिसके बगैर अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है।

2.3 दैनिक प्रयोग में आनेवाले शब्द

प्रत्येक भाषा में दैनिक प्रयोग में आनेवाले शब्द होते हैं जो उस प्रदेश की संस्कृति से गहरा ताल्लुक रखते हैं। यह वे शब्द होते हैं जो किसी भी भाषा की जान होती है। मलयालम से हिंदी में अनुवाद करते समय दैनिक प्रयोग में आनेवाले शब्दों के अनुवाद में भी कठिनाई होती है।

उदाहरण 1. किंडी

मलयालम कहानीकार सारा जोसफ की कहानी 'निलाव अरियुन्नु' (चाँदनी को मालूम है) में 'किंडी' शब्द का उपयोग हुआ है। किंडी एक छोटा-सा बर्तन है जिसमें पानी भरा जाता है। यह नंपूतिरि जात के लोगों के घरों में उपयोग किया जाता है। जब मर्द बाहर से घर लौटते हैं तो किंडी से पानी लेकर हाथ पैर साफ कर घर में प्रवेश करते हैं। उत्तर भारत की संस्कृति में इस प्रकार का एक बर्तन उपयोग में नहीं है। ऐसे में अनुवादक को लक्ष्य भाषा में समतुल्य शब्द को प्रस्तुत करने में कठिनाई होगी। किंडी के लिए हिंदी में तुंबा शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। तुंबा आकार में लगभग किंडी जैसा होता है और इसका उपयोग भी पानी भरने के लिए होता है। अत: तुंबा का किंडी के समतुल्य शब्द के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार तोरतु, मुंडु, चट्टा, णेरियद आदि अनेक शब्दों का उपयोग मलयालम में होता है जिनका अनुवाद हिंदी में करना मुश्किल होता है। ऐसी जगहों में अनुवादक को लक्ष्य भाषा में पाद टिप्पणी के सहारे अर्थ देना पड़ता है।

2.4 खान-पान के लिए उपयोग किए जानेवाले शब्द

प्रदेश विशेष की भाषा जिस प्रकार विशिष्ट होती है उसी प्रकार वहाँ का खान-पान भी विशिष्ट होता है।

केरल में भिन्न प्रकार के खान-पान बनाए और खाए जाते हैं। मलयालम से हिंदी में अनुवाद करते समय केरल के खान-पान से संबंधित शब्दों का अनुवाद एक प्रमुख समस्या है। अप्पम, इडिअप्पम, पुट्टु, अवियल, ओलन, कालन, कंजी आदि खान-पान से जुड़े अनेक शब्द हैं जिनका हिंदी में समतुल्य शब्द नहीं है, क्योंकि उत्तर भारत में इस प्रकार का खान-पान नहीं बनता। उसी प्रकार मलायलम में 'चमंदी' शब्द का प्रयोग होता है। आमतौर पर इसके लिए समानार्थी हिंदी शब्द 'चटनी' शब्द का प्रयोग होता है। उत्तर भारत में जो 'चटनी' बनती है वह केरल के 'चामंदी' से अलग होती है। ऐसे में अनुवादक को स्रोत सामग्री के संदर्भानुसार उसका हिंदी अनुवाद करना चाहिए या अर्थ स्पष्ट करना चाहिए।

2.5 मुहावरों के अनुवाद की समस्या

प्रत्येक भाषा में मुहावरों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है और मुहावरे विशिष्ट अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। वास्तव में मुहावरा शब्दों का एक ऐसा क्रम होता है जो आर्थी एवं वाक्यीय दृष्टि से सीमित होता है। किसी मुहावरे के सभी पदों का अलग-अलग अर्थ मिलकर भी मुहावरे का अर्थ लक्षित नहीं करता। वाक्यीय दृष्टिकोण से शब्दों का जो रूप, क्रम आदि मुहावरों में मिलता है, वह अन्य भाषिक प्रयोगों से भिन्न होता है। मुहावरों का अनुवाद कठिन होता है, कभी-कभी असंभव भी। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

उदाहरण 1

मूल मलयालम : एण्णि चुट्टु किट्टीय अप्पम पोलत्ते शंबलम

अनुवाद : कम तनख्वाह

उदाहरण 2

मूल मलयालम : चक्कीनू वेच्चद कोक्कीनू कोंडू

अनुवाद : एक को फँसाना चाहा लेकिन दूसरा फँसा

उदाहरण 3

मूल मलयालम : पीन्नेम चंकरन तेंग्गे तन्ने

अनुवाद : गलतियों को फिर से दोहराना

उपर्युक्त उदाहरणों में मूल में निहित अर्थ को अनुवाद में स्पष्ट किया गया है। कभी-कभी मलयालम में प्रयुक्त मुहावरों का समतुल्य मुहावरा हिंदी में मिल जाता है, जहाँ यह उपलब्ध नहीं है वहाँ अनुवादक को मूल में निहित अर्थ को संक्षिप्त रूप में देने की जरूरत पड़ती है। यूँ तो अनुवाद कार्य कठिन होता है, लेकिन असंभव नहीं है। यह एक सत्य है कि अनुवाद में जब मूल का-सा प्रभाव होता है तो अनुवाद मूल के ज्यादा निकट प्रतीत होता है। वह लक्ष्य भाषा में अनुवाद नहीं लगता, मूल-सा लगता है। इसी को लोरेंस वेनूटी ने अनुवाद की अदृश्यता कहा है।[9] यानी की अनुवाद में मूल का-सा प्रभाव और लय पाया जा सकता है।

सांस्कृतिक समतुल्यों का अनुवाद मुश्किल है और कभी-कभी असंभव हो जाता है, बावजूद, इसमें कोई संदेह नहीं कि अनुवाद की आवश्यकता एवं महत्व स्वयंसिद्ध है। अनुवाद के कारण कृति किसी भाषा विशेष की बपौती न रहकर पूरे विश्व की रचना बन जाता है और स्वाभाविक है कि रचनाकार भाषा विशेष तक सीमित न रहकर पूरे विश्व का हो जाता है। इस प्रकार रचनाकार को विश्व का बनाने में अनुवाद का दायित्व ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अनुवादक यदि अनुवाद के साथ उचित न्याय करना चाहता है तो उसे अनुवाद करते समय सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की बारीकियों को समझना होगा, उनके लिए सम्यक पर्याय ढूँढ़ना होगा तथा आवश्यकता पडने पर पाद टिप्पणी या पदबंधों का प्रयोग करना होगा अन्यथा वह लेखकों के मूल भाव तथा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की बारीकियों को लक्ष्य भाषा में पहुँचाने में सर्वथा असफल सिद्ध होगा।

संदर्भ सूची

1. ए. अरविंदाक्षन, (2005), चिड़िया की महक, भूमिका, पृ. 10, दिल्ली।

2. वही पृ. 11

3. Wallter Benjamin, Illustrations, pg. 77

4. एन. एस. माधवन, 1997, तिरूत्तु, डी सी बुक्स, पृ. 38, कोट्टयम।

5. के. सच्चिदानंदन, (2004), शुरूआतें, आलोकपर्व प्रकाशन, पृ. 3, दिल्ली।

6. प्रेमशंकर, (2000), कोच्चि के दरख्त, भूमिका, पृ. 9, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

7. के. सच्चिदानंदन, (2004), शुरूआतें, पृ. 47, आलोकपर्व प्रकाशन, दिल्ली।

8. सावित्री राजीवन, (2004), देहांतर, पृ. 48, आलोकपर्व प्रकाशन, दिल्ली।

9. Lawrence Venuti, Translators Invisibility, Routledge, pg.2.

– सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी, सी आई एफ टी, वेलिंगडन आइलैंड, मत्स्यपुरी डाकघर, कोच्चि-682029

❑❑❑

भीष्म साहनी के साथ कुछ मीठी यादें

उमाकांत खुबालकर

अपने युवा काल के दरमियान मैं भी कुछ वर्ष हिंदी एवं मराठी रंगमंच से सक्रियता के साथ जुड़ा रहा। सौभाग्य से मुझे हिंदी रंगमंच के दिग्गज रंगकर्मियों/नाट्य निर्देशकों, श्री देवेंद्रराज 'अंकुर, श्री एम. के. रैना से मिलने-जुलने, संवाद एवं अभिनय करने का अवसर मिला। जीवन की आपाधापी, नौकरी की विवशताएँ, अप्रत्याशित पारिवारिक दायित्वों की वजह से रंगमंच के महासागर में आकंठ डूब नहीं सका परंतु इसी संदर्भ में मराठी की एक कहावत याद आती है "कि गालाला एकदा रंग फासला तर तो कधीच मिटत नसतो" इसीलिए गाहे-बगाहे मैं मंडी हाउस के ऐतिहासिक परिसर में कभी-कभार चक्कर लगा आता। यूँ कहिए, वहाँ की मिट्टी की गंध, अपनी साँसों में हर वक्त महसूस करता। रंग कर्म की दीक्षा भूमि मुझे अपनी ओर अज्ञात आकर्षण से खींचती रही। इस संकुल में सैकड़ों की तादाद में थियेटर/नाट्य गृह अपनी परंपरागत रंग-संस्कृति एवं अवधारणाओं को जीवंतता से समेटे हुए सूत्रधार की तरह आख्यायिका प्रस्तुत करते हैं। इतना ही नहीं? रंगमंच के अलावा संगीत, नृत्य, ललित कला, लोक कलाओं से जुड़े कलाकार, लेखक, निर्देशक एवं रंगप्रेमी, पटरी पर लगी चाय की दुकानों में बैठकर, इस पावन रंग-भूमि को अपनी अंतर-बाह्य चेतना से आप्लावित, तरंगित, उल्लसित करते रहते हैं। यहाँ की धूल, मिट्टी के कण-कण में एक अप्रतिम रंग-सौंदर्य छलकता रहता है। समय-समय पर मंचित किर जाने वाले हिंदी, अंग्रेजी/भारतीय भाषाओं के नाटकों के रंग-बिरंगी हस्त लिखित/ मुद्रित पोस्टर, होर्डिंग्स बैनर मानों भारत में नाट्य युग की विद्यमानता का आभास कराते हैं। श्रीराम सेंटर फॉर आर्ट्स एंड कल्चर, राष्ट्रीय नाटय विद्यालय, श्रीराम कला केंद्र एवं मुक्ताकाशी मंच इत्यादि नाट्य तीर्थ की दिव्यता का अनिर्वचनीय साक्षात्कार ही तो है। मैं अपने अतीत की पार्श्वभूमि के स्वर्णिम क्षणों को इसीलिए याद कर रहा हूँ क्योंकि प्रतिपाद्य विषय के तत्व इनमें निहित हैं।

यह लगभग वर्ष 1978-79 की बात है। सुप्रसिद्ध नाटककार, बादल सरकार के मूल बंगला नुक्कड़ नाटक 'जलूस' का (हिंदी रूपांतर) मंचन, श्री एम. के. रैना के कुशल निर्देशन में दिल्ली के विभिन्न कॉलेजों, सार्वजनिक पार्कों, सभागृहों में निरंतर होता रहता था इसीलिए हमारा नाट्य दल दिल्ली के बुद्धिजीवियों, हिंदी लेखकों, प्राध्यापकों, छात्रों, मीडिया-कर्मियों के बीच काफी लोकप्रिय हो चुका था। दर्शकों के रूप में हमारे नाट्य दल की विभिन्न नाट्य प्रस्तुतियाँ देखने के लिए सभी मंडी हाउस आते रहते। एक बार तो ऐसा हुआ कि जे. एन. यू. के 'जन नाट्य मंच' के साथ हमारे नाट्य दल (एक्सपेरीमेंटल थियेटर ग्रुप, नई दिल्ली) की नाट्य प्रतियोगिता संपन्न हुई। जिसमें हमारा थियेटर ग्रुप अभिनय कौशल के अभूतपूर्व कलात्मक प्रदर्शन के कारण जीत गया। इसी दौरान हमारे नाट्य दल द्वारा प्रायोजकों की आर्थिक सहायता से नाट्य महोत्सव आयोजित किया गया। यह उल्लेखनीय है कि श्री एम. के. रैना तथा श्री देवेंद्र राज 'अंकुर' जैसे

ख्यातनाम निर्देशकों की प्रस्तुतियाँ देखने के लिए प्रबुद्ध दर्शकों की भीड़ उमड़ पड़ती थी। नाट्य महोत्सव के प्रदर्शन के समय हमारे नाट्य ग्रुप के सभी कलाकार साथी कभी टिकट काउंटर तो कभी बैक स्टेज की प्रोपर्टी संभालने, लाइट या साउंड की व्यवस्थाओं की देखरेख में जुटे रहते चूंकि समय-प्रबंधन के अनुपालन में किसी को दम मारने की फुर्सत नहीं मिलती थी? परिचितों के हैलो-हाय संबोधन पर भी ध्यान नहीं जाता था। इन्हीं व्यस्तताओं में पता भी नहीं चला था कि भीष्म साहनी अपनी धर्म पत्नी श्रीमती शीला साहनी के साथ दर्शकों के बीच बैठे हुए हैं? शो की समाप्ति पर वे स्वयं नाट्य गृह के मेकअप रूप में प्रवेश करते और छोटे-बड़े सभी कलाकारो को दिल खोलकर बधाई देते। उनका मनोबल भी बढ़ाते। वह क्षण हमारे लिए स्वप्न दृश्य की तरह ही प्रतीत होता था कि अपने विद्यार्थी काल में जिस महान साहित्यकार की कालजयी कृतियाँ पाठ्यक्रम में पढ़ा करते थे। उनसे अकस्मात भेंट हो जाना कितने गौरव की बात हो सकती है?

उन दिनों श्री देवेंद्र राज 'अंकुर' ने नाट्य निर्देशन के क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया। वे कलाकारों को चयनित कहानी/उपन्यासों का पाठ/वाचन कराते हुए रंगमंचीय संभावनाओं को ढूंढकर नाट्य प्रस्तुति का रूप दे देते थे। इसे कहानियों का रंगमंच, उपन्यास का रंगमंच एक नया नामकरण किया गया था। नाट्य समीक्षकों का यह मत था कि नाटक का रंगमंच ही, नाटय-शास्त्र की मौलिक शास्त्रीय अवधारणा को व्याख्यायित करता हैं परंतु प्रयोगधर्मिता के आधार पर श्री देवेंद्र राजजी ने हिंदी साहित्य की उत्कृष्ट कहानियों का सफलतापूर्वक मंचन करके आलोचकों का मुँह बंद कर दिया। इसी परिप्रेक्ष्य में भीष्म साहनी की प्रसिद्ध कहानी 'चीफ की दावत' निर्मल वर्मा के 'तीन एकांत' का सफल नाट्य प्रदर्शन भी किया गया। रंगमंच की परंपरा से हटकर की गई प्रस्तुति देखकर हिंदी के कई लेखक, साहित्यकार, अंकुरजी के पास पहुँचने लगे। इसी तर्ज पर श्री काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'अपना मोर्चा' का निर्देशन श्री देवेंद्रराज जी ने किया। इसी परंपरा में श्रीमती मन्नू भंडारी का 'महाभोज' तथा श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' का मंचन भी अन्य निर्देशकों द्वारा किया गया था।

कतिपय नाट्य प्रसंग समय की धड़कन बन गए थे, इसीलिए इनका उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ। श्री भीष्म साहनी बहुआयामी व्यक्तित्व के रचनाकार थे। कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद की परंपरा में उनका नाम अग्रगण्य माना जाता है। इसी दौर में राजकमल प्रकाशन की पत्रिका 'नई कहानियों' का 'संपादक' उन्हें बनाया गया। इसके पूर्व भैरव प्रसाद गुप्त, मोहन राकेश तथा कमलेश्वर भी इस पत्रिका के संपादन से जुड़े रहे। इन दिनों 'नई कहानी आंदोलन' की लहर चल रही थी। परंतु भीष्म जी किसी गुट या वाद से नहीं जुड़े बल्कि शुद्ध साहित्यिकता के आधार पर ढ़ाई वर्ष तक पत्रिका को चलाया। उनका संबंध कम्युनिस्ट पार्टी से था। परंतु उनकी स्पष्ट धारणा रही कि कम्युनिस्ट की विचारधारा, सामाजिक स्तर पर स्पष्ट और सटीक होनी चाहिए। कम्युनिस्ट कतई सांप्रदायिक नहीं होता, जाति-भेद, रंग-भेद में विश्वास नहीं रखता? उसकी मानसिकता जन-जीवन से जुड़ने की होती है। उनके लिए आर्थिक-सामाजिक सरगर्मियों को आँकने की मुख्यत: एक ही कसौटी होती है कि वह मेहनतकश जनता के हित में है या नहीं?

इसी काल खंड की एक घटना मुझे याद आ रही है। जे. एन. यू. के तेज तर्रार युवा लेखक, रंगकर्मी श्री सफदर हाशमी की हत्या पूंजीपतियों द्वारा पोषित अपराधी तत्वों द्वारा की गई थी। वस्तुत: श्री हाशमी ने 'जन नाट्य मंच' के नुक्कड नाटक के प्रदर्शन के जरिए (उ. प्र.) फैक्टरी में कार्यरत कामगारों के आर्थिक शोषण एवं अन्याय के विरुद्ध आवाज बुलंद की थी। इस दुखद परिणति के फलस्वरूप राजधानी का समूचा बौद्धिक वर्ग, पत्रकार लेखक, रंगकर्मी, नागरिक, छात्र-संघ शोक संतप्त हो गया था। साहित्य अकादमी के लॉन में एक शोक सभा भी आयोजित की गई। मंडी हाउस से एक विशाल जुलूस स्व. सफदर हाशमी के हत्या स्थल तक पहुँचा। दिल्ली के तमाम हिंदी-अंग्रेजी के अखबारों में इस हत्याकांड के विरुद्ध गहरा रोष जताया गया।

इसी घटना के क्रम में मंडी हाउस के परिसर में एक विशाल जनसभा रखी गई थी। प्रमुख वक्ताओं में भीष्म साहनी ने इस हत्याकांड से आहत होकर लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए ओजपूर्ण स्वर में एकजुट होकर

संघर्ष करने का आह्वान किया। मैं मूक दर्शक की तरह भीष्म जी के इस मानवतावादी रूप को देखता रहा। यही नहीं? श्रीराम सेंटर की केंटीन के सम्मुख पसरी हुई लान पर रखी कुर्सियों पर बैठकर, श्री साहनी जी धर्म पत्नी के साथ चाय पी रहे हो, संयोग से हमारा नाट्य दल वहाँ पहुँच गया हो तो उनसे पहले शीला जी मुस्कुराकर बोल पड़ती।

"पीशम, तूसी सबको चाय पिलाइए और साथ में पकाड़े-शकोड़े भी मंगवा लो, ये सारे जुलूसवाले बंदे हैं।"

देखा जाएँ तो हम लोग कई नाटकों का प्रदर्शन कर चुके थे परंतु 'स्ट्रीट प्ले जुलूस' का नाम हमारे अस्तित्व से चिपक गया था। सही मायने में यही हमारी पहचान बन गई थी। पत्नी का आदेश सुनकर बड़े-बड़े नौकरशाहों की सिट्टी-पिट्टी गुम जो जाती थी। श्री साहनज उनसे अलग कहाँ थे? वे निर्विकार भाव से हमारे स्वागत-सत्कार में जुट जाते। फिल्म एक्टर देवानंद की तरह सिर के ऊपर फुग्गेनुमा उठे हुए स्टाइलिश बाल, ढीला-ढाला कुर्ता, बिना क्रीजवाली मटमैली पैंट, चमड़े की घिसी हुई चप्पलें और कंधे पर शबनम झोला लटकाए युवा रंगकर्मियों (खासकर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय) से घिरे हुए बैठे रहते। उनकी छोटी-छोटी, चमकती आँखों में सभी के प्रति स्नेह भाव छलकता रहता। गंभीर चेहरे में एक सहज मुस्कान छिपी रहती सभी नवागंतुकों को प्यार से पास बिठाकर पूरा परिचय जान लेते। हमारे नाट्य-दल के साथ मुझे, उमाकांत के बजाए उमां कहकर बुलाते थे परंतु साहन जी ने मुझे उमांजी का आदर सूचक संबोधन प्रदान किया। यह थी उनके विराट व्यक्तित्व की गरिमा, सौम्यता, जो सबको परस्पर जोडे रखती।

इसी काल खंड में उन्होने कबिरा खड़ा बाजार में, माधवी तथा मुआवजे इत्यादि नाटकों की रचना की थी "कबिरा खड़ा बाजा को" संगती नाटक अकादमी ने पुरस्कृत भी किया था। वे जब कभी नया नाटक लिखते। उसकी स्क्रिप्ट श्रीराम सेंटर की केंटीन, साहित्य अकादमी के लान में बैठकर रंगकर्मी मित्रों के बीच पढ़कर सुनाते, बीच-बीच में सबकी राय भी लेते। कई बार सबकी तकरीर सुनने के बाद संतुष्ट भी नहीं होते? दोबारा घर जाकर संशोधित ड्राफ्ट लिख लाते। उनकी यह कितनी बड़ी खूबी थी कि हिंदी का समर्थ कथाकार, उपन्यासकार, एवं नाट्य लेखक होते हुए भी अपनी उम्र से छोटे रंगकर्मियों के सुझाव पर भी गौर करते। हँसी-मजाक का जब कभी दौर चलता, तब दूसरों की बात भी सुनते फिर अपनी बात सुनाकर महफिल को खुशगंवार बना देते। इसी लाइट मूड में एक रंगकर्मी ने फिकरा कसा "साहनी जी, आप फिल्मों में एक्टिंग मत किया करो?"

यह सुनकर माहौल एकदम गंभीर हो गया। उनके मुख पर निर्विकार चुप्पी घिर आई। तत्काल मुस्कुराकर युवा रंगकर्मी के कंधे पर हाथ रखकर बोले- "हाँ, हाँ मैं जानता हूँ कि मैं एक्टिंग नहीं कर सकता हूँ?" यह था उनका बड़प्पन और शालीनता। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व की यही विशेषता रही है। वे अंग्रेजी साहित्य के अध्येता और अध्यापक थे। परंतु हिंदी के उच्चकोटि के साहित्यकार एवं स्वयं अच्छे अनुवादक संपादक थे। अनेक भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में उनकी कृतियों के अनुवाद हुए थे। वे स्वयं नाटककार थे और 'इप्टा' नामक नाट्य आंदोलन से जुड़े रंगकर्मी भी थे। 'प्रगतिशील लेखक संघं' जैसे राष्ट्रीय तथा अफ्रो-एशियाई लेखक संघ जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों के पदाधिकारी रहे। उनके उपन्यास 'तमस' पर फिल्म बनी थी। इस फिल्म में अभिनय भी किया था। 'तमस' पर उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला। बाद में वे साहित्य अकादमी के 'महत्तर सदस्य' भी रहे। जीवन में इतना मान-सम्मान प्राप्त होने के बावजूद उन्हें लेशमात्र अहंकार नहीं छू गया था। अंत में शुभदर्शन की इन पंक्तियों के साथ अपने आलेख को यही समाप्त करता हूँ।

हवाओं से कहो कि राह ना दिखाएँ
मैंने अपने आप को खुला छोड़ दिया है
पगडंडियों की तरह।

- 33/11, नोवा, अशोक रोड, क्षिप्रा सन सिटी, इंदिरापुरम्, गाजियाबाद (उ. प्र.) 201014

❑❑❑

श्रीमद् भागवत गीता और कामायनी : संदर्भ - विश्वमानवता

डॉ. अमलसिंह 'भिक्षुक'

वैसे तो विश्व के महान् पुरुषों - महान् कवियों की भाषा-शैली और बोली भले ही अलग-अलग हों, पर उनकी जागृत चेतना में, उनकी अलौकिक प्रतिभा में और उनकी संपूर्ण विश्वमानवता की भावना में अपूर्व सामंजस्य होता है। हिंदी-साहित्य में छायावाद के महान् कवि श्री जयशंकर प्रसाद जी द्वारा रचित 'कामायनी' का जब से प्रकाशन हुआ है, तब से ही इस बात पर विशेष जोर दिया जाता रहा है कि यह श्रीमद्भगवत गीता की तरह ही विश्व-मनीषा की धरोहर है, क्योंकि इसमें गीता के रचनाकार की तरह ही प्रसाद जी ने भी संपूर्ण विश्व के मानवता के संदर्भ को एक मनीषी की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है, उसे एक मनीषी की तरह ही समझाया भी है और अपने सहृदय पाठकों से यह अपेक्षा भी रखी है कि वह भी उसी के जैसा ध्यान-धीर एकाग्र होकर विश्व के समस्त मानवों को एक फिलॉसफर की नजरों से देखें। अतएव 'कामायनी' की दुनिया भी 'गीता' की तरह ही एक फिलॉसफर की दुनिया है। कामायनी के इस महान कवि का यह महान प्रयत्न संपूर्ण हिंदी-साहित्य में अद्भुत-अतुलनीय-अनोखा है।

हिंदी आलोचना ने भी स्वीकार किया कि 'कामायनी' में उन्होंने नर-जीवन के विकास में भिन्न-भिन्न भावात्मक वृतियों के योग और संघर्ष को बड़ी प्रगल्भ और रमणीय कल्पना द्वारा चित्रित करके मानवता का रागात्मक इतिहास प्रस्तुत किया है।[1] इस प्रस्तुतीकरण में कवि ने मानव-जीवन की यथार्थ झाँकी भी प्रस्तुत की है, यहाँ उसे न केवल भौतिकता की फिसलने वाली शिला से ही ऊपर उठाया है, अपितु उसे आध्यात्मिकता के चरम शिखर पर चढ़ने के लिए प्रेरित भी किया है। इस प्रक्रिया में विश्व-मानवता प्रेम एवं विश्व-बंधुत्व की भावना का भी निरूपण हुआ है, जिसमें मानवता की गरूता, गंभीरता एवं श्रेष्ठता की भी प्रतिष्ठा की गई है। अतः कामायनी में "मानवता की उस चिरंतन पुकार को वाणी प्रदान की गई है, जो निराश, भय-त्रस्त एवं भ्रमित जीवों का पथ-प्रदर्शन कर रही है, चिर दग्ध दुखी वसुधा को शाश्वत शांति एवं अलौकिक सुख प्राप्ति की आशा बँधा रही है और सुसंगठित चिरंतन शक्ति के विशृंखलित हो जाने से पराजित मानवता को विजयिनी बनाती हुई उसे अखंड आनंद प्राप्ति का मंगलमय संदेश दे रही है।"[2] अब हम यह जाँच-पड़ताल करने का प्रयास करेंगे कि श्रीमद्भगवत गीता का कामायनी पर कहाँ-कहाँ प्रभाव पड़ा है।

सर्वप्रथम हम यह स्पष्ट कर दें कि कामायनी के प्रमुख पात्र आधुनिक मानव-जाति के जो आदि-पुरुष मनु हैं, उनके 'श्रद्धापूरित तप-सिद्धांतों की उच्चतम अभिव्यक्ति गीता ही है- विवस्वान्मनवे प्राह मुनिरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्। (4/1) "मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में विवस्वान् (सूर्य) के प्रति कहा, विवस्वान् ने मनु से और मनु ने इक्ष्वाकु से कहा।"[3] इसी यौगिक-क्रिया में लीन तपस्वी मनु को कामायनी के 'चिंता' सर्ग में बार-बार देवताओं के निथ्याभियान, दंभ आदि के संबंध में विचार-विमर्श करते हुए दिखाया

गया है। 'आशा' सर्ग के हाँ कि गर्व-रथ में तुरंग-सा -छंद में कामायनीकार ने रथ के घोड़ों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है, जिसमें देवों की अहम्मन्यता एवं उनके मिथ्या-गर्व को जीवंत दृश्य-बिंब के द्वारा उपस्थित करने का सार्थक प्रयास किया है। ऐसे ही अहंकारी और विमूढ़ात्मा व्यक्तियों का उल्लेख गीता के तृतीय अध्याय के 27वें श्लोक में मिलता है- अहङ्कार विमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते।

आगे चलकर इसी सर्ग में पाक यज्ञ करने वाले मनु- "अग्निहोत्र-अवशिष्ट अन्न कुछ कहीं दूर रख आते थे।" यहाँ पर गीता के प्रभाव के कारण ही मानव की निष्काम यज्ञ संबंधी धारणा का उल्लेख है, जिसमें यज्ञ के बचे हुए अन्न को, दूसरों को भी खिलाने का भाव-विचार पल्लवित हुआ है- यज्ञाष्टाशिनः संतो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै।(3/13)

"उस एकांत नियति शासन में चले विवश धीरे-धीरे" पंक्ति में प्रसाद जी ने गीता के उस कथन की ओर संकेत किया है, जहाँ संसार का कोई भी प्राणी अपने कर्म के लिए आजाद नहीं है, वह पल-पल जो-जो भी क्रिया करता रहता है, उसकी प्रेरक वह नियामिका शक्ति है, जो सारे संसार का नियमन करने वाली है-

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।(3/5)

'श्रद्धा' सर्ग में कवि प्रसाद ने मनु के द्वारा किए गए निःस्वार्थ 'भूत-यज्ञ' का वर्णन किया है- "यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न, भूत-हित-रत किसका यह दान।" ठीक इसी तरह निःस्वार्थ-भाव से किए गए यज्ञ को गीता में सात्विक यज्ञ कहा गया है। जो ऐसा यज्ञ करता है, उसके हृदय में श्रद्धा का आविर्भाव होता है-

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः।।
(17/11)
सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषों यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।
(17/3)

"अकेले तुम कैसे असहाय यजन कर सकते? तुच्छ विचार" छंद में यजन या यज्ञ शब्द का साधारण अर्थ हवन-कुंड में कुछ द्रव्य पदार्थ डालकर देवताओं के लिए आहुति देना या अग्निहोत्र करना है, किंतु केवल अग्निहोत्र को ही गीता में यज्ञ नहीं कहा गया है बल्कि और भी कई प्रकार के यज्ञों का वहाँ विवेचन है। (द्रष्टव्य-04/28,33) आगे श्रद्धा कहती है-

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरें हों
हो निरुपाय,
समन्वय उसका करें समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।[4]

यहाँ गीता के कर्म-रहस्य की तरह ही कर्मण्यता का संदेश छिपा है, जो सारे जगत् के लिए समन्वय की भावना को अपनाकर सफल होने की प्रेरणा दे रहा है। सच तो यह है कि 'श्रद्धा' सर्ग में कवि प्रसाद ने "अपने पुष्ट दार्शनिक विचारों द्वारा मानव को संसार से विरक्त होकर पलायन करने की अपेक्षा संसार में ही रहकर कर्मशील बनते हुए आनंद प्राप्त करने की प्रेरणा दी है। कवि की कर्मण्यता का यह संदेश गीता के संदेश से किसी प्रकार कम नहीं है, क्योंकि इसमें मानव - जीवन को उन्नत बनाने के लिए दुख और जीवन की जटिलताओं से न डरने, सदैव कर्मशील रहने, संसार के उद्भव और विनाश को उस ईश्वर की लीला मानने, दुख को ईश्वर का वरदान समझने, नित्य नूतनता की ओर अग्रसर होने, शक्ति-संचय करने, विश्व की दुर्बलता को सबल बनाने, मानवता को विजयिनी बनाने के लिए समन्वय की भावना को अपनाने आदि की जो प्रेरणाएँ प्रदान की गई हैं, वे आधुनिक भ्रमित मानवों के लिए श्रीमद्भगवत गीता की भाँति ही पथ-प्रदर्शन का कार्य कर रही हैं।"[5]

बकौल रामधारी सिंह दिनकर "कामायनी का संदेश निवृत्ति नहीं, प्रवृत्ति का संदेश है। वह 'गीता' की उस व्याख्या से उद्भूत होता है, जो लोकमान्य तिलक ने तैयार की थी, जो मनुष्य को संघर्ष से भागते नहीं, उससे जूझने को प्रेरित करती है, जो सकर्मण्य ज्ञान की अपेक्षा सद्भाव प्रेरित कर्म को कहीं श्रेष्ठ मानती है, जो श्मशान-वैरागय और अस्वस्थ त्याग को पुरुष का दूषण बताती है।..... प्राचीन युग के सन्यासियों ने 'गीता' को सन्यास का ग्रंथ बना दिया था। यह तमिस्रा तब फटी, जब लोकमान्य तिलक ने 'गीता-रहस्य' लिखकर प्रतिपादित किया कि गीता संसार छोड़कर वैराग्य लेने वालों का ग्रंथ नहीं प्रत्युत, उनका ग्रंथ है जो जनक के

समान संसार के सभी कार्य करते हुए संसार से अनासक्त रहने की योग्यता रखते हैं। इसी यती-धर्म का खंडन कामायनी में किया गया है।"[6] डॉ. रामस्वरूप चर्तुवेदी की मान्यता में भी 'यह ठीक है कि दार्शनिक शब्दावली का स्तर बहुचर्चित होने के कारण भी प्रसाद का समरसता-भाव और आनंद की धारणा स्थूल समाधानपरक दृष्टि का द्योतक हो गया हैं, पर रचना की सूक्ष्म प्रक्रिया मध्यकालीन सन्यास प्रधान आदर्श के विरोध में एक समृद्ध और समग्र दृष्टि की प्रस्तावना करती है, जहाँ भारतीय पुनर्जागरण के आधार ग्रथ गीता का निष्काम कर्म नहीं है, वरन् जहाँ कर्म भोग को प्रेरित करता है और भोग कर्म को। "कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ का चेतन आनंद।" इस तरह प्रक्रिया और निष्पति और फिर प्रक्रिया का एक अनवरत क्रम चलता है। रामकृष्ण, विवेकानंद और तिलक के युग में गीता की विराट्-दृष्टि में भी कुछ जोड़ने का उपक्रम हिंदी कवि की उपलब्धि को अधिक स्पृहणीय बनाता है।

भारतीय शास्त्रों में 'काम' और 'रति' के समन्वय को 'मैथुन' के नाम से अभिहित किया गया है और इस मैथुन की भावना को सभी प्राणियों में भूख-प्यास की तरह ही सामान्य रूप से स्थित बतलाया गया है- आहार, निद्रा, भय, मैथुनञ्य सामान्यमेतत पशुभिनराणाम्। 'काम' सर्ग के 'काम' के शुद्ध विकास' के द्वारा ही उसके सृजनात्मक-धर्माविरुद्ध (धर्मानुकूल) रूप की ओर संकेत किया गया है। गीता (7/11) में भी काम के पवित्र धर्माविरुद्ध रूप को भगवान की विभूति में शामिल किया गया है- धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

'लज्जा' सर्ग में लज्जा कहती है-

देवों की विजय, दानवों की हारों का होता युद्ध रहा,

संघर्ष सदा उर-अंतर में जीवित रह नित्य-विरुद्ध रहा।

ऊपर की पंक्तियों में 'देवों की विजय' और 'दानवों की हारों' का पौराणिक बिंब खींचा गया है। साथ ही दैवी तथा आसुरी प्रवृत्तियों के 'उर-अंतर में' संघर्ष तथा उसमें दैवी प्रवृत्ति की विजय एवं आसुरी प्रवृत्ति की पराजय का स्पष्ट संकेत है। इन दोनों प्रवृत्तियों के संश्लेषण-विश्लेषण से गीता का सोलहवाँ अध्याय भरा पड़ा है। 'यथार्थ गीता' के अनुसार "इस लोक में मनुष्यों का स्वभाव दो प्रकार का होता है।- देवताओं जैसा और असुरों जैसा। जब दैवी संपद् का बाहुल्य होता है, तो मनुष्य देवताओं-जैसा होता है और जब आसुरी संपद् का बाहुल्य होता है, तो मनुष्य आसुरों जैसा है। सृष्टि में बस मनुष्यों की दो ही जाति हैं, चाहे वह कहीं पैदा हुआ हो, कुछ भी कहलाता हो।"

'कर्म' सर्ग में आसुरी संपद् वाले असुर पुरोहित तामसिक प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। उन्हे मांस प्रिय है। इसीलिए वे हिंसक हैं। ऐसे मनुष्य कामी-क्रोधी और दूसरों की संपति को देखकर लोभ-लालच से वशीभूत होकर छल-कपट पूर्ण व्यवहार करने वाले होते हैं। तभी तो प्रसाद जी को लिखना पड़ा-

देख-देखकर मनु का पशु, जो व्याकुल चंचल रहती-

उनकी आभिष-लोलुप-रसना आँखों से कुछ कहती।

आसुर, प्रवृत्ति वाले ऐसे ही मनुष्यों के लक्षण 'गीता' के सोलहवें अध्याय के बारहवें-तेरहवें श्लोक में दृष्टिगत होते हैं। 'ईर्ष्या' सर्ग में मनु की आसुरी संपद् वाली प्रवृत्ति अपना गहरा रंग लाती है। कारण कि आसुरी-किलात पुरोहित की दिखावटी शोभायुक्त वाणी की छाप मनु के चित्त पर पहले ही पड़ चुकी थी। मनु के भीतर जो स्वार्थ-भावना पनपती है, उसका सफल चित्रण यहाँ मिलता है-

यह जीवन का वरदान-मुझे दे दो रानी-अपना दुलार,

केवल मेरी ही चिंता का तव-चित्त वहन कर रहे भार।

दरअसल, ऐसा सोच, एक स्वार्थी-विलासी मनोवृत्ति वाले व्यक्ति का ही हो सकता है, जो सदैव जगत् के सभी पदार्थो को मिथ्या मानकर अपनी सुखोपभोग की कामनाओं को केवल तृप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं और दंभ-मान-मद में चूर हो सांसारिक मनुष्यों के संग गलत व्यवहार करते रहते हैं। ऐसे ही लोगों की खबर भी गीता में है। (द्रष्टव्य- 16/8, 10)

'संघर्ष' सर्ग के "प्रगतिशील मन रुका एक क्षण करवट लेकर" बंध में "प्रगतिशील मन" का तात्पर्य मनु के अत्यंत ही चंचल मन से ही है जो हरदम किसी न किसी प्रकार की ऊहापोह या संकल्प-विकल्प में लिप्त रहता है। गीता में भी 'चंचल हि मनः कृष्ण....'

कहा गया है।

'निर्वेद' सर्ग में श्रद्धा कहती है-

चिर निराशा निर धर से
प्रतिच्छायित अश्रु-सर में,
मधुप-मुखर मरंद-मुकलित,
मैं सजल जलजात रे मन।

प्रस्तुत आलोच्य गीत में कवि का कहना है कि संसार में जितने भी निराश प्राणी है, उनमें आशा का संचार, उनके अश्रुपूरित नयनों में प्रसन्नता का भाव और दुखी मुरझाए हृदयों को विकसित करने वाली श्रद्धा ही है। सच तो यह है कि श्रद्धा नामक मनोभाव का स्वभाव ही ऐसा है। मनु कहते हैं-

किंतु अधम मैं समझ न पाया उस मंगल की माया को,
और आज भी पकड़ रहा हूँ हर्ष शोक की छाया को।
मेरा सब कुछ क्रोध मोह के उपादान से गठित हुआ,
ऐसा ही अनुभव होता है किरनों ने अब तक न छुआ।

किंतु, इस छंद में श्रद्धा से हीन मनु की जो अवस्था है, उसी का यहाँ उल्लेख हुआ है। कवि का यहाँ मानना है कि मनुष्य जब तक श्रद्धावान नहीं होता, उसमें तब तक तत्परता नहीं आती। संयतेंद्रिय होना, श्रद्धा तथा तत्परता के लिए जरूरी है। इनमें युक्त श्रदधावान् होने पर ही ज्ञान की प्राप्ति होती है- श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्। इसके बिना मनुष्य सदैव अज्ञानांधकार में भटकता रहता है-

शापित-सा मैं जीवन का यह ले कंकाल भटकता हूँ,
उसी खोखलेपन में जैसे कुछ खोजता अटकता हूँ।
अंध-तमस् है, किंतु प्रकृति का आकर्षण है खींच रहा,
सब पर, हाँ अपने पर भी मैं झुँझलाता हूँ खीझ रहा।

'हर्ष शोक की छाया' से प्रसाद जी का आशय यह है कि जैसे कोई अज्ञानी मनुष्य पानी में चंद्रमा-सूर्य के प्रतिबिंब को पकड़कर यह कहता है कि मैंने चंद्रमा-सूर्य को पकड़ लिया है, वैसे ही अज्ञानी मनुष्य हर्ष-शोक के क्षणिक प्रतिबिंबों को सत्य समझकर उसी में लीन रहा करता है। हर्ष के क्षण में वह फूला नहीं समाता तथा शोक के क्षण में सदा अश्रुपात किया करता है। किंतु 'यथार्थ गीता' में ज्ञानी मनुष्य के लिए तो यहाँ तक कहा गया है कि 'दैहिक, दैविक तथा भौतिक दुखों में जिसका मन उद्विग्न नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जिसकी स्पृहा दूर हो गई है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं, मननशीलता की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ मुनि स्थित प्रज्ञ कहा जाता है।

मनु के जीवन में जो विषमता उत्पन्न हुई थी, उसका मुख्य कारण जीवन को क्षण-भंगुर-अस्थिर मानना ही था। मनु 'गीता' के उस जीवन की अखंडता-अनन्तता को भूल गए थे, जहाँ जीवन अमर है, उसकी शाश्वत गति है, यह जीवन अनंत है, केवल चोले बदलता है, न कभी उत्पन्न होता है, न कभी मरता ही है, अपितु यह अज, नित्य, शाश्वत एवं पुरातन है। इसी अनंत-शाश्वत गति की ओर प्रसाद जी ने 'प्रलय की छाया' में संकेतित किया है- "जीवन सौभाग्य है, जीवन अलभ्य है/जीवन अनंत है,/ इसे छिन्न करने का किसे अधिकार है।/ जीवन की सीमामयी प्रतिमा/ कितनी मधुर है।" प्रसाद जी का उक्त विचार 'गीता' के 'नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक' से कितना मिलता-जुलता है। कामायनी के 'दर्शन सर्ग' में इसी विचार को प्रसाद जी ने व्यक्त किया है-

जीवन धारा सुंदर प्रवाह,
सत सतत प्रकाश, सुखद अथाह।

दरअसल सत् और असत् भारतीय संस्कृति के दो पक्ष है, जिनका निरुपण कामायनी के 'रहस्य' सर्ग में करते हुए प्रसाद ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि विश्व-मानवता के विकास में दोनों पक्षों की जरूरत है, किंतु इनमें परस्पर समन्वय या समरसता का होना अति आवश्यक है अन्यथा सत् की प्रबलता होने के कारण विश्व-मानव निष्क्रिय हो जाएगा और असत् की प्रबलता होने के कारण वह दुष्कर्मों में संलिप्त हो जाएगा। 'मनु यह श्यामल कर्मलोक है, धुँधला कुछ-कुछ अंधकार-सा' जैसे पदबंध में कवि ने संसार को एक कारखाना और कर्म-चक्र को एक महायंत्र बताते हुए यह समझाने का प्रयास किया है कि इस लोक के प्राणी वैसे ही हमेशा कार्य में लीन रहते हैं, जैसे किसी कारखाने में अहर्निश लोग कार्य में लगे रहते हैं। 'गीता' के तीसरे अध्याय के पाँचवें श्लोक के द्वारा कवि के प्रस्तुत कथन की पुष्टि भी हो जाती है। इसी सर्ग में आगे

प्रसाद ने 'लोकैषणा' में मतवाले हुए मनुष्यों का चित्र खींचते हुए लिखा है-

बड़ी लालसा यहाँ सुयश की अपराधों की स्वीकृति बनती,

अंध प्रेरणा से परिचालित कर्त्ता में करते निज गिनती।

ये वैसे लोग हैं जो तामसी प्रवृत्तियों से संचालित होने के कारण अपनी ख्याति के लिए गलत से भी गलत कार्य करने पर उतारू हो जाते हैं। ऐसे लोग अपने को अहंकार के कारण कर्ता मान लेते हैं। 'गीता' में भी इसका वर्णन है। (द्रष्टव्य- 3/27) वैसे तो मानव-प्रकृति या उसके मनोभावों के आधार पर ही कर्मों का विभाजन किया गया है- 'गुण कर्म विभागशः।' तभी तो कहा गया है-

मनोभाव से काय-कर्म के समतोलन दत्त चित्त से,
ये निस्पृह न्यायासन वाले चूक न सकते तनिक चित्त से।

मसलन सात्विक मनोभाव वाले मनुष्यों के कार्य सात्विक, राजसिक मनोभाव वाले मनुष्यों के कार्य राजसी और तामसिक मनोभाव वाले मनुष्यों के कार्य तामसी माने गए हैं। इस संदर्भ में विशेष अध्ययन के लिए 'गीता' के 'गुणत्रय विभाग' नामक चौदहवाँ अध्याय द्रष्टव्य है। आगे श्रद्धा कहती है-

यहाँ शरद की धवल ज्योत्सना अंधकार को भेद निखरती,
यह अनवस्था, युगल मिले से विकल व्यवस्था सदा बिखरती।

कवि ने यहाँ ज्ञानमार्गी श्रद्धाविहीन साधकों का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस ज्ञान लोक में मनुष्य ज्ञान की उपासना तो, करता है, किंतु उनके हृदय में श्रद्धा-विश्वास या आस्तिक्य का भाव नहीं रहता। वह केवल तर्क-बुद्धि के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। शायद इसीलिए सदैव वहाँ, 'अनवस्था' बनी रहती है, जबकि श्रद्धावान ही ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार यहाँ के प्राणियों का जो लक्ष्य है- 'उत्तमता' की प्राप्ति, उसके लिए जिस संयम, तत्परता एवं श्रद्धा की जरूरत होती है, उसका इनमें अभाव है।

यह सर्ग प्रसाद के दार्शनिक विचारों का उन्नत स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए विख्यात है। श्रीमद्भगवत गीता के रचनाकार की तरह ही 'कामायनी' के रचनाकार जिस स्तर की बात करते हैं, उस समय उनके मनोगत भाव क्या थे? क्योंकि समस्त मनोगत भाव कहने में नहीं आ पाते। कहने में तो कुछ ही भाव आते हैं, कुछ भाव-भंगिमा से अभिव्यक्त हुआ करते हैं और 'रहस्य' सर्ग तो पर्याप्त क्रियात्मक है, जहाँ मानव-जीवन इच्छा, ज्ञान और क्रिया नामक त्रिपुर के त्रयी में विभक्त है, किंतु श्रद्धा के बिना इनका समन्वय नहीं हो पाता। वैसे तो कामायनी का दर्शन आत्मवाद के मजबूत धरातल पर प्रतिष्ठित है, जिसमें ज्ञान को प्रधानता न देकर श्रद्धा को प्रधानता दी गई है। शांकर मत में 'ऋते ज्ञानन्न मुक्ति' तो प्रसाद मत में 'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम् का संदेश है। इस तरह 'गीता' में श्रद्धा को ज्ञान का प्रेरक सिद्ध किया गया है। श्रद्धा की साधना से ही श्रद्धानुरूप फल की प्राप्ति का संदेश 'गीता' में है- 'श्रद्धामयो यं पुरुषः यच्छ्रद्धा स एव सः।' कामायनी में भी श्रद्धा के प्रसन्न होने पर उसकी मुस्कान के द्वारा ही इच्छा, क्रिया और ज्ञान नामक त्रिपुर का समन्वय होता है और मनु स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों पर विजय प्राप्त कर 'पुरूजित' बनते हैं।[10] सत्-रज-तम त्रिगुणमयी प्रकृति के ये तीन नगर हैं, तीन लोक हैं, तीन पुर हैं और त्रिभुवन के प्रतिनिधि हैं लोक-लोकांतर इस मन के मध्य में निवास करते हैं। जब जिसका क्रम आता है, यह मन पिंड के रूप में फेंकता रहता है। तीनों लोकों (भावलोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक) में जीव कहीं भी चक्कर काटता है तो वह संसार में ही है। इनको लय करने वाल ही त्रिपुरारी है अर्थात् त्रिगुणातीत स्वरूप में स्थित महापुरुष है। शिव एक स्थिति है। मनु की तरह ही इस स्थिति को जो मनुष्य प्राप्त कर लेता है, उसे अखंड आनंद की प्राप्ति होती है-

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर-निनाद में श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

सब समग्र रूप से कहना होगा कि श्रीमद्भगवत गीता की तरह ही 'मानव-मन की प्रवृत्तियों का संघर्ष, उत्थान-पतन तथा उन्नयन ही 'कामायनी' की दर्शन-पीठ

है। तर्क-बुद्धि इड़ा तथा श्रद्धा को समन्वय ही उसका नि:श्रेयस भरा संदेश है[12] इस तरह मानव-जीवन में जो व्याप्त अंतदर्वंद्व हैं, उसको प्रसाद जी ने अद्भुत ढंग से रूपायित करते हुए कामायनी को विश्व-मानवता का महाकाव्य बना दिया है जो आज भी काव्याकाश में चंद्रमा की पूर्ण धवल किरणों की तरह अपनी अनुपम छटा बिखेरती हुई विश्व के संपूर्ण दिग्भ्रमित मानवों का पथ-आलोकित कर रही है।

संदर्भ सूची

1. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र : हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण-26वाँ, पृष्ठ-367

2. सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद : हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ - 132

3. अड़गड़ानंद, स्वामी : यथार्थ गीता, श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानंद जी आश्रम ट्रस्ट, मुंबई-7, पृष्ठ-95

4. प्रसाद, जयशंकर : कामायनी - 'श्रद्धा' सर्ग

5. सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद : कामायनी-भाष्य, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ - 109

6. कुमार, डॉ. वचनदेव एवं प्रसाद, डॉ. दिनेश्वर: कामायनी : एक सह चिंतन, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, पृष्ठ-17

7. वही : पृष्ठ - 132

8. अड़गड़ानंद, स्वामी : यथार्थ गीता, पृष्ठ - 17

9. वही : पृष्ठ - 58

10. वही : पृष्ठ - 4

11. महाराज, स्वामी श्री अड़गड़ानंद जी : अमृतवाणी, भाग-1 पृष्ठ-113, 58, 87

12. कामायनी : एक सह चिंतन, पृष्ठ - 8

- 133/20, भारती गंज, सासाराम, रोहतास, बिहार-821115

❑❑❑

भारत दुर्दशा

भारतेंदु हरिश्चंद्र

नाट्यरासक वा लास्य रूपक, संवत 1933

।। मंगलाचरण ।।

जय सतजुग-थापन-करन, नासन म्लेच्छ-आचार।
कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कल्कि अवतार।।

पहला अंक

स्थान - बीथी

(एक योगी गाता है)

(लावनी)

रोअहू सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।। धुरव ।।
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो ।।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्‌याफल जिन गहि लीनो ।।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।।
जहँ भए शाक्य हरिचंदरु नहुष ययाती।
जहँ राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती ।।
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्‌या राती ।।
अब जहँ देखहु दुखहिं दुख दिखाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।।
लरि बैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवनसैन पुनि भारी ।।
तिन नासी बुधि बल विद्‌या धन बहु बारी।
छाई अब आलस कुमति कलह अंधियारी ।।
भए अंध पंगु सेब दीन हीन बिलखाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।।
अँगरेजराज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेश चलि जात इहै अति ख़्वारी ।।
ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री ।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।।

(पटीत्तोलन)

दूसरा अंक

स्थान-श्मशान, टूटे-फूटे मंदिर

कौआ, कुत्ता, स्यार घूमते हुए, अस्थि इधर-उधर पड़ी है।

(भारत का प्रवेश)

भारत : हा! यही वही भूमि है जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचंद्र के दूतत्व करने पर भी वीरोत्तम दुर्योधन ने कहा था, 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्‌धेन केशव' और आज हम उसी को देखते हैं कि श्मशान हो रही है। अरे यहाँ की योग्यता, विद्‌या, सभ्यता, उद्‌योग, उदारता, धन, बल, मान, दृढ़चित्तता, सत्य सब कहां गए? अरे पामर जयचद्र! तेरे उत्पन्न हुए बिना मेरा क्या डूबा जाता था? हाय! अब मुझे कोई शरण देने वाला नहीं। (रोता है) मात:; राजराजेश्वरि बिजयिनी! मुझे बचाओ। अपनाए की लाज रक्खो। अरे दैव ने सब कुछ मेरा नाश कर दिया पर अभी संतुष्ट नहीं हुआ। हाय! मैंने जाना था कि अंगरेजों के हाथ में आकर हम अपने दुखी मन को पुस्तकों से बहलावेंगे और सुख मानकर

जन्म बितावेंगे पर दैव से वह भी न सहा गया। हाय! कोई बचानेवाला नहीं।

(गीत)

कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हा हा होय अनाथ।।
जाकी सरन गहत सोई मारत सुनत न कोउ दुखगाथ।
दीन बन्यौ इस सों उन डोलत टकरावत निज माथ।।
दिन दिन बिपति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ।
सब विधि दुख सागर मैं डूबत धाई उबारौ नाथ।।

(नेपथ्य में गंभीर और कठोर स्वर से)

अब भी तुझको अपने नाथ का भरोसा है! खड़ा तो रह। अभी मैंने तेरी आशा की जड़ न खोद डाली तो मेरा नाम नहीं।

भारत : (डरता और काँपता हुआ रोकर) अरे यह विकराल वदन कौन मुँह बाए मेरी ओर दौड़ता चला आता है? हाय-हाय इससे कैसे बचेंगे? अरे यह तो मेरा एक ही कौर कर जायेगा! हाय! परमेश्वर बैकुंठ में और राजराजेश्वरी सात समुद्र पार, अब मेरी कौन दशा होगी? हाय अब मेरे प्राण कौन बचावेगा? अब कोई उपाय नहीं। अब मरा, अब मरा। (मूर्छा खाकर गिरता है)

(निर्लज्जता आती है)

निर्लज्जता : मेरे आछत तुमको अपने प्राण की फिक्र। छि: छि:! जीओगे तो भीख माँग खाओगे। प्राण देना तो कायरों का काम है। क्या हुआ जो धनमान सब गया 'एक जिंदगी हजार नेआमत है।' (देखकर) अरे सचमुच बेहोश हो गया तो उठा ले चलें। नहीं नहीं मुझसे अकेले न उठेगा। (नेपथ्य की ओर) आशा! आशा! जल्दी आओ।

(आशा आती है)

निर्लज्जता : यह देखो भारत मरता है, जल्दी इसे घर उठा ले चलो।

आशा : मेरे आछत किसी ने भी प्राण दिया है? ले चलोय अभी जिलाती हूँ।

(दोनों उठाकर भारत को ले जाते हैं)

तीसरा अंक

स्थान-मैदान

(फौज के डेरे दिखाई पड़ते हैं! भारतदुर्दैव' आता है)

भारतदु. : कहाँ गया भारत मूर्ख! जिसको अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी का भरोसा है? देखो तो अभी इसकी क्या क्या दुर्दशा होती है।

(नाचता और गाता हुआ)

अरे!

उपजा ईश्वर कोप से औ आया भारत बीच।
छार खार सब हिंद करूँ मैं, तो उत्तम नहिं नीच।
मुझे तुम सहज न जाना जी, मुझे इक राक्षस मानो जी।
कौड़ी-कौड़ी को करूँ मैं सबको मुहताज।
भूखे प्रान निकालूँ इनका, तो मैं सच्चा राज।
मुझे तुम...
काल भी लाऊँ महँगी लाऊँ, और बुलाऊँ रोग।
पानी उलटाकर बरसाऊँ, छाऊँ जग में सोग।
मुझे तुम...
फूट बैर औ कलह बुलाऊँ, ल्याऊँ सुस्ती जोर।
घर घर में आलस फैलाऊँ, छाऊँ दुख घनघोर।
मुझे तुम...
काफर काला नीच पुकारूँ, तोडूँ पैर औ हाथ।
दूँ इनको संतोष खुशामद, कायरता भी साथ।
मुझे तुम...
मरी बुलाऊँ देस उजाडूँ महँगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिकस लगाऊ, धन है मुझको धन्न।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी।

(नाचता है)

अब भारत कहाँ जाता है, ले लिया है। एक तस्सा बाकी है, अबकी हाथ में वह भी साफ है। भला हमारे बिना और ऐसा कौन कर सकता है कि अंगरेजी अमलदारी में भी हिंदू न सुधरें! लिया भी तो अंगरेजों से औगुन! हा हा हा! कुछ पढ़े लिखे मिलकर देश सुधारा चाहते हैं? हहा हहा! एक चने से भाड़ फोड़ेंगे। ऐसे लोगों को दमन करने को मैं जिले के हाकिमों को न हुक्म दूँगा कि इनको डिसलायल्टी में पकड़ो और ऐसे लोगों को हर तरह से खारिज करके जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उसको उतना बड़ा मेडल और खिताब दो। हैं! हमारी पालिसी के विरुद्ध उद्योग करते हैं मूर्ख! यह क्यों? मैं अपनी फौज ही भेज के न सब चौपट करता

हूँ। (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे कोई है? सत्यानाश फौजदार को तो भेजो।

(नेपथ्य में से 'जो आज्ञा' का शब्द सुनाई पड़ता है)

देखो मैं क्या करता हूँ। किधर-किधर भागेंगे।

(सत्यानाश फौजदार आते हैं)

(नाचता हुआ)

सत्या. फौ : हमारा नाम है सत्यानास।
धरके हम लाखों ही भेस।
बहुत हमने फैलाए धर्म।
होके जयचंद हमने इक बार।
हलाकू चंगेजो तैमूर।
दुरानी अहमद नादिरसाह।
हैं हममें तीनों कल बल छल।
पिलावैंगे हम खूब शराब।

भारतदु : अंहा सत्यानाशजी आए। आओ, देखो अभी फौज को हुक्म दो कि सब लोग मिल के चारों ओर से हिंदुस्तान को घेर लें। जो पहले से घेरे हैं उनके सिवा औरों को भी आज्ञा दो कि बढ़ चलें।

सत्या. फौ. : महाराज 'इंद्रजीत सन जो कछु भाखा, सो सब जनु पहिलहिं करि राखा।' जिनको आज्ञा हो चुकी है वे तो अपना काम कर ही चुके और जिसको जो हुक्म हो, कर दिया जाय।

भारतदु : किसने किसने क्या-क्या किया है?

सत्या. फौ. : महाराज! धर्म ने सबके पहिले सेवा की।

रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए ।।
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो।
खान पान संबंध सबन सों बरजि छुड़ायो ।।
जन्मपत्री विधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब।
बालकपन में ब्याहि प्रीतिबल नास कियो सब ।।
करि कुलान के बहुत ब्याह बल बीरज मारयो।
बिधवा ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचारो ।।
रोकि विलायतगमन कूपमंडूक बनायो।
यौवन को संसर्ग छुड़ाई प्रचार घटायो ।।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सो सब बिमुख किए हिंदू घबराई ।।

भारतदु : आहा! हाहा! शाबाश! शाबाश!

हाँ, और भी कुछ धर्म्म ने किया?

सत्या. फौ. : हाँ महाराज।

अपरस सोल्हा छूत रचि, भोजनप्रीति छुड़ाय।
किए तीन तेरह सबै, चौका चौका छाय ।।

भारतदु. : और भी कुछ?

सत्या. फौ. : हाँ।

रचिकै मत वेदांत को, सबको ब्रह्म बनाय।
हिंदुन पुरुषोत्तम कियो, तोरि हाथ अरू पाय ।।

महाराज, वेदांत ने बड़ा ही उपकार किया। सब हिंदू ब्रह्म हो गए। किसी को इतिकर्त्तव्यता बाकी ही न रही। ज्ञानी बनकर ईश्वर से विमुख हुए, रुक्ष हुए, अभिमानी हुए और इसी से स्नेहशून्य हो गए। जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धार का प्रयत्न कहां! बस, जय शंकर की।

सत्या. फौ. : हाँ महाराज।

भारतदु. : अच्छा, और किसने किसने क्या किया?

सत्या. फौ. : महाराज, फिर संतोष ने भी बड़ा काम किया। राजा प्रजा सबको अपना चेला बना लिया। अब हिंदुओं को खाने मात्र से काम, देश से कुछ काम नहीं। राज न रहा, पेनसन ही सही। रोजगार न रहा, सूद ही सही। वह भी नहीं, तो घर ही का सही, 'संतोषं परमं सुखं' रोटी को ही सराह सराह के खाते हैं। उद्यम की ओ देखते ही नहीं। निरुद्यता ने भी संतोष को बड़ी सहायता दी। इन दोनों को बहादुरी का मेडल जरूर मिले। व्यापार को इन्हीं ने मार गिराया।

भारतदु. : और किसने क्या किया?

सत्या. फौ. : फिर महाराज जो धन की सेना बची थी उसको जीतने को भी मैंने बड़े बांके वीर भेजे। अपव्यय, अदालत, फैशन और सिफारिश इन चारों ने सारी दुश्मन की फौज तितिर बितिर कर दी। अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किए। फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि बंटाधार कर दिया और सिफारिश ने भी खूब ही छकाया। पूरब से पश्चिम और पश्चिम से पूरब तक पीछा करके खूब भगाया। तुहफे, घूस और चंदे के ऐसे बम के गोले चलाए कि 'बम बोल गई बाबा की चारों दिसा' धूम निकल पड़ी। मोटा भाई बना बनाकर मूँड़ लिया। एक तो खुद ही यह सब पँडिया के ताऊ, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, डर दिखाया गया,

बराबरी का झगड़ा उठा, धांय धांय गिनी गई वर्णमाला कंठ कराई, बस हाथी के खाए कैथ हो गए। धन की सेना ऐसी भागी कि कब्रों में भी न बची, समुद्र के पार ही शरण मिली।

भारतदु. : और भला कुछ लोग छिपाकर भी दुश्मनों की ओर भेजे थे?

सत्या. फौ. : हाँ, सुनिए। फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक, अश्रुमार्जन और निर्बलता इन एक दरजन दूती और दूतों को शत्रुओं की फौज में हिला मिलाकर ऐसा पंचामृत बनाया कि सारे शत्रु बिना मारे घंटा पर के गरुड़ हो गए। फिर अंत में भिन्नता गई। इसने ऐसा सबको काई की तरह फाड़ा धर्म, चाल, व्यवहार, खाना, पीना सब एक एक योजन पर अलग अलग कर दिया। अब आवें बचा ऐक्य! देखें आ ही के क्या करते हैं!

भारतदु. : भला भारत का शस्य नामक फौजदार अभी जीता है कि मर गया? उसकी पलटन कैसी है?

सत्या. फौ. : महाराज! उसका बल तो आपकी अतिवृष्टि और अनावृष्टि नामक गैजों ने बिलकुल तोड़ दिया। लाही, कीड़े, टिढ्ढी और पाला इत्यादि सिपाहियों ने खूब ही सहायता की। बीच में नील ने भी नील बनकर अच्छा लंकादहन किया।

भारतदु. : वाह! वाह! बड़े आनंद की बात सुनाई। तो अच्छा तुम जाओ। कुछ परवाह नहीं, अब ले लिया है। बाकी साकी अभी सपराए डालता हूँ। अब भारत कहाँ जाता है। तुम होशियार रहना और रोग, महर्घ, कर, मद्य, आलस और अंधकार को जरा क्रम से मेरे पास भेज दो।

सत्या. फौ. : जो आज्ञा।

जाता है,

भारतदु. : अब उसको कहीं शरण न मिलेगी। धन, बल और विद्या तीनों गई। अब किसके बल कूदेगा?

(जवनिका गिरती है)

पटोत्तोलन

चौथा अंक

(कमरा अँगरेजी सजा हुआ, मेज, कुरसी लगी हुई। कुरसी पर भारत दुर्दैव बैठा है)

(रोग का प्रवेश)

रोग (गाता हुआ) : जगत् सब मानत मेरी आन।
मेरी ही टट्टी रचि खेलत नित सिकार भगवान ।।
मृत्यु कलंक मिटावत मैं ही मोसम और न आन।
परम पिता हम हीं वैद्यन के अत्तारन के प्रान ।।

मेरा प्रभाव जगत विदित है। कुपथ्य का मित्र और पथ्य का शत्रु मैं ही हूँ। त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जिस पर मेरा प्रभुत्व नहीं। नजर, श्राप, प्रेत, टोना, टनमन, देवी, देवता सब मेरे ही नामांतर हैं। मेरी ही बदौलत ओझा, दरसनिए, सयाने, पंडित, सिद्ध लोगों को ठगते हैं। (आतंक से) भला मेरे प्रबल प्रताप को ऐसा कौन है जो निवारण करे। हह! चुंगी की कमेटी सफाई करके मेरा निवारण करना चाहती है, यह नहीं जानती कि जितनी सड़क चौड़ी होगी उतने ही हम भी 'जस जस सुरसा वदन बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा'। (भारतदुदैव को देखकर) महाराज! क्या आज्ञा है?

भारतदु. : आज्ञा क्या है, भारत को चारों ओर से घेर लो।

रोग : महाराज! भारत तो अब मेरे प्रवेशमात्रा से मर जाएगा। घेरने को कौन काम है? धन्वंतरि और काशिराज दिवोदास का अब समय नहीं है। और न सुश्रुत, वाग्भट्ट, चरक ही हैं। बैदगी अब केवल जीविका के हेतु बची है। काल के बल से औषधों के गुणों और लोगों की प्रकृति में भी भेद पड़ गया। बस अब हमें कौन जीतेगा और फिर हम ऐसी सेना भेजेंगे जिनका भारतवासियों ने कभी नाम तो सुना ही न होगा तब भला वे उसका प्रतिकार क्या करेंगे! हम भेजेंगे विस्फोटक, हैजा, डेंगू, अपाप्लेक्सी। भला इनको हिंदू लोग क्या रोकेंगे? ये किधर से चढ़ाई करते हैं और कैसे लड़ते हैं जानेंगे तो हई नहीं, फिर छुट्टी हुई वरंच महाराज, इन्हीं से मारे जायँगे और इन्हीं को देवता करके पूजेंगे, यहाँ तक कि मेरे शत्रु डाक्टर और विद्वान् इसी विस्फोटक के नाश का उपाय टीका लगाना इत्यादि कहेंगे तो भी ये सब उसको शीतला के डर से न मानंगे और उपाय आछत अपने हाथ प्यारे बच्चों की जान लेंगे।

भारतदु. : तो अच्छा तुम जाओ। महर्घ और टिकस भी यहाँ आते होंगे सो उनको साथ लिए जाओ। अतिवृष्टि, अनावृष्टि की सेना भी वहाँ जा चुकी है। अनक्य और अंधकार की सहायता से तुम्हें कोई भी

रोक न सकेगा। यह लो पान का बीड़ा लो। (बीड़ा देता है)

(रोग बीड़ा लेकर प्रणाम करके जाता है)

भारतदु. : बस, अब कुछ चिंता नहीं, चारों ओर से तो मेरी सेना ने उसको घेर लिया, अब कहाँ बच सकता है।

(आलस्य का प्रवेश)

आलस्य : हहा! एक पोस्ती ने कहा; पोस्ती ने पी पोस्त नौ दिन चले अढ़ाई कोस। दूसरे ने जवाब दिया, अबे वह पोस्ती न होगा डाक का हरकारा होगा। पोस्ती ने जब पोस्त पी तो या कूँड़ी के उस पार या इस पार ठीक है। एक बारी में हमारे दो चेले लेटे थे ओर उसी राह से एक सवार जाता था। पहिले ने पुकारा "भाई सवार, सवार, यह पक्का आम टपक कर मेरी छाती पर पड़ा है, जरा मेरे मुँह में तो डाल।" सवार ने कहा "अजी तुम बड़े आलसी हो। तुम्हारी छाती पर आम पड़ा है सिर्फ हाथ से उठाकर मुँह में डालने में यह आलस है!" दूसरा बोला ठीक है साहब, यह बड़ा ही आलसी है। रात भर कुत्ता मेरा मुँह चाटा किया और यह पास ही पड़ा था पर इसने न हाँका।'' सच है किस जिंदगी के वास्ते तकलीफ उठाना मजे में हालमस्त पड़े रहना। सुख केवल हम में है 'आलसी पड़े कुएँ में वहीं चैन है।'

(गाता है)

(गजल)

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा ।।
बिस्तर प मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा।
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा ।।
"रहने दो जमीं पर मुझे आराम यहीं है।"
छेड़ो न नक्शेपा है मिटाना नहीं अच्छा ।।
उठा करके घर से कौन चले यार के घर तक।
"मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा।।
धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे।
उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा ।।
सिर भारी चीज है इस तकलीफ हो तो हो।
पर जीभ विचारी को सताना नहीं अच्छा ।।
फाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए।
दुनिया नहीं अच्छी है जमाना नहीं अच्छा ।।
सिजदे से गर बिहिश्त मिले दूर कीजिए।
दोजष्ख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा ।।
मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या।
ऐ मीरे फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा ।।

और क्या। काजी जी दुबले क्यों, कहैं शहर के अंदेशे से। अरे 'कोउ नृप होउ हमें का हानी, चैरि छाँड़ि नहिं होउब रानी।' आनंद से जन्म बिताना। 'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।' जो पढ़तव्यं सो मरतव्यं, तो न पढतव्यं सो भी मरतव्यं तब फिर दंतकटाकट किं कर्तव्यं?' भई जात में ब्राह्मण, धर्म में वैरागी, रोजगार में सूद और दिल्लगी में गप सब से अच्छी। घर बैठे जन्म बिताना, न कहीं जाना और न कहीं आना सब खाना, हगना, मूतना, सोना, बात बनाना, तान मारना और मस्त रहना। अमीर के सर पर और क्या सुरखाब का पर होता है, जो कोई काम न करे वही अमीर। 'तवंगरी बदिलस्त न बमाल।' दोई तो मस्त हैं या मालमस्त या हालमस्त

(भारतदुदैव को देखकर उसके पास जाकर प्रणाम करके) महाराज! मैं सुख से सोया था कि आपकी आज्ञा पहुँची, ज्यों त्यों कर यहाँ हाजिर हुआ। अब हुक्म?

भारतदु. : तुम्हारे और साथी सब हिंदुस्तान की ओर भेजे गए हैं। तुम भी वहीं जाओ और अपनी जोगनिंद्रा से सब को अपने वश में करो।

आलस्य : बहुत अच्छा। (आप ही आप) आह रे बप्पा! अब हिंदुस्तान में जाना पड़ा। तब चलो धीरे-धीरे चलें। हुक्म न मानेंगे तो लोग कहेंगे 'सरबस खाई भोग करि नाना समरभूमि भा दुरलभ प्राना।' अरे करने को दैव आप ही करेगा, हमारा कौन काम है, पर चलें।

(यही सब बुड़बुडाता हुआ जाता है)

(मदिरा आती है)

मदिरा : भगवान् सोम की मैं कन्या हूँ। प्रथम वेदों ने मधु नाम से मुझे आदर दिया। फिर देवताओं की प्रिया होने से मैं सुरा कहलाई और मेरे प्रचार के हेतु श्रौत्रामणि यज्ञ की सृष्टि हुई। स्मृति और पुराणों में भी प्रवृत्ति मेरी नित्य कही गई। तंत्रा तो केवल मेरी ही हेतु बने। संसार में चार मत बहुत प्रबल हैं, हिंदू बौद्ध, मुसलमान और क्रिस्तान। इन चारों में मेरी चार पवित्र प्रेममूर्ति विराजमान

हैं। सोमपान, बीराचमन, शराबूनतहूरा और बाप टैजिग वाइन। भला कोई कहे तो इनको अशुद्ध? या जो पशु हैं उन्होंने अशुद्ध कहा ही तो क्या हमारे चाहने वालों के आगे वे लोग बहुत होंगे तो फी संकड़े दस हांगे, जगत् में तो हम व्याप्त हैं। हमारे चेले लोग सदा यही कहा करते हैं। फिर सरकार के राज्य के तो हम एकमात्रा भूषण हैं।

दूध सुरा दधिहू सुरा, सुरा अन्न धन धाम।
वेद सुरा ईश्वर सुरा, सुरा स्वर्ग को नाम ।।
जाति सुरा विद्या सुरा, बिनु मद रहै न कोय।
सुधरी आजादी सुरा, जगत् सुरामय होय ।।
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरू, सैयद सेख पठान।
दै बताइ मोहि कौन जो, करत न मदिरा पान ।।
पियत भट्ट के ठट्ट अरु, गुजरातिन के वृंद।
गौतम पियत अनंद सों, पियत अग्र के नंद ।।
होटल में मदिरा पिएँ, चोट लगे नहिं लाज।
लोट लए ठाढ़े रहत, टोटल दैवे काज ।।
कोउ कहत मद नहिं पिएँ, तो कछु लिख्यों न जाय।
कोउ कहत हम मद्य बल, करत वकीली आय ।।
मद्यहि के परभाव सों, रचन अनेकन ग्रंथ।
मद्यहि के परकास सों, लखत धरम को पंथ ।।
मद पी विधिजग को करत, पालत हरि करि पान।
मद्यहि पी कै नाश सब, करत शंभु भगवान् ।।
विष्णु बारूणी, पोर्ट पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि।
शांपिन शिव गौड़ी गिरिश, ब्रांड़ी ब्रह्म बिचारि ।।
मेरी तो धन बुद्धि बल, कुल लज्जा पति गेह।
माय बाप सुत धर्म सब, मदिरा ही न संदेह ।।
सोक हरन आनंद करन, उमगावन सब गात।
हरि मैं तपबिनु लय करनि, केवल मद्य लखात।।
सरकारहि मंजूर जो मेरा होत उपाय।
तो सब सों बढ़ि मद्य पै देती कर बैठाय ।।
हमहीं कों या राज की, परम निसानी जान।
कीर्ति खंभ सी जग गड़ी, जब लौं थिर सति भान।।

राजमहल के चिह्न नहिं, मिलिहैं जग इत कोय।
तबहू बोतल टूक बहु, मिलिहैं कीरति होय ।।

हमारी प्रवृत्ति के हेतु कुछ यत्न करने की आवश्यकता नहीं। मनु पुकारते हैं 'प्रवृत्तिरेषा भूतानां' और भागवत में कहा है 'लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्य यास्ति जंतोः।' उसपर भी वर्तमान समय की सभ्यता की तो मैं मुख्यमूलसूत्रा हूँ।

विषयेंद्रियों के सुखानुभव मेरे कारण द्विगुणित हो जाते हैं। संगीत साहित्य की तो एकमात्र जननी हूँ। फिर ऐसा कौन है जो मुझसे विमुख हो?

(गाती है)

(राग काफी, धनाश्री का मेल, ताल धमार)

मदवा पीले पागल जीवन बीत्यौ जात।
बिनु मद जगत सार कछु नाहीं मान हमारी बात ।।
पी प्याला छक-छक आनंद से नितहि सांझ और प्रात।
झूमत चल डगमगी चाल से मारि लाज को लात।।
हाथी मच्छड़, सूरज जुगुनू जाके पिए लखात।
ऐसी सिद्धि छोड़ि मन मूरख काहे ठोकर खात ।।

(राजा को देखकर) महाराज! कहिए क्या हुक्म है?

भारतदु. : हमने बहुत से अपने वीर हिंदुस्तान में भेजे हैं। परंतु मुझको तुमसे जितनी आशा है उतनी और किसी से नहीं है। जरा तुम भी हिंदुस्तान की तरफ जाओ और हिंदुओं से समझो तो।

मदिरा : हिंदुओं के तो मैं मुद्दत से मुँहलगी हूँ, अब आपकी आज्ञा से और भी अपना जाल फैलाऊँगी और छोटे बड़े सबके गले का हार बन जाऊँगी। (जाती है)

(रंगशाला के दीपों में से अनेक बुझा दिए जाएँगे)

(अंधकार का प्रवेश)

(आंधी आने की भाँति शब्द सुनाई पड़ता है)

अंधकार : (गाता हुआ स्खलित नृत्य करता है)

(राग काफी)

जै जै कलियुग राज की, जै महामोह महराज की।
अटल छत्र सिर फिरत थाप जग मानत जाके काज की ।।
कलह अविद्या मोह मूढ़ता सबै नास के साज की।।

हमारा सृष्टि संहार कारक भगवान् तमोगुण जी से जन्म है। चोर, उलूक और लंपटों के हम एकमात्र जीवन हैं। पर्वतों की गुहा, शोकितों के नेत्र, मूर्खों के मस्तिष्क और खलों के चित्त में हमारा निवास है। हृदय के और प्रत्यक्ष, चारों नेत्र हमारे प्रताप से बेकाम हो जाते हैं। हमारे दो स्वरूप हैं, एक आध्यात्मिक और एक आधिभौतिक,

जो लोक में अज्ञान और अँधेरे के नाम से प्रसिद्ध हैं। सुनते हैं कि भारतवर्ष में भेजने को मुझे मेरे परम पूज्य मित्र दुर्दैव महाराज ने आज बुलाया है। चलें देखें क्या कहते हैं (आगे बढ़कर) महाराज की जय हो, कहिए क्या अनुमति है?

भारतदु. : आओ मित्र! तुम्हारे बिना तो सब सूना था। यद्यपि मैंने अपने बहुत से लोग भारत विजय को भेजे हैं पर तुम्हारे बिना सब निर्बल हैं। मुझको तुम्हारा बड़ा भरोसा है, अब तुमको भी वहाँ जाना होगा।

अंध. : आपके काम के वास्ते भारत क्या वस्तु है, कहिए मैं विलायत जाऊँ।

भारतदु. : नहीं, विलायत जाने का अभी समय नहीं, अभी वहाँ त्रेता, द्वापर है।

अंध. : नहीं, मैंने एक बात कही। भला जब तक वहाँ दुष्टा विद्या का प्राबल्य है, मैं वहाँ जाकर के क्या करूँगा? गैस और मैगनीशिया से मेरी प्रतिष्ठा भंग न हो जाएगी।

भारतदु. : हाँ, तो तुम हिंदुस्तान में जाओ और जिसमें हमारा हित हो सो करो। बस 'बहुत बुझाई तुमहिं का कहऊँ, परम चतुर मैं जानत अहऊँ।'

अंध : बहुत अच्छा, मैं चला। बस जाते ही देखिए क्या करता हूँ। (नेपथ्य में बैतालिक गान और गीत की समाप्ति में क्रम से पूर्ण अंधकार और पटाक्षेप)

निहचै भारत को अब नास।
जब महराज विमुख उनसों तुम निज मति करी प्रकास।।
अब कहुँ सरन तिन्हैं नहिं मिलिहै हहै सब बल चूर।
बुधि विद्या धन धान सबै अब तिनको मिलिहैं धूर।।
अब नहिं राम धर्म अर्जुन नहिं शाक्यसिंह अरु व्यास।
करिहै कौन पराक्रम इनमें को दैहे अबआस ।।
सेवाजी रनजीत सिंह हू अब नहिं बाकी जौन।
करिहैं वधू नाम भारत को अब तो नृप मौन ।।
वही उदैपुर जैपुर रीवाँ पन्ना आदिक राज।
परबस भए न सोच सकहिं कुछ करि निज बल बेकाज।।
अँगरेजहु को राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़।
स्वारथपर विभिन्न-मति-भूले हिंदू सब ह्नै मूढ़ ।।
जग के देस बढ़त बदि-बदि के सब बाजी जेहि काल।
ताहू समय रात इनकी है ऐसे ये बेहाल ।।
छोटे चित अति भीरु बुद्धि मन चंचल बिगत उछाह।
उदर-भरन-रत, ईसबिमुख सब भए प्रजा नरनाह।।
इनसों कुछ आस नहिं ये तो सब विधि बुधि-बल हीन।
बिना एकता-बुद्धि-कला के भए सबहि बिधि दीन।।
बोझ लादि कै पैर छानि कै निज सुख करहु प्रहार।
ये रासभ से कुछ नहिं कहिहैं मानहु छमा अगार।।
हित अनहित पशु पक्षी जाना' पै ये जानहिं नाहिं।
भूले रहत आपुने रँग मैं फँसे मूढ़ता माहिं ।।
जे न सुनहिं हित, भलो करहिं नहिं तिनसों आसा कौन।
डंका दै निज सैन साजि अब करहु उतै सब गौन।।

(जवनिका गिरती है)

पाँचवाँ अंक

स्थान-किताबखाना

(सात सभ्यों की एक छोटी सी कमेटी सभापति चक्करदार टोपी पहने,

चश्मा लगाए, छड़ी लिए छह सभ्यों में एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक अखबार हाथ में लिए एडिटर, एक कवि और दो देशी महाशय)

सभापति : (खड़े होकर) सभ्यगण! आज की कमेटी का मुख्य उदेश्य यह है कि भारतदुर्दैव की, सुना है कि हम लोगों पर चढ़ाई है। इस हेतु आप लोगों को उचित है कि मिलकर ऐसा उपाय सोचिए कि जिससे हम लोग इस भावी आपत्ति से बचें। जहाँ तक हो सके अपने देश की रक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य धर्म है। आशा है कि आप सब लोग अपनी अपनी अनुमति प्रगट करेंगे। (बैठ गए, करतलध्वनि)

बंगाली : (खड़े होकर) सभापति साहब जो बात बोला सो बहुत ठीक है। इसका पेशतर कि भारतदुर्दैव हम लोगों का शिर पर आ पड़े कोई उसके परिहार का उपाय सोचना अत्यंत आवश्यक है किंतु प्रश्न एई है जे हम लोग उसका दमन करने शाकता कि हमारा बोर्ज्जोबल के बाहर का बात है। क्यों नहीं शाकता? अलबत्त शकैगा, परंतु जो सब लोग एक मत्त होगा। (करतलध्वनि) देखो हमारा बंगाल में इसका अनेक उपाय साधन होते हैं। ब्रिटिश इंडियन ऐसोशिएशन लीग इत्यादि अनेक

शभा भी होते हैं। कोई थोड़ा बी बात होता हम लोग मिल के बड़ा गोल करते। गवर्नमेंट तो केवल गोलमाल शे भय खाता। और कोई तरह नहीं शोचता। ओ हुँआ आ अखबार वाला सब एक बार ऐसा शोर करता कि गवेर्नमेंट को अलबत्ता शुनने होता। किंतु हेंयाँ, हम देखते हैं कोई कुछ नहीं बोलता। आज शब आप सभ्य लोग एकत्र हैं, कुछ उपाय इसका अवश्य सोचना चाहिए। (उपवेशन)।

प. देशी : (धीरे से) यहीं, मगर जब तक कमेटी में हैं तभी तक। बाहर निकले कि फिर कुछ नहीं।

दू. देशी : धीरे से, क्यों भाई साहब, इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे?

एडिटर : (खड़े होकर) हम अपने प्राणपण से भारत दुर्दैव को हटाने को तैयार हैं। हमने पहिले भी इस विषय में एक बार अपने पत्र में लिखा था परंतु यहां तो कोई सुनता ही नहीं। अब जब सिर पर आफत आई सो आप लोग उपाय सोचने लगे। भला अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जो कुछ सोचना हो जल्द सोचिए। (उपवेशन)

कवि : (खड़े होकर) मुहम्मदशाह के भाँड़ों ने दुश्मन को फौज से बचने का एक बहुत उत्तम उपाय कहा था। उन्होंने बतलाया कि नादिरशाह के मुकाबले में फौज न भेजी जाए। जमना किनारे कनात खड़ी कर दी जायँ, कुछ लोग चूड़ी पहने कनात के पीछे खड़े रहें। जब फौज इस पार उतरने लगें, कनात के बाहर हाथ निकालकर उँगली चमकाकर कहें "मुए इधर न आइयो इधर जनाने हैं"। बस सब दुश्मन हट जाएँगे। यही उपाय भारतदुर्दैव से बचने को क्यों न किया जाय।

बंगाली : (खड़े होकर) अलबत, यह भी एक उपाय है किंतु असभ्यगण आकर जो स्त्री लोगों का विचार न करके सहसा कनात को आक्रमण करेगा तो? (उपवेशन)

एडि. : (खड़े होकर) हमने एक दूसरा उपाय सोचा है, एडूकेशन की एक सेना बनाई जाय। कमेटी की फौज। अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जाएँ। आप लोग क्या कहते हैं? (उपवेशन)

दू. देशी : मगर जो हाकिम लोग इससे नाराज हों तो? (उपवेशन)

बंगाली : हाकिम लोग काहे को नाराज होगा। हम लोग शदा चाहता कि अंगरेजों का राज्य उत्पन्न न हो, हम लोग केवल अपना बचाव करता। (उपवेशन)

महा. : परंतु इसके पूर्व यह होना अवश्य है कि गुप्त रीति से यह बात जाननी कि हाकिम लोग भारतदुर्दैव की सैन्य से मिल तो नहीं जायँगे।

दू. देशी : इस बात पर बहस करना ठीक नहीं। नाहक कहीं लेने के देने न पड़ें, अपना काम देखिए (उपवेशन और आप ही आप) हाँ, नहीं तो अभी कल ही झाड़बाजी होय।

महा. : तो सार्वजनिक सभा का स्थापन करना। कपड़ा बीनने की कल मँगानी। हिदुस्तानी कपड़ा पहिनना। यह भी सब उपाय हैं।

दू. देशी : (धीरे से)-बनात छोड़कर गंजी पहिरेंगे, हें हें।

एडि. : परंतु अब समय थोड़ा है जल्दी उपाय सोचना चाहिए।

कवि : अच्छा तो एक उपाय यह सोचो कि सब हिंदू मात्र अपना फैशन छोड़कर कोट पतलून इत्यादि पहिरें जिसमें सब दुर्दैव की फौज आवे तो हम लोगों को योरोपियन जानकर छोड़ दें।

प. देशी : पर रंग गोरा कहाँ से लावेंगे?

बंगाली : हमारा देश में भारत उद्धार नामक एक नाटक बना है। उसमें अंगरेजों को निकाल देने का जो उपाय लिखा, सोई हम लोग दुर्दैव का वास्ते काहे न अवलंबन करें। ओ लिखता पाँच जन बंगाली मिल के अंगरेजों को निकाल देगा। उसमें एक तो पिशान लेकर स्वेज का नहर पाट देगा। दूसरा बाँस काट काट के पवरी नामक जलयंत्रा विशेष बनावेगा। तीसरा उस जलयंत्र से अंगरेजों की आँख में धूर और पानी डालेगा।

महा. : नहीं नहीं, इस व्यर्थ की बात से क्या होना है। ऐसा उपाय करना जिससे फल सिद्धि हो।

प. देशी : (आप ही आप) हाय! यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिलकर एक चित हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो। क्रमशः सब कुछ हो जाऐगा।

एडि. : आप लोग नाहक इतना सोच करते हैं, हम ऐसे ऐसे आर्टिकिल लिखेंगे कि उसके देखते ही दुर्दैव भागेगा।

कवि : और हम ऐसी ही ऐसी कविता करेंगे।

प. देशी : पर उनके पढ़ने का और समझने का अभी संस्कार किसको है?

(नेपथ्य में से)

भागना मत, अभी मैं आती हूँ।

(सब डरके चौकन्ने से होकर इधर-उधर देखते हैं)

दू. देशी : (बहुत डरकर) बाबा रे, जब हम कमेटी में चले थे तब पहिले ही छींक हुई थी। अब क्या करें। (टेबुल के नीचे छिपने का उद्योग करता है)

(डिसलायलटी1 का प्रवेश)

सभापति : (आगे से ले आकर बड़े शिष्टाचार से) आप क्यों यहाँ तशरीफ लाई हैं? कुछ हम लोग सरकार के विरुद्ध किसी प्रकार की सम्मति करने को नहीं एकत्र हुए हैं। हम लोग अपने देश की भलाई करने को एकत्र हुए हैं।

डिसलायलटी: नहीं, नहीं, तुम सब सरकार के विरुद्ध एकत्र हुए हो, हम तुमको पकडेंगे।

बंगाली : (आगे बढ़कर क्रोध से) काहे को पकड़ेगा, कानून कोई वस्तु नहीं है। सरकार के विरुद्ध कौन बात हम लोग बोला? व्यर्थ का विभीषिका!

डिस. : हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है। कवि वचन सुधा नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी? फिर क्यों उसे पकड़ने को हम भेजे गए? हम लाचार हैं।

दू. देशी : (टेबुल के नीचे से रोकर) हम नहीं, हम नहीं, तमाशा देखने आए थे।

महा. : हाय हाय! यहाँ के लोग बड़े भीरु और कापुरूष हैं। इसमें भय की कौन बात है! कानूनी है।

सभा. : तो पकड़ने का आपको किस कानून से अधिकार है?

डिस. : इँगलिश पालिसी नामक ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से।

महा. : परंतु तुम?

दू. देशी : (रोकर) हाय हाय! भटवा तुम कहता है अब मरे।

महा. : पकड़ नही सकतीं, हमको भी दो हाथ दो पैर है। चलो हम लोग तुम्हारे संग चलते हैं, सवाल जवाब करेंगे।

बंगाली : हाँ चलो, ओ का बात-पकड़ने नहीं शेकता।

सभा. : (स्वगत) चेयरमैन होने से पहिले हमीं को उत्तर देना पड़ेगा, इसी से किसी बात में हम अगुआ नहीं होते।

डिस : अच्छा चलो। (सब चलने की चेष्टा करते हैं)

(जवनिका गिरती है)

छठा अंक

स्थान-गंभीर वन का मध्यभाग

(भारत एक वृक्ष के नीचे अचेत पड़ा है)

(भारतभाग्य का प्रवेश)

भारतभाग्य : (गाता हुआ-राग चौती गौरी)

जागो-जागो रे भाई।

सोअत निसि बैस गँवाई। जागों-जागो रे भाई ।।
निसि की कौन कहै दिन बीत्यो काल राति चलि आई।
देखि परत नहि हित अनहित कछु परे बैरि बस जाई ।।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई।
अबहुँ चेति, पकारि राखो किन जो कुछ बची बड़ाई ।।
फिर पछिताए कुछ नहिं ह्नै है रहि जैहौ मुँह बाई।
जागो जागो रे भाई ।।

(भारत को जगाता है और भारत जब नहीं जागता तब अनेक यत्न से फिर जगाता है, अंत में हारकर उदास होकर)

हाय! भारत को आज क्या हो गया है? क्या नि:स्संदेह परमेश्वर इससे ऐसा ही रूठा है? हाय क्या अब भारत के फिर वे दिन न आवेंगे? हाय यह वही भारत है जो किसी समय सारी पृथ्वी का शिरोमणि गिना जाता था?

भारत के भुजबल जग रक्षित।
भारतविद्या लहि जग सिच्छित ।।
भारततेज जगत बिस्तारा।
भारतभय कंपत संसारा ।।
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए।

थर-थर कंपत नृप डरपाए ।।
जाके जयकी उज्ज्वल गाथा।
गावत सब महि मंगल साथा ।।
भारतकिरिन जगत उँजियारा।
भारतजीव जिअत संसारा ।।
भारतवेद कथा इतिहासा।
भारत वेदप्रथा परकासा ।।
फिनिक मिसिर सीरीय युनाना।
भे पंडित लहि भारत दाना ।।
रह्यौ रुधिर जब आरज सीसा।
ज्वलित अनल समान अवनीसा ।।
साहस बल इन सम कोउ नाहीं।
तबै रह्यौ महिमंडल माहीं ।।
कहा करी तकसीर तिहारी।
रे बिधि रुष्ट याहि की बारी ।।
सबै सुखी जग के नर नारी।
रे विधना भारत हि दुखारी ।।
हाय रोम तू अति बड़भागी।
बर्बर तोहि नास्यों जय लागी ।।
तोड़े कीरतिथंभ अनेकन।
ढाहे गढ़ बहु करि प्रण टेकन ।।
मंदिर महलनि तोरि गिराए।
सबै चिह्न तुव धूरि मिलाए ।।
कछु न बची तुब भूमि निसानी।
सो बरु मेरे मन अति मानी ।।
भारत भाग न जात निहारे।
थाप्यो पग ता सीस उधारे ।।
तोरो दुर्गन महल ढहायो।
तिनहीं में निज गेह बनायो ।।
ते कलंक सब भारत केरे।
ठाढ़े अजहुँ लखो घनेरे ।।
काशी प्राग अयोध्या नगरी।
दीन रूप सम ठाढ़ी सगरी ।।
चंडालहु जेहि निरखि घिनाई।
रही सबै भुव मुँह मसि लाई ।।
हाय पंचनद हा पानीपत।
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत ।।
हाय चितौर निलज तू भारी।
अजहुँ खरो भारतहि मंझारी ।।
जा दिन तुब अधिकार नसायो।
सो दिन क्यों नहिं धरनि समायो ।।
रह्यो कलंक न भारत नामा।
क्यों रे तू बारानसि धामा ।।
सब तजि कै भजि कै दुखभारो।
अजहुँ बसत करि भुव मुख कारो ।।
अरे अग्रवन तीरथ राजा।
तुमहुँ बचे अबलौं तजि लाजा ।।
पापिनि सरजू नाम धराई।
अजहुँ बहत अवधतट जाई ।।
तुम में जल नहिं जमुना गंगा।
बढ़हु वेग करि तरल तरंगा ।।
धोवहु यह कलंक की रासी।
बोरहु किन झट मथुरा कासी ।।
कुस कन्नौज अंग अरु वंगहि।
बोरहु किन निज कठिन तरंगहि ।।
बोरहु भारत भूमि सबेरे।
मिटै करक जिय की तब मेरे ।।
अहो भयानक भ्राता सागर।
तुम तरंगनिधि अतिबल आगर ।।
बोरे बहु गिरी बन अस्थाना।
पै बिसरे भारत हित जाना ।।
बढ़हु न बेगि धाई क्यों भाई।
देहु भारत भुव तुरत डुबाई ।।
घेरि छिपावहु विंध्य हिमालय।
करहु सफल भीतर तुम लय ।।
धोवहु भारत अपजस पंका।
मेटहु भारतभूमि कलंका ।।
हाय! यहीं के लोग किसी काल में जगन्मान्य थे।
जेहि छिन बलभारे हे सबै तेग धारे।
तब सब जग धाई फेरते हे दुहाई ।।
जग सिर पग धारे धावते रोस भारे।
बिपुल अवनि जीती पालते राजनीती ।।
जग इन बल काँपै देखिकै चंड दापै।
सोइ यह पिय मेरे ह्नै रहे आज चेरे ।।
ये कृष्ण बरन जब मधुर तान।
करते अमृतोपम वेद गान ।।
सब मोहन सब नर नारि वृंद।
सुनि मधुर वरन सज्जित सुछंद ।।

जग के सबही जन धारि स्वाद।
सुनते इन्हीं को बीन नाद ।।
इनके गुन होतो सबहि चौन।
इनहीं कुल नारद तानसैन ।।
इनहीं के क्रोध किए प्रकास।
सब काँपत भूमंडल अकास ।।
इन्हीं के हुंकृति शब्द घोर।
गिरि काँपत हे सुनि चारु ओर ।।
जब लेत रहे कर में कृपान।
इनहीं कहँ हो जग तृन समान ।।
सुनि के रनबाजन खेत माहिं।
इनहीं कहँ हो जिय सक नाहिं ।।
याही भुव महँ होत है हीरक आम कपास।
इतही हिमगिरि गंगाजल काव्य गीत परकास ।।
जाबाली जैमिनि गरग पातंजलि सुकदेव।
रहे भारतहि अंक में कबहि सबै भुवदेव ।।
याही भारत मध्य में रहे कृष्ण मुनि व्यास।
जिनके भारतगान सों भारतबदन प्रकास ।।
याही भारत में रहे कपिल सूत दुरवास।
याही भारत में भए शाक्य सिंह संन्यास ।।
याही भारत में भए मनु भृगु आदिक होय।
तब तिनसी जग में रह्यो घृना करत नहि कोय ।।
जास काव्य सों जगत मधि अब ल ऊँचो सीस।
जासु राज बल धर्म की तृषा करहिं अवनीस ।।
साई व्यास अरु राम के बंस सबै संतान।
ये मेरे भारत भरे सोई गुन रूप समान ।।
सोइ बंस रुधिर वही सोई मन बिस्वास।
वही वासना चित वही आसय वही विलास ।।
कोटि-कोटि ऋषि पुन्य तन कोटि-कोटि अति सूर।
कोटि कोटि बुध मधुर कवि मिले यहाँ की धूर ।।
सोई भारत की आज यह भई दुरदसा हाय।
कहा करे कित जायँ नहिं सूझत कछु उपाय ।।

(भारत को फिर उठाने की अनेक चेष्टा करके उपाय निष्फल होने पर रोकर)

हा! भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब इसके उठने की आशा नहीं। सच है, जो जान बूझकर सोता है उसे कौन जगा सकेगा? हा दैव! तेरे विचित्र चरित्र हैं, जो कल राज करता था वह आज जूते में टाँका उधार लगवाता है। कल जो हाथी पर सवार फिरते थे आज नंगे पाँव बन-बन की धूल उड़ाते फिरते हैं। कल जिनके घर लड़के लड़कियों के कोलाहल से कान नहीं दिया जाता था आज उसका नाम लेवा और पानी देवा कोई नहीं बचा और कल जो घर अन्न धन पूत लक्ष्मी हर तरह से भरे थे आज उन घरों में तूने दिया बालने वाला भी नहीं छोड़ा।

हा! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट, प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार में ऊँचा है, उस भारत की यह दुर्दशा! जिस भारतवर्ष के राजा चंद्रगुप्त और अशोक का शासन रोम रूस तक माना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा! जिस भारत में राम, युधिष्ठर, नल, हरिश्चंद्र, रंतिदेव, शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हैं उसकी यह दशा! हाय, भारत भैया, उठो! देखो विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है। अब सोने का समय नहीं है। अंगरेज का राज्य पाकर भी न जगे तो कब जागोगे। मूर्खों के प्रचंड शासन के दिन गए, अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना। विद्या की चरचा फैल चली, सबको सब कुछ कहने सुनने का अधिकार मिला, देश विदेश से नई विद्या और कारीगरी आई। तुमको उस पर भी वही सीधी बातें, भाँग के गोले, ग्रामगीत, वही बाल्यविवाह, भूत प्रेत की पूजा जन्मपत्री की विधि! वही थोड़े में संतोष, गप हाँकने में प्रीती और सत्यानाशी चालें! हाय अब भी भारत की यह दुर्दशा! अरे अब क्या चिता पर सम्हलेगा। भारत भाई! उठो, देखो अब दुख नहीं सहा जाता, अरे कब तक बेसुध रहोगे? उठो, देखो, तुम्हारी संतानों का नाश हो गया। छिन्न-छिन्न होकर सब नरक की यातना भोगते हैं, उस पर भी नहीं चेतते। हाय! मुझसे तो अब यह दशा नहीं देखी जाती। प्यारे जागो। (जगाकर और नाड़ी देखकर) हाय इसे तो बड़ा ही ज्वर चढ़ा है! किसी तरह होश में नहीं आता। हा भारत! तेरी क्या दशा हो गई! हे करुणासागर भगवान् इधर भी दृष्टि कर। हे भगवती राज-राजेश्वरी, इसका हाथ पकड़ो। (रोकर) अरे कोई नहीं जो इस समय अवलंब दे। हा! अब मैं जी के क्या करूँगा! जब भारत ऐसा मेरा मित्र इस दुर्दशा में पड़ा है और उसका उद्धार नहीं कर सकता, तो मेरे जीने पर धिक्कार है! जिस भारत का मेरे साथ अब तक इतना

संबध था उसकी ऐसी दशा देखकर भी मैं जीता रहूँ तो बड़ा कृतघ्न हूँ! (रोता है) हा विधाता, तुझे यही करना था! (आतंक से) छि: छि: इतना क्लैव्य क्यों? इस समय यह अधीरजपना! बस, अब धैर्य! (कमर से कटार निकालकर) भाई भारत! मैं तुम्हारे ऋण से छूटता हूँ! मुझसे वीरों का कर्म नहीं हो सकता। इसी से कातर की भाँति प्राण देकर उऋण होता हूँ। (ऊपर हाथ उठाकर) हे सर्वातर्यामी! हे परमेश्वर! जन्म-जन्म मुझे भारत सा भाई मिले। जन्म-जन्म गंगा जमुना के किनारे मेरा निवास हो।

(भारत का मुँह चूमकर और गले लगाकर)

भैया, मिल लो, अब मैं बिदा होता हूँ। भैया, हाथ क्यों नहीं उठाते? मैं ऐसा बुरा हो गया कि जन्म भर के वास्ते मैं बिदा होता हूँ तब भी ललककर मुझसे नहीं मिलते। मैं ऐसा ही अभागा हूँ तो ऐसे अभागे जीवन ही से क्या, बस यह लो।

(कटार का छाती में आघात और साथ ही जवनिका पतन)

❑❑❑

पराया लड़का

उज्ज्वला केलकर

अनुवाद– डॉ. सुशीला दुबे

"अजी, आज पिंटू का पत्र आया है।"

"है, वह ठीक तो है ना?" शरद ने औपचारिकता निभाते हुए पूछा। "हाँ, अभी दिखाती हूँ।

"नहीं, रहने दो। मुझे जल्दी जाना है। देर हो रही है।"

"छमाही परीक्षा में वह प्रथम स्थान पर आया है। और हाँ, शारदोत्सव में चित्रकला और कहानी सुनाने की प्रतियोगिताएँ हुई थी। उसमें भी उसे प्रथम पारितोषिक मिले हैं।"

"ठीक है।" शरद की ठंडी प्रतिक्रिया। कोई उत्सुकता नहीं। उसका यह रवैया शुभा को चुभता है। उसी वक्त छोटू बाहर से दौड़ता आया। शरद भोजन कर रहा था। मिट्टी सने पैर लिए छोटू शरद के गले लिपटकर उसकी पीठ पर चढ़ने लगा।

"अरे, अरे, कितनी शरारत करते हो! पापा के कपड़े गंदे हो जाएँगे।" शुभा ने उसे डांटा। "रहने दो" छोटू को आगे खींचकर दूध, केला और रोटी खिलाया।

"पापा, मैं आपको नाव बनाकर दिखाऊँ? नितिन को नाव बनाना नहीं आता।" छोटू बैठक में बसना फैलाकर बैठ जाता है। शरद भोजन करके सुपारी चुभलाते बाहर आता है।

"पापा आप मुझे कागज का खरगोश और मेंढक बनाकर दीजिए ना! "छोटू मेंढक की तरह कूदता है।"

"अभी मुझे जल्दी जाना है, शाम को बना दूँगा।"

"नहीं, मुझे अभी चाहिए। खरगोश और मेंढक"

"अरे, पापा को जल्दी जाना है। उन्हें परेशान मत करो।"

"लेकिन मुझे अभी चाहिए ऊँ----ऊँ----"

"ठीक है, ठीक है। रोना बंद करो मैं अभी तुम्हे खरगोश और मेंढक बनाकर देता हूँ।"

छोटू को बहला-फुसलाकर आधे घंटे बाद शरद बाहर जाता है। "हाँ! उसे जल्दी जाना था। पिंटू का पत्र पढ़ने की फुरसत नहीं थी।" शुभा मन ही मन भुनभुनानी, कुढ़ती रही। ऐसे भी वह भला पिंटू का पत्र क्यों पढ़ेगा? पिंटू से उसका संबंध ही क्या है? पिंटू सिर्फ मेरा है। अकेली का! मेरे अपने तो सब रिश्तेदार हैं लेकिन पिंटू का मेरे सिवा कोई नहीं है। टेबल पर पड़े पत्र पर उसकी नजर जाती है। पत्र उठाकर फिर से पढ़ने लगती है।

माँ! यह स्कूल बहुत अच्छा है। टीचर भी बहुत अच्छे हैं। लेकिन माँ रात में सोते समय तुम्हारी याद आती है और मुझे रोना आता है। तुम्हारी गोद में सोने का मन करता है। मेरा दोस्त सुरेश मुझे रोतड़ा कहता है। शायद उसकी माँ तुम्हारे जैसी अच्छी नहीं होगी। इसलिए उसे रोना नहीं आता। अब मैं भी रोऊँगा नहीं। खूब पढ़ूँगा। प्रथम क्रमांक लाऊँगा। तब तुम बहुत खुश होगी, है ना माँ? और हाँ, छुट्टियों में मैं घर आऊँगा तब छोटू को बहुत से चित्र बनाकर दूँगा। उसने मेरा बॉल लिया तो भी मैं उसके साथ झगडा नहीं करूँगा।

शुभा ने उस पत्र पर ऐसे होंठ रखे मानो उसके गाल चूम रही हो। "मेरा राजा बेटा! कितना अच्छा लिखा है। बड़े आदमी जैसा, समझदारी से!"

शरद और शुभा की गृहस्थी खुशहाल थी। अच्छा मकान, सुघड, साफ-सुथरा फर्नीचर! बस एक ही कमी थी। घर बिखेरने वाला कोई नहीं था। यह गम कलेजे में छिपाए, नन्हें-नन्हें कदमों की आहट पाने के इंतजार में दस साल गुजर गए थे। डॉक्टर की सलाह ली थी। मन्नतें माँगी थी। लेकिन दिल को तसल्ली मिलने के कोई आसार नजर नहीं आए थे।

एक दिन हिम्मत करके शुभा ने शरद से कहा "क्यों न हम अनाथ आश्रम से छोटा बच्चा ले आएँ?

"इसमें चौंकने वाली कौन सी बात है? मुझे बच्चों का शोक है।" "लेकिन ऐसी भी क्या जल्दी? हम अभी बूढ़े तो नहीं हो गए और डॉक्टर ने कहा है ना कि हम नॉर्मल है। डॉ. जोशी ने तुम्हे सब समझाया है ना?"

"वो तो ठीक है लेकिन कितने दिन इंतजार करेंगे?

"ऐसे भी कई लोग हैं। जिन्हें शादी के पंद्रह बीस साल बाद बच्चे हुए हैं। अपनी पद्मा दीदी, तुम्हारी फुफेरी बहन नीरू, देसाई जी की शांता।

"लेकिन हमने ऐसे भी लोग देखे हैं, जिन्हें संतान नहीं है।" इंतजार करने कराने में ऊब गई हूँ और कुछ साल इंतजार करने पर भी बच्चा नहीं हुआ तो फिर गोद लेना तब तक अपनी उम्र बढ़ जाएगी। उस बच्चे की जिम्मेदारी हम निभा नहीं पाएँगे। बच्चा गोद लेने की यही सही उम्र है। निवृत्त होने से पहले उस बच्चे की जिम्मेदारी पूरी होनी चाहिए।

वह सब तुम जानो। लेकिन फिर से एक बार सोच लो। बाद में पछताना ना पढ़े।"

"भला पछताना क्यों पड़ेगा?"

"यूँही, हर रोज नई शिकायत होगी। उसने ऐसा कहा उसने वैसा।"

"लोग क्या कहेंगे इसकी मुझे चिंता नहीं है। लेकिन तुम तो मेरा साथ दोगे ना? तहेदिल से!

"वह तो मैं नहीं बता सकता। लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि मैं उसे किसी चीज की कमी नहीं होने दूँगा।"

शरद के आश्वासन से शुभा आश्वस्त हुई। अपनी जिंदगी की एकमात्र कमी अब दूर होगी। इस ख्याल से वह खुश हुई थी। एक ज़िंदगी अपनी नजरों के सामने खिलेगी। उसकी बाल लीलाएँ देखते-देखते हम अपनी सारी परेशानियाँ, थकान, चिंता भूल जाएँगे। इस कामना से संतोष की एक परत उसके मन पर फैलती गई थी।

तय हुआ कि शरद पंद्रह दिन की छुट्टी लेगा और दोनो मिलकर अलग-अलग अनाथ आश्रम में जाकर एक साल का छोटा-सा बच्चा ले आएँगे।

"क्यों न हम बिटिया ले आएँ?"

"वह भला किसलिए? नाहक दहेज का बोझ ढोना पड़ेगा।"

"अजी, लड़की की एक बार शादी कर दी कि अपनी जिम्मेदारी पूरी हो जाती है।"

"देखो, हम भले ही उसे हमारी बिटियाँ कहेंगे लेकिन समाज यह बात मानेगा, इसका क्या भरोसा? ना भई ना! बाद में वह प्रॉब्लम नहीं चाहिए।"

"आप ऐसा क्यों सोच रहे हो।"

"शुभा, तुम समझती हो उतना यह मामला सीधा-साधा नहीं है। अपने समाज ने इस बात को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया है। अनाथ आश्रम से लाई हुई लड़की नाजायज़ औलाद ही कहलाएगी। फिर वह कितनी भी अच्छी क्यो न हो। अच्छे खानदान में उसका स्वीकार होगा इसका क्या भरोसा?"

"अजी, तब तक जमाना बदल जाऐगा। लोगों का नजरिया बदलेगा।"

"शायद बदलेगा भी। पर भरोसा नहीं। तुम जैसा सोच रही हो वैसा अगर नहीं हुआ तो? तुम्हे अनचाहा समझौता करना पड़ेगा। शायद लड़की की शादी होगी ही नहीं, फिर तुम्हे परेशानी होगी।"

"ठीक है,फिर हम लडका ही पसंद कर लेते हैं।"

शुभा खुश थी। उसने शरद को तो आसानी से सहमत से कर लिया था बाकी लोगों के बारे में वक्त आएगा तब सोचेंगे। शुभा ने मन ही मन कहा।

दो चार दिन में जाना है। शुभा चिंतित है। लोग क्या कहेंगे? कहेंगे भी तो बाद में चुप हो जाएँगे। कुछ समय बाद भूल भी जाएँगे कि वह हमारा बेटा नहीं है। मैं उसे अच्छे संस्कार दूँगी। खूब पढाऊँगी। बड़ा आदमी बनाऊँगी। उसे किसी बात की कमी नहीं होने दूंगी। शुभा सपनों में खो गई थी। और अचानक उसकी बड़ी ननद, जेठानी और मौसी आ गई थी।

"अरी, तुम दोनों ने क्या पागलपन शुरू किया है?"

"क्यों? क्या हुआ मौसी?"

"सुना है, तुम अनाथ आश्रम से बच्चा लानेवाली हो। कल शाम को शरद आया था। वह बता रहा था।"

"हाँ, यह सही है।"

"यह तुम क्या कर रही हो शुभा? अरी, वो बच्चे कैसे होते हैं, तुम जानती हो ना? फिर जानबूझकर क्यों परेशानी मोल ले रही हो?"

"बच्चे किसी के भी हो, कैसे भी हो लेकिन इसमें उन मासूमों का क्या दोष है? उनपर जैसे संस्कार होंगे, वे वैसे ही होंगे। मेरा लाया हुआ बच्चा, मेरे घर में रहकर, मेरे संस्कारों में पल बढ़कर बुरा नहीं होगा। वह उतना ही अच्छा होगा जितना मेरा जन्म दिया बच्चा होगा।"

"फिर भी होगा तो वह पराया खून। क्या उसके लिए अपने बच्चे जैसा प्यार तुम्हारे मन में उमड़ेगा?"

"क्यों नहीं? मौसी जी, घर में कुत्ता, बिल्ली पालते हैं, तो उनके लिए भी अपनापन उमड़ता है। यह तो हँसता खेलता बच्चा अपने सामने बड़ा होता देखकर प्यार क्यों नहीं होगा भला?"

"देखो भई! हम लोग देखते हैं, दुनिया में हररोज नए-नए कांड होते हैं। अपने जाए भी माँ-बाप का ख्याल नहीं रखते। यह तो फिर भी पराया।"

"दीदी हम हमारे शौक के लिए बच्चा गोद लेने वाले हैं। बुढ़ापे के सहारे के लिए नहीं। और अभी आपने कहा कि अपने जाए भी ख्याल नहीं रखते, फिर हमारा लाया हुआ बच्चा हमारे बुढ़ापे का सहारा बने, ऐसी अपेक्षा हम क्यों करे?"

"तुम बातों में हारने वाली नहीं हो।"

"ऐसी बात नहीं है जेठानी जी। लेकिन आप ही बताइए, क्या मैंने कुछ गलत कहा? और सच कहूँ तो, मुझे बच्चों का बहुत शौक है" शुभा की आँखें भर आई।

"और हाँ, अगर तुमने बच्चा गोद ले लिया और उसके बाद तुम्हारा बच्चा पैदा हुआ तो?" अभी तुम्हारी उम्र ज्यादा नहीं है। डॉक्टर ने भी कहा है कि तुम्हे निराश होने का कारण नहीं है।

"पिछले सात-आठ साल से यह विचार मेरे मन में आ रहा था। लेकिन डॉक्टर के कहने पर मैंने अब तक इंतजार किया। अब अनाथ आश्रम से बच्चा लाने के बाद अगर मेरा बच्चा पैदा हुआ तो अच्छा ही है। मुझे आसानी से दो बच्चे मिल जाएँगे। मेरी सहेलियों के दो-दो, तीन-तीन बच्चे हैं। "तुम बहुत जिद्दी हो। लेकिन बाद में अगर कोई झमेला हुआ तो तुम ही कहोगी कि उस समय आपने हमें क्यों नहीं समझाया? इसीलिए बुजुर्ग की हैंसियत से तुम्हे समझाने आए थे।"

वे तीनों नाराज होकर चली गईं थी। उनकी परेशानी शुभा समझ रही थी, लेकिन उनके विचारों से वह सहमत नहीं थी।

शरद शुभा ने पूना और मुंबई के कई आश्रम में जाकर बच्चे देखे। पूना के महिलाश्रम में एक साल के जयंत को देखकर, पता नहीं क्यों शुभा को उसके लिए अपनापन महसूस हुआ था। वैसे वह बीमार लग रहा था। हाथ, पाँव बारीक, और पेट बड़ा हो गया था। चेहरा फीका था। चेहरे पर रौनक नहीं थी। शरद नाराज हुआ था। अनाथ आश्रम के सभी बच्चे बेरौनक लग रहे थे।

शरद ने कहा, "शुभा और कुछ दिन रुक जाते हैं। कोई अच्छा सा बच्चा मिला तो ले लेंगे।"

"अपना बच्चा कैसा हो, इसकी च्वॉइस माँ को होती ही नहीं। अपना बच्चा अगर ऐसा बीमार होता तो क्या हम उसे छोड़ देते?" शरद चुप हो गया था। डॉक्टर और आश्रम के व्यवस्थापक ने समझाया था। वह बिलकुल नार्मल है। अच्छा माहौल और प्यार-दुलार मिलेगा तो जल्दी ठीक हो जाएगा। फिर शरद ने भी कोई आपत्ति नहीं जताई। दोनों जयंत को लेकर घर आ गए।

जयंत को घर लाए एक साल हो गया था सब उसे पिंटू कहते थे। पिंटू अब इतना सुधर गया था कि पहचाना नहीं जाता था। अब मोटा हो गया था। चेहरे पर रौनक आ गई थी। उसकी बाललीलाएँ देखते हुए रात दिन पूरे नहीं पड़ते थे। दिनभर की थकान मिट जाती थी। शरद तो उसे पलभर भी आँख से ओझल होने नहीं देता था। कभी-कभी शुभा कहती "इतने लाड मत लड़ावो वरना सर पर चढ़ बैठेगा।"

"बैठने दो मुझे भारी नहीं पड़ेगा।-"

सब कुछ ठीक चल रहा था। शुभा सोचती थी, सुख और क्या हो सकता है। अचानक एक दिन शुभा को एक शक हुआ। उसका सर चकराने लगा था। दिन व दिन वह बेचैन रहने लगी थी। और भी छोटी-मोटी शिकायतें आने लगी थी। इन सब की वजह जब उसकी समझ में आई तब पहले तो उसकी खुशी का ठिकाना ना रहा था। यह मेरे पिंटू के आने का शगुन है। वह सोचने लगी थी। एक दिन उसने शरद को बताया था "सुनिए, पिंटू अब भैया बनने वाला है।"

"यह तुम क्या कह रही हो?" शरद असमंजस में पड़ गया था।।

"अजी, ऐसे क्या देख रहे हो? "फिर उसने उसकी बेचैनी का कारण बताया था। शरद ने खुशी से उसका हाथ थाम लिया और कहा "देखो, मैंने कहा था ना!"

"हाँ, लेकिन अब हमें बिटिया चाहिए!"

"नहीं, बेटा ही चाहिए। मेरा, मेरा अपना खून, मेरा नाम चलाने वाला!"

"तो फिर पिंटू किसका नाम चलाने वाला है।?"

"वह भले ही मेरा नाम चलाए पर है तो वह पराया।"

जिसे अभी देखा भी नहीं, जो अभी अस्तित्व में आया है, उसके लिए इतनी आत्मीयता! और इतने दिन से जिसे अपना बना लिया था, वह पलभर में पराया हो गया? अब आगे क्या होगा? शुभा घबरा गई थी। वे क्या करेंगे? क्या कहेंगे? अभी वह घर में सब का प्यारा-दुलारा है। जेठानी, ननद जो अनाथ आश्रम से बच्चा मत लाओ कहती थी। वे भी अब उसे प्यार करने लगी थी। अब आगे क्या? इससे तो मैं गर्भवती न होती तो अच्छा होता। उसके दिल में उल्टे-सीधे विचार आने लगे। वो तनाव में रहने लगी। "हे प्रभु, तुम्हारी यह देन असमय क्यों? अब देना ही है तो मुझे बिटिया दे दो।" भगवान पर शुभा की आस्था नहीं थी। फिर भी मन की इस कमजोर हालत में वह भगवान से दया की याचना करने लगी थी। सिर्फ शुभा चाहती थी कि बिटिया हो! बाकी सब लोग चाहते थे कि बेटा ही हो। कुलदीपक खानदान का नाम रोशन करने वाला। शुभा की सासू माँ ने मन्नतें माँगी कि शुभा को बेटा ही हो।

भगवान ने भी शरद के पक्ष में फैसला दिया। बेटा ही हुआ। शरद जैसा सांवला, सीधी नाक, घुंघराले बाल, बड़ी-बड़ी आँखें। मिलिंद सब का दुलारा हुआ। अपना छोटा भाई देखकर पिंटू भी बहुत खुश हुआ था। वह उसके हाथ, पाँव, गाल पर हाथ फेरना चाहता था। लेकिन वह जब भी बच्चे के पास जाता घर का कोई ना कोई सदस्य उसे झटके से खींच लेता "बच्चे के करीब मत जाओ। तुम उसे कुछ कर दोगे!"

"माँ देखो न!" कहते हुए वह शुभा से लिपट जाता। उसी समय कोई कहता– माँ अब तुम्हारी नहीं है, बच्चे की है।" कभी वह शुभा की गोद में लेट जाता, तो कोई उसे कहता, "अरे गोद में क्या पड़ा है घोड़े, नीचे उतर।" मिलिंद पैदा हुआ तब से सब लोग उसे दुलारने लगे थे। पिंटू को गुस्सा आता था। वह सोचता "बच्चा कितना पागल है। बिछौने में ही शी-शू करता है। हमेशा रोता रहता है। फिर भी दादी और बुआ उसकी सराहना करती हैं। वह गुस्से से तनतनाता बाहर चला जाता था। थोड़ी देर में सब कुछ भूलकर घर में आ जाता था। बच्चा हँसता तब उसे बड़ा मजा आता था। उसे, बच्चे को गोद में लेकर बैठना, उसे झूला झुलाना अच्छा लगता। फिर वह शुभा के पास जिद करता "बच्चे को मेरे पास दो न माँ।" शुभा अगर बच्चे को उसके पास देती तो सासू माँ चीखती "अरी उसके पास मत दो वह उसे गिरा देगा। ए अच्छे से पकड़ रे उसे। बुद्दू!" पिंटू नाराज होता शुभा बेचैन होती। घर के लोग इस प्रकार की बातें जाने-अनजाने करते हैं। या उनके मन में परायापन है? फिर वह सोचती बस, अब थोड़े ही दिन यहाँ रहना है। हम अपने घर चले जाएँगे तब सब ठीक हो जाएगा।

समय गुजरता रहा। दोनो भाई बड़े होते रहे। पिंटू मिलिंद को छोटू कहता था। सब लोग उसे छोटू ही कहने लगे थे। पिंटू चौथी कक्षा में गया था और छोटू पहली कक्षा में। दोनों एक-साथ खेलते-झगड़ते बड़े हो रहे थे। लेकिन कुछ तो बिगड़ गया था, घर में और बाहर भी। यह बिगड़ी कैसे संवारे इस चिंता से शुभा दुर्बल होती जा रही थी। अब तक सब ठीक चल रहा था। क्योंकि बिगड़ने का एहसास केवल शुभा को ही था। जो भी परेशानी हो रही थी उस अकेली को हो रही थी। अब शुभा के ध्यान में आने लगा कि पिंटू जैसे बड़ा

होता जा रहा है उसकी समझ में आ रहा है। लोगों के उसके साथ के बर्ताव से वह दुखी हुआ तो? इस चिंता से उसका सुख चैन चला गया था।

दीपावली में भैया दूज के दिन बुआ जी ने सबको खाने पर बुलाया था। वैसे वह हर साल बुलाती हैं। अपने भतीजों को कुछ न कुछ उपहार देती हैं। इस साल भी उसने सबको कुछ ना कुछ दिया। किसी को क्रिकेट का बल्ला-बॉल, किसी शर्टपीस, छोटू को नया सूट और पिंटू को बॉलपेन! पिंटू को बहुत बुरा लगा। "मेरे लिए नया सूट क्यों नहीं? मुझे इतनी कम कीमत की भेंट क्यों?" उसने बॉलपेन फेंक दिया। पाँव पटकते आंगन में चला गया। खाना खाने भी नहीं आया। किसी ने कहा, "बैठे रहने दो बाहर ही। आजकल बहुत जिद्दी हो गया है।" शुभा बाहर जाकर उसे समझाने लगी। "पिंटू, तुम अच्छे बच्चे हो ना?" ऐसा लोगों से कुछ मांगते है क्या? "हम शाम को तुम्हारे लिए नए कपड़े ले आएँगे।"

"लेकिन बुआ जी ने क्यों नहीं दिए? छोटू को दिए? बाकी सबको अच्छी-अच्छी चीजें दी। और बुआ जी कोई लोग थोड़े ही हैं।"

पिंटू का कहना सही था। बड़े ही ऐसा बर्ताव करने लगे तो उसे कैसे समझाएँ? लेकिन कुछ तो कहना पड़ेगा। समझाना जरूरी था "अरे वह छोटा है ना?"

"होगा छोटा, तो क्या हुआ? सब लोग उसे ही प्यार करते हैं। दादी उसे खाने की चीजे देती है। चाची उसे घुमाने ले जाती हैं। माँ मैं छोटा क्यों नहीं हुआ?"

अब कैसे समझाए इसे? यह भेदभाव छोटे-बड़े के लिए नहीं था। इन लोगों का पिंटू से संबंध नहीं था। वह इनके खानदान का नहीं था। पिंटू का संबंध शुभा से था। उसे अनाथ आश्रम से लाने से पहले ही सबने कहा था, "तुम्हारा तुम देख लो, हमारा उससे कोई संबंध नहीं होगा।" लेकिन अनाथ आश्रम से लाने के बाद सबको उसके बारे में ममता उमड़ आई थी। वह अपना लगने लगा था। मिलिंद होने तक। मिलिंद आया और सबको लगा, शुभा ने बहुत जल्दी की। उससे बड़ी गलती हो गई थी। पिंटू दिन-ब-दिन बड़ा होगा, समझदार होगा तब कैसे संभालेगी वह!

एक दिन शाम को पिंटू खेलकूद कर आया। वह शांता चाची के प्रकाश के बारे में शिकायत करने लगा। "माँ मैने आज प्रकाश से कट्टी कर ली है। अब मैं उसके साथ खेलने नहीं जाऊँगा।"

"क्यों रे, क्या हुआ।"

"वह कहता है छोटू तुम्हारा भाई नहीं है। छोटू की माँ तुम्हारी माँ नहीं है।"

"अरे, उसने झूठ कहा होगा। तुम उसकी बातों पर ध्यान मत दो।"

"नहीं माँ, उसने कसम खाकर कहा।" और शांता चाची पूछ रही थी, "तुम्हारी माँ तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करती हैं ना?" मैंने कहा तुम झूठ बोलती हो, छोटू की माँ मेरी भी माँ है। तब वह बोली अभी तुम छोटे हो, बड़े होने पर समझ जाओगे। माँ उन्होंने ऐसा क्यों कहा? क्या तुम मेरी सगी माँ नहीं हो? सौतेली माँ हो? उस कहानी की सोनपरी की माँ जैसी? आज स्कूल टीचर ने हमें सोनपरी की कहानी सुनाई थी। एक छोटी सी लड़की थी। उसका नाम सोनपरी था। उसकी माँ सौतेली थी---- बहुत दुष्ट थी--- सोनपरी को बहुत परेशान करती थी मारती थी---

कहानी की धुन में पिंटू अपनी शिकायत भूल गया था। लेकिन शुभा उसके बारे में सोचती रही। हे प्रभो, उस मासूम के दिलपर ऐसी कितनी लहरे टकराने वाली है। वह सहने की शक्ति दो।

एक बार पिंटू अपने दोस्तों के साथ क्रिकेट खेल रहा था। छोटू उन बच्चों में छोटा है। अभी उसे खेलना नहीं आता। इसलिए बच्चे उसे खेलने नहीं देते। फिर भी वह उनके बीच टांग अड़ाता रहता है। पिंटू छोटू पर चिल्लाया। छोटू बॉल लेकर घर में आ गया। और शुभा के पीछे छिप गया। पिंटू दौड़ता आया और चिल्लाकर बोला "मेरा बॉल दे दो।" "बॉल तुम्हारी नहीं है। मेरे पापा ने लाया है।" "छोटू चुपचाप बॉल दे दो। पापा ने बॉल मेरे लिए लाया है।" "लेकिन पापा तुम्हारे नहीं है। मुझे मालूम है।"

दोनों एक-दूसरे से उलझ गए। पिंटू ने छोटू को घूंसा लगाया। बॉल फेंकते हुए छोटू ने कहा, "ले लो वह बॉल गधा, बेवकूफ, भिखारी कहीं का।" शुभा सन्न रह गई। मेरे पापा- तेरे पापा- भिखारी! किसने सिखाया इसे? समय रहते यह दीमक निकाल देनी पड़ेगी।

"छोटू यह तुम क्या कह रहे हो? वह तुम्हारा बड़ा भाई है। उससे इस तरह बात की, तो थप्पड़ लगाऊँगी। माफी माँगो उससे।"

"भाई, काहे का भाई? कहीं से आया है, गुंडागर्दी करता है।" "छोटू।"

"मुझे मालूम है। शांता चाची बता रही थी पिंटू तुम्हारा भाई नहीं है। उसे कहीं से लाया गया है।"

"देखो छोटू, लोग कुछ भी कहेंगे। तुम लोगों की सुनोगे या मेरी?"

"मैं तुम्हारी नहीं सुनुँगा। मुझे पिंटू अच्छा नहीं लगता। मुझे खेलने नहीं देता।" छोटू पाँव पटकता चला गया था।

शाम को छोटू ने पापा से शिकायत की थी। "पापा, पिंटू मुझे साथ खेलने नहीं देता। और मुझे घूंसा मारा।" और वह रोने लगा था। "पापा, उसे खेलना आता नहीं, और वह हमें भी खेलने नहीं देता।" पिंटू ने कहा था।

"देखे, उसे साथ लेकर ही खेलना। उसे रुलाया तो याद रखो।"

"लेकिन पापा---"

"ज्यादा जबान चलाई तो मुँह तोड़ दूँगा। खेलना है तो उसे साथ लेकर खेलना। वरना खेलना ही नहीं।" शरद ने पिंटू का कहा सुने बिना ही उसे डांट दिया था। पिंटू नाराज होकर बिना खाए-पिए सो गया था। शुभा को भी बुरा लगा था। शरद को ऐसा नहीं करना चाहिए। औरों की तरह शरद भी पिंटू के साथ रूखाई से पेश आने लगा है। क्या यह सच है, या अपने ही मन का खेल है? तो फिर पिछले महीने अंगूर के बाग में जाते समय शरद ने पिंटू को क्यों दुत्कारा? उस दिन सब लोग आबासाहब चौगुले के अंगूर के बाग में जाने वाले थे। आबासाहब से सबके भाईचारे के संबंध थे। उन्होंने कई बार संदेश भिजवाए थे। उस दिन इतवार था। शरद घर पर ही था। आबासाहब को संदेश भिजवाया कि हम सब लोग आ रहे हैं। लेकिन उस दिन सुबह से शुभा के सर में दर्द था। शुभा ने कहा "आप सब लोग चले जाइए। मैं और कभी चली जाऊँगी।" शरद छोटू को लेकर जाने निकला। पिंटू जाने की जिद करने लगा। शरद ने कहा, "मैं दोनों को संभाल नहीं सकता।"

पिंटू को क्या संभालना है? वह पैदल चलेगा। शुभा ने कहा था। "लेकिन दोनो लड़ते रहते हैं। उनके झगड़े कौन सुलझाएगा?" आखिर पिंटू को लिए बिना ही सब लोग चले गए थे। पिंटू को समझाते हुए शुभा के नाक में दम आया था।

"आजकल पिंटू से तुम ऐसा व्यवहार क्यों करते हो?"

"ऐसा मतलब?"

"मतलब अब तुम पिंटू से अच्छे से बात नहीं करते। उससे खेलते नहीं। उसकी सराहना नहीं करते। जैसे पहले किया करते थे।"

"अब पिंटू छोटा नहीं रहा।"

"तुम समझते हो उतना बड़ा भी नहीं हुआ है।"

आजकल तुम्हें पिंटू के लिए अपनापन, प्यार, ममता महसूस होती नहीं है। छोटू को ही लाड-दुलार करते हो।"

"क्योंकि छोटू छोटा है इसलिए। तुम कुछ भी सोचती हो।" "कुछ भी सोचती नहीं हूँ। मैं देख रही हूँ, आजकल तुम्हारा बर्ताव बदल गया है।"

"आज झगड़ा करने के मूड में हो क्या? देखों मैं उसके लिए जो कुछ कर रहा हूँ, उससे ज्यादा कुछ कर पाऊँगा। ऐसा नहीं लगता। यह सब पिंटू को लाने से पहले ही मैंने बता दिया था। पिंटू को लाने की जिद तुम्हारी थी।" "तुम और तुम्हारे रिश्तेदार उसे अलग क्यों रखते हो? क्या बिगाड़ा है उसने तुम्हारा? अड़ोसी-पड़ोसी भी उसे एहसास दिला रहे हैं कि वह हमारा नहीं है। उस पर तुम्हारा यह बर्ताव।"

"यह सारी संभावनाएँ मैंने तुम्हें पहले ही बता दी थी। तब तुम बिल्कुल अधीर हो गई थी।" शरद अपनी बात से पीछे हटने को तैयार नहीं था। बाकी लोग तो उससे बहिष्कार करने जैसा व्यवहार कर रहे थे।

पिंटू नींद में बड़बड़ा रहा था। "शांता चाची ठीक ही कहती है। माँ झूठी है। पापा मेरे नहीं है। पापा मुझे डाँटते है।" पिंटू का बड़बड़ाना सुनकर शुभा को बहुत दुख हुआ। यह लड़का यहाँ रहा तो इसी प्रकार उस पर आघात होते रहेंगे। क्या करना चाहिए? कैसे संभाले, संवारे इस कोमल अंकुर को?

शुभा रात-भर करवटें बदलती रही। अचानक उसे एक रास्ता नजर आया था। पिंटू को किसी बोर्डिंग स्कूल में रखा जाए तो? पर उसे अपने से अलग करना मुमकिन है? वह रह सकेगा? वहाँ वह ठीक से रहेगा?

उसे अच्छे साथी मिलेंगे? लोग क्या कहेंगे? जो भी हो वहाँ उसे इस बात का एहसास तो नहीं दिलाया जाएगा कि वह पराया है। अनाथ आश्रम से लाया हुआ है। उल्टे-सीधे ख्यालों से सर चकराने लगा। लेकिन निर्णय लेना जरूरी था। मुश्किल तो था लेकिन फिर भी।

शुभा ने मुंबई के एक अच्छे बोर्डिंग स्कूल में भेजने का निर्णय लिया। स्कूल से पत्र व्यवहार किया। पूरी तैयारी करके वह पिंटू का हाथ पकड़कर घर से बाहर निकली। अब तक अड़ोस-पड़ोस में खबर फैल गई थी कि पिंटू मुंबई बोर्डिंग स्कूल में जाने वाला है। पिंटू को पहले तो मजा आया, लेकिन जब माँ से अलग होने का वक्त आया तब वह रोने लगा था। माँ मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा। शुभा ने बड़ी मुश्किल से अपने आपको संभाला था। चेहरे पर हंसी लाकर पिंटू को समझाया थी। लोगों की बातों का पिंटू के दिल पर बुरा असर ना पड़े इसलिए उसका सारा प्रयास था। पिंटू को रोता देख उसे लगा था, अपना यह फैसला रद्द कर दिया जाए। लेकिन उसे याद आने लगे वे शब्द "माँ शांता चाची, कह रही थी, "तुम्हारी माँ तुम्हारे साथ अच्छा बर्ताव करती है ना?" "कहाँ से आया और गुंडागर्दी करता है। "इससे अच्छा बर्ताव मैं नहीं कर सकता, मैंने तुम्हे पहले ही बता दिया था।"

शुभा ने अपने कलेजे पर पत्थर रख लिया था। पिंटू की भलाई के लिए उसे अलग करना ही होगा। उसे समझ आने तक अंट-संट बातें उसके कानों पर पड़ना ठीक नहीं था। शुभा पिंटू का हाथ पकड़कर बाहर निकली थी। उसके पीछे शांता चाची के शब्द आए थे वे सुशीला बहन से कह रही थी, "अजी है तो पराया लड़का। उसके लिए अपने बेटे जैसी ममता थोड़े ही उमड़ेगी? अपना बेटा होते ही उसे अड़चन होने लगी। निकली ना उसे बोर्डिंग में रखने!"

- लेखिका : 176/2, गायत्री प्लॉट नं. 12, वसंतदादा साखर कामगार भवन, जवल, सांगली - 416416 (महाराष्ट्र)

अनुवादक : फ्लैट नं. 303, बिल्डिंग नं. डी-2, शिवसागर को-ऑप. सोसायटी, मणिक बाग, सिंहगढ़ रोड पुणे-411051

❑❑❑

पराई धरती का अभिशाप

इश्तियाक़ सईद

भारत से मनोज कुमार तिवारी का पत्र था, मैं चकित था कि इतने वर्षों बाद अचानक, उसे मेरी याद कैसे आ गई? उससे बिछड़े मुझे लगभग तेरह-चौदह वर्ष हो चुके होंगे, कम-से-कम इतनी ही मुद्दत मुझे अमरीका में बसे बीती होगी। मनोज और मैं मुंबई यूनिवर्सिटी से एम. एस. सी. कर रहे थे, वह गोरखपुर का रहने वाला था, जबकि मैं अपने माता-पिता के साथ मुंबई में ही आबाद था, हालाँकि हम मूल निवासी जबलपुर के हैं। मेरे पिता साठ के दशक में रोजगार की तलाश में यहाँ आए और यहीं के होकर रह गए थे। मैंने जबलपुर और अपने पैतृक गाँव से संबंधित बहुत कुछ सुन रखा था किंतु वहाँ जाने का सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ। जबकि मनोज छुट्टियाँ बिताने गोरखपुर चला जाया करता था। एक बार जब वह गोरखपुर से लौटा तो बड़े ही उत्तेजित एवं भावनापूर्ण स्वर में मुझ से कहा "यार तुम्हें पता है, जबलपुर हमारे रास्ते में पड़ता है।"

"अच्छा!"

"हाँ यार, जाने कैसी कशिश है जबलपुर में, जानते हो ट्रेन जब जबलपुर की सरहद में प्रवेश की तो मुझे ऐसा आभास हुआ जैसे मैं अपनी धरती पर पहुँच आया हूँ"

"अपनी धरती! ....मतलब?"

"मतलब मातृभूमि.....क्या तुम्हें कभी अपनी मातृभूमि याद नहीं आती?"

उसके इस प्रश्न पर मैं खिलखिला कर हँस पड़ा "मातृभूमि की याद क्यों आने लगी? अरे यार, इस युग में माँ की याद भी मुश्किल से आती है, अलबत्ता मुसीबत पड़ने पर नानी जरूर याद आ जाती है। मेरी इस दिल्लगी से वह नर्वस हो गया "यार तुम हर बात का मज़ाक बना लेते हो, कभी तो गंभीर हो जाया करो"

"क्यों? आख़िर ऐसी कौन-सी गंभीरता की बात कही है तुमने?"

"मातृभूमि की??"

"तो सुन लो, नही मानता मैं मातृभूमि को"

"न मानो....मेरा क्या, तुम खुद ही अपना कुछ खोओगे...."

"खोऊँगा! क्या खोऊँगा?" मैं झुंझला उठा।

"अपनी पहचान, अपना परिचय.....दोस्त, आदमी की पहचान और उसका परिचय मातृभूमि ही से है, यदि आदमी अपनी ज़मीन अपनी धरती से कट गया तो वह उस पेड़ की भाँति हो कर रह जाता है जिसे ज़मीन से उखाड़ दिया गया हो.....भला बताओ ऐसा पेड़ फिर कहीं पनप सकता है?"

सच ही कहा करता था वह! उसकी कही एक-एक बात अब शिद्दत से याद आती है, क्योंकि मैं अपनी धरती, अपने देश से कट के रह गया हूँ। अब एहसास जागा है कि अपना वतन अपना ही होता है, चाहे वहाँ लाख कष्ट, लाख परेशानियाँ हों, हर हाल में अध्यात्मिक सुख और अपनेपन का एहसास बाक़ी रहता है।

मनोज और मैंने फर्स्ट डिवीज़न से एम. एस. सी. पास किया था, फिर मैं उच्चशिक्षा हेतु अमरीका चला गया, मैं भरसक चाहता था कि मनोज भी साथ चले, परंतु उसने साफ इनकार कर दिया, अब ऐसा भी नहीं था कि घरेलू हालात उसे अमरीका जाने से रोक रहे थे, वह अमीर घराने से संबंधित था, उसके पिता मिलिट्री में कमांडर-इन-चीफ के पद से रिटायर हुए थे। गाँव में लगभग चालीस बिगहा ज़मीन थी। वह अपने दादा के बारे में बताया करता था कि वह युवावस्था में ही अंग्रेजों के जुल्म से दुखी हो थाईलैंड चले गए थे, वहाँ मेहनत और लगन से काफी कारोबार फैला लिया था किंतु उन्हें बे-वतनी हमेशा खलती रही। वह वतन की याद में भीतर ही भीतर घुलते रहें। जब नेता जी सुभाष चंद्र बोस ने आज़ाद हिंद फौज की स्थापना की और थाईलैंड में बसने वाले सभी भारतीयों से इसमें शामिल होने का अनुरोध किया तो दादा जी अपना सब कुछ नेता जी के हवाले करके आज़ाद हिंद फौज के एक जुझारू फौजी बन गए थे। मनोज के लिए यह खुशी की बात थी कि दादा जी का हाथ उसके सिर पर अब भी था, पिता तो मुलाज़मत से रिटायर होने के डेढ़ वर्ष बाद ही परलोक सिधार गए थे।

वैसे तो मैं दादा जी से कभी मिला नहीं था परंतु वह मुझे भली-भाँति जानते थे, मनोज एक-एक बात पत्र में उन्हें लिख भेजता, वह भी अपने पत्रों में मुझे संबोधन करते...कई पत्रों में तो मुझे मनोज के साथ गाँव आने का निमंत्रण भी दिया था। किंतु मेरे लालची स्वभाव ने उनके निमंत्रण को व्यर्थ तथा अर्थहीन समझा..... उस समय तो नहीं परंतु बाद में मुझे उनकी महानता का ज्ञान हुआ था और मैं उस महानुभाव के दर्शन को तड़पने लगा था जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपना सब कुछ कुरबान कर दिया था, किंतु करता क्या.... "अब पछताए होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत"

मनोज को अमरीका न भेजने का फैसला दादा जी का ही था... वह हर्गिज यह नहीं चाहते थे कि वह अपना देश छोड़ परदेश जाए और वहीं का होकर रहे। वैसे भी अमरीका पहुँचना इतना सरल न था, मुझे खुद यहाँ तक आने में नाकों चने-चबाने पड़े थे। मैं आया तो था उच्चशिक्षा की प्राप्ति का बहाना बनाकर परंतु मकसद नौकरी करना था....ं नौकरी के लिए ग्रीन कार्ड का होना लाज़मी था और उसे प्राप्त करने के लिए किसी अमरीकी लड़की से ब्याह करना अनिवार्य था। हर प्रकार से प्रयास के बाद एक लड़की इस शर्त पर ब्याह के लिए राज़ी हुई कि मैं दस वर्ष तक अपने देश लौटने की कल्पना तक न करूँगा। मैंने उसकी शर्त मंजूर कर ली, फिर हम प्रणय-सूत्र में बंध गए और मैं वहाँ सरलता से सेटल हो गया। माता-पिता को रुपया-पैसा समय-समय से भेजता रहा, किंतु आकर उनसे मिलने का सामर्थ्य नहीं जुटा पाया..... और वह मेरी राह देखते-देखते परलोक सिधार गए।

पहले माँ की बीमारी का तार मिला था, जिसमें तत्काल स्वदेश आकर माँ से मिलने की प्रार्थना की गई थी, तार देख दिल तड़प उठा था माता-पिता के दर्शन के लिए। माँ की बीमारी के बहाने वतन जाना चाहा तो पत्नी ने पहले शर्त याद दिलाई फिर प्रोमोशन का अड़ंगा लगा दिया, उसके अनुसार ऑफिस से छुट्टी लेना मतलब जीवन की दौड़ में कम से कम दो वर्ष पिछड़ जाना था और यह मेरे लिए घोर चिंता का विषय था।

माँ मर गई.... टेलीग्राम ने खबर दी, इस समय मुझे माँ नहीं धरती माँ की याद शिद्दत से आई थी, क्योंकि मैं अपनी धरती पर होता तो कम से कम माँ की मौत पर खुलकर आँसू बहाया होता...उसका दाह-संस्कार करता...उसकी आत्मा की शांति के लिए ब्रहम-भोज देता।

माँ के स्वर्गवास के बाद बाबू जी भी अधिक दिन जी नहीं सके थे.... फिर मेरी पत्नी जिसके कारण मैंने माता-पिता, सगे-संबंधी यहाँ तक कि अपना देश छोड़ दिया था, उसने भी मुझे ठुकरा दिया... अदालत ने डाइवोर्स का हुक्म जारी कर दिया, फिर तो मैं बे-यार व मददगार होकर रह गया, पिछले दो वर्षों से बस ऐसे ही नीरस जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। यह कहा जा सकता है कि मेरी दशा धोबी के कुत्ते जैसी है, जो घर का होता है न घाट का।

आज अपनी धरती....अपनी मातृभूमि से आया पत्र मन को आनंदित कर रहा है। फिर पत्र लिखने वाला कोई और नहीं मेरा अपना मित्र है.....मेरे अच्छे-बुरे दिनों का साथी! पत्र को बार-बार आँखों से लगाया,

चूमा... मन ही मन सब कुशलता की प्रार्थना की, तब कहीं काँपते हाथों से लिफाफा खोला, लिखा था।

राज.....मेरे यार!

आख़िर और कब तक पराई धरती पर अभिशाप भुगतेगा। यार! भगवान राम भी बनवास के चौदह वर्ष पूरे होते ही अपनी धरती पर लौट आए थे। चौदह वर्ष तो तुझे भी हो चुके हैं। आ.....अब लौट आ मेरे यार!..... अरे हाँ, जनवरी 2001 में दादा जी अपनी आयु का शतक पूरा कर लेंगे, उनकी सौवीं वर्षगाँठ यहाँ जनपद स्तर पर बड़ी धूम-धाम से मनाने की तैयारियाँ चल रही हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इस अवसर पर तू भी हमारे साथ रहे। यह जान कि तुझे मैं नहीं, मातृभूमि पुकार रही है..... इसके आगे क्या लिखा था मैंने पढ़ा भी या नहीं, मुझे होश नहीं।

एयरपोर्ट से ही फोन के माध्यम से मैंने मनोज को सूचना दे दी थी कि मैं किस विमान से दिल्ली पहुँचूगा तथा किस विमान से गोरखपुर.... इसी प्रोग्राम के अनुसार मनोज मुझे एयरपोर्ट पर लेने के लिए मौजूद था। वह जब मेरे समक्ष आया, मैं उसे पहचान न सका, शायद उसने भी मुझे नहीं पहचाना था, इसलिए अत्यंत शिष्टता से पूछे "आप राजा चौरसिया?"

"जी!" मैने उसे निगाहों से टटोलते हुए कहा। वह स्तब्ध हो मेरी ओर एकटक ताकता रहा, मैं भी उसकी देहाती वेषभूषा को देख उसे मनोज के खेतों में काम करने वाला खेतिहर मज़दूर मानकर पूछ बैठा, "क्यों जी, मनोज नही आया?" वह मेरे प्रश्न पर खिलखिला कर हँस पड़ा, मुझे इस हँसी में गुप्त मनोज दिखाई दे गया और मैं उससे लिपट कर रो पड़ा, आँखें तो उसकी भी भीग गई थीं पर वह चुपचाप खड़ा मेरी पीठ थपथपाता रहा।

मनोज के यहाँ मुझे अजनबियत का बिल्कुल अहसास नहीं हुआ, घर के सभी सदस्य मुझसे ऐसे घुल-मिल गए थे जैसे वह मुझे वर्षों से जानते हों..... दादा जी का क्या कहना, वह तो मुझे पलभर को भी अकेला छोड़ना नहीं चाहते थे.... खूब बातें करते, अपनी जवानी के किस्से मज़े ले-लेकर सुनाते तथा सुभाष चंद्र बोस के जीवन की ऐसी-ऐसी बातें बताते जो इतिहास का हिस्सा बनने से रह गई थीं। ब-ज़ाहिर तो मैं उनकी बातें दिलचस्पी से सुनता परंतु ज़ेहन मनोज के जीवन की भूलभुलैया में भटकता रहता कि वह इतना पढ़-लिखकर भी एक खेतिहर मज़दूर की भाँति जीवन बिता रहा है। यदि उसे ऐसे ही जीवन बिताना था तो एम. एस. सी. करने की ज़रूरत क्या थी। खेती-बाड़ी के काम-काज के लिए प्राथमिक शिक्षा पर्याप्त होती। कई बार जी में आया कि मनोज से पूछूँ.... परंतु इस ख़्याल से कि कहीं वह बुरा न मान जाए, इसलिए चुप्पी साधे रहा।

कभी-कभी, मनोज मुझे अपने साथ खेतों में भी ले जाया करता था और फसलों, कीटनाशक दवाईयों, मिट्टी की विशेषता, खेती की आधुनिक तकनीक, ट्रेक्टर, थ्रेशर, क्रेशर और समर-सेबल की लाभकारिता पर घंटों बोलता रहता, मैं स्तब्ध खड़ा सब सुनता जबकि ज़ेहन में सोचता कि क्या सचमुच हम कंप्युटर युग में प्रवेश कर चुके हैं? आज टेली कम्युनिकेशन तथा इंटरनेट ने दुनिया को ग्लोबल गाँव में परिवर्तित कर दिया है। यहाँ मनोज है कि अब तक धरती और मिट्टी में ही उलझा पड़ा है?.....

आख़िर एक दिन मेरे संतोष का बाँध टूट गया और मन में कचूके लगाने वाली बातें मुख पर आ ही गई "यार मनोज, ये बता... तू यहाँ मिट्टी में रहके अपना जीवन क्यों मिट्टी कर रहा है? साईंस का छात्र रहा है... मास्टर डिग्री है तेरे पास कुछ और नहीं तो बी. एड. करके किसी स्कूल में शिक्षक ही बन जाता?" मेरे इस प्रश्न पर वह मंद-मंद मुस्कुराया, "बनने को तो बहुत कुछ बन सकता था, परंतु दादा जी का आदेश नही था"

"मतलब!"

"दादा जी सच्चे देशभक्त तथा स्वतंत्रता सेनानी होने के नाते इस पूरे क्षेत्र में आदर्श माने जाते हैं, यहाँ हर छोटा-बड़ा भली-भाँति जानता है कि दादा जी के निकट भारत माँ के सेवकों के दो ही रूप हैं, एक देश की सरहदों का संरक्षक फौजी जवान, दूसरा धरती माँ की कोख को अपने खून-पसीने से सींचने वाला किसान। शास्त्री जी ने शायद इसीलिए 'जय जवान जय किसान' का नारा दिया था"

"मतलब.... डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, शिक्षक और दूसरे महकमों से जुड़े लोगों का कोई महत्व नही?" मैंने तुरंत विरोध किया।

"बे-शक है, उनका भी महत्व.... वह भी देश की सेवा करते है, परंतु जवान व किसान की भाँति निस्वार्थ सेवक नहीं हैं, वह अपनी सेवा का भरपूर मेहनताना वसूल करते हैं.... अपनी माँगे मनवाने के लिए काम बंद कर देते हैं... सरकार के ख़िलाफ प्रदर्शन करते हैं.... जलसे-जुलूस करके सरकारी संपति को नष्ट करते हैं, जबकि फौजी जवान और किसान बिना कुछ कहे बंधी-टकी पारिश्रमिक पर मौसमों की परवाह किए बिना अपने-अपने महाज़ पर डटे रहते हैं" उसकी इस दलील पर मुझसे कोई उत्तर न बन पड़ा था, इसके बावजूद मैंने उसे कुरेदा "केवल दादा जी की खुशी के लिए अपना सारा जीवन....?"

"दोस्त, यही तो हमारे देश की सभ्यता है.... यही हमारा संस्कार है, हम अपने बड़ों की इच्छानुसार अपनी जीवन धारा को मोड़ देते हैं। दादा जी की इच्छा थी कि मैं धरती माँ का सेवक बनूँ....यार! सेवा चाहे जो हो उस में एक अनोखा आनंद प्राप्त होता है..... धरती माँ की सेवा का आनंद ही कुछ और है। अपनी माटी जब शरीर को चूमती है न, तो ऐसा आभास होता है मानो माँ हमें दुलार रही हो और फसलें जब तैयार होकर खेतों में लहलहाती हैं तो जान पड़ता है जैसे धरती का यौवन लौट आया हो..... सारा जीवन मस्त, अल्हड़ कुमारी की भाँति इठलाता, झूमता मालूम होने लगता है"

मनोज भावनाओं में बहता चला गया था... नहीं, शायद खो गया था....गाँव में, मिट्टी में, खेतों में, फसलों में, सभ्यता और संस्कृति में अथवा दादा जी की इच्छाओं में!

दादा जी की सौवीं वर्षगाँठ से सप्ताह भर पहले गाँव सजने-संवरने लगे थे.... पक्के मकानों में सफेदी और कच्चे घरों वाले लिपाई-पुताई में जुट गए थे। जगह-जगह रंग-बिरंगी झंडियाँ लगाई जाने लगी थीं। ऊबड़-खाबड़ रास्तों को समतल कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त पुलिस अधिकारियों का गश्त बराबर जारी था, दिन में एक दो फेरे इलाके के विधायक और एम पी भी लगा जाते। स्थानीय पत्रकारों के साथ-साथ दूसरे शहरों के इलेक्ट्रानिक मीडिया के नुमाइंदे भी आ चुके थे और सारा दिन दादा जी ही के आस-पास मंडराते रहते। वर्षगाँठ से एक दिन पहले स्टार प्लस वालों ने दादा जी से एक विशेष मुलाकात के लिए समय ले रखा था, इस अवसर पर दादा जी ने मुझे साथ रहने का निर्देश दे दिया था....इधर स्टार प्लस वालों को न जाने कैसे यह खबर हो गई कि मैं एन. आर. आई. हूँ, अमरीका से खास दादा जी की वर्षगाँठ में शिरकत के लिए ही भारत आया हूँ, इसलिए उन्होंने मुझे इस प्रोग्राम का होस्ट नियुक्त कर दिया, यानी की अब दादा जी से जो भी बातचीत होनी थी वह मुझे कि करनी थी।

प्रोग्राम के प्रोड्यूसर आर. पी. खन्ना जी ने पहले मेरा भरपूर परिचय पेश किया। मुझे एक सच्चा देश प्रेमी बताते हुए कहा कि "हमारे देश की माटी की यही विशेषता है कि इसका लाल दुनिया के चाहे जिस मुल्क में जा बसे, उसके दिल में हिंदुस्तान धड़कता है... रग-रग में देश की माटी कुलबुलाती है, साँसों में यहाँ कि सभ्यता, यहाँ की संस्कृति महकती है" इन पलों में मेरा सिर शर्म से झुका जा रहा था, जी चाह रहा था कि चीख पड़ूँ और कहूँ "सब झूठ है... बकवास है, मैं अपनी धरती का वफादार नहीं हूँ, मैंने अपने देश से बे-वफाई की है" परंतु कह न सका, अलबत्ता मेरे चेहरे का रंग बदल गया था। खन्ना जी मेरे बारे में न जाने और क्या-क्या बोले जा रहे थे किंतु दादा जी मेरी ओर ताकते हुए मंद-मंद ऐसे मुस्कुरा रहे थे मानो अपनी मुस्कान के अनदेखे नाखून से मेरे व्यक्तित्व पर चढ़ा झूठ का मुलम्मा खुरच रहे हों। यकायक मेरे ज़ेहन में मनोज की बातें गूंजने लगीं और उसके व्यक्तित्व की सभी परते एक-एक कर मुझ पर खुलती चली गईं। वह अब मुझे खेतिहर मजदूर नही बल्कि एक महान किसान और फौजी का रूप धारे एक ऐसा जवान मालूम हुआ जिसके एक हाथ में हल दूजे में स्टेनगन हो... उसके आगे इंद्रलोक के सारे देवता शीश झुकाए तथा देवियाँ सोने की थाल में ज्वलंत दीप लिए नृत्य मुद्रा में आरती उतारती 'जय जवान जय किसान' का राग अलापती मालूम हुईं, आलाप की लय इतनी मधुर.....इतनी सुरीली थी कि मुझ पर जादू सा छाने लगा। अभी मैं स्वयं को इस जादू के असर से निकालने के जतन में ही था कि मुझे ऐसा आभास होने लगा मानो मेरी काया कुत्ते में परिवर्तित हो रही है। मैं सिर से पैर तक काँपने लगा, दिन की धड़कने बेकाबू हो गईं, आँखों के आगे

अंधकार का पर्दा तन गया और देखते ही देखते उस पर्दे पर एक दृश्य उभरा....जिसमें एक अमरीकी युवक आलिशान बंगले में कीमती सोफे पर शान से पसरा है, उसके आस-पास ढ़ेर सारी डॉलर की गड्डियाँ बिखरी पड़ी हैं, इसी पल वहाँ एक कुत्ता आता है.... पहले तो वह डॉलर की गड्डियों को सूंघता है फिर उस अमरीकी युवक के कदमों तले पूँछ हिलाता बैठ जाता है और अत्यंत तन्मयता से उसके तलवे चाटने लगता है।

-बी-01, न्यू मीरा पैराडाईज सी.एच.एस. गीता नगर, फेस-2, मीरा रोड-401107 (मुंबई)

❑❑❑

रास्ते अलग-अलग

रमेश मनोहरा

"क्या कहा? तुम, वेश्या से शादी करोगे, तुम्हारी मति तो नहीं मारी गई" पिता अखिलेश चिल्लाकर बोले-समाज बिरादरी में नाक कटवाना है क्या?

मगर पुत्र राजेश के चेहरे पर जरा भी क्रोध न दिखा। शांत स्वभाव बना रहा फिर पिता चिल्लाकर बोले "सुन ले कान खोलकर! राजेश, तेरी शादी वहीं करूँगा, जहाँ मैं चाहूँगा।"

"मगर मैं पूछता हूँ क्या वेश्या औरत नहीं होती है?" राजेश ने प्रत्युत्तर में प्रश्न पूछा।

"होती है, मगर वो समाज की गंदगी होती है।"

"समाज की गंदगी होती है। वह मैंने भी मान लिया।"

"जब यह समझता है। फिर उस गंदगी से शादी करने पर क्यों तुला है?"

"मगर पापा मैं पूछता हूँ। उसे गंदगी में धकेलने वाले कौन लोग हैं। कौन इसकी जिम्मेदारी लेता है?" प्रत्युतर में राजेश ने प्रश्न उठाया। तब अखिलेश उसी तरह चिल्लाते हुए बोले-अरे अपने समाज बिरादरी में क्या लड़कियों की कमी हो गई। जो एक वेश्या से शादी करेगा। मैं उस वेश्या से शादी नहीं होने दूँगा।

"देखिए बाबू जी, ये समाज बिरादरी वाले न जाने कितनी लड़कियों को वेश्या बनाते हैं। इस बात की जवाबदारी कोई नहीं लेना चाहता है। सब उसे वेश्या समझकर दुत्कार देते हैं। फिर लड़कियों को वेश्या बनाने में किसका हाथ है। उसी समाज का जिस समाज में आदमी रहता है।"

"अरे बरखुरदार, ये सुधारवादी विचार रहने दें।"

"कैसे रहने दूँ बाबू जी, हम वेश्याओं को गिरी हुई नजरों से जरूर देखते हैं, मगर उसे अपनाना कोई नहीं चाहता है, मेरे जैसे लोग यदि अपनाना चाहें तो आप जैसे दकियानूसी इसका विरोध करते हैं।" कहकर राजेश की साँस फूल गई। थोड़ी देर चुप रहने के बाद फिर बोला- मैं उससे शादी करके समाज सुधार का काम कर रहा हूँ, तब आप उसी समाज का डर दिखा रहे हैं। ये कैसा दोहरा समाज है। मैं यह भी जानता हूँ कि आर्थिक परिस्थितियों के कारण लड़कियाँ धर्नाजन में के लिए धंधा अपनाती हैं। ये समाज लड़कियों को उस गंदगी में भेज देता है। मगर निकालने की कोई नहीं सोचता है। रात के अंधेरे में उसके पास चला तो जाता है। मगर दिन के उजाले में उससे नफरत करता है।

"ए समाज सेवी, समाज सुधार की बात मत कर, तेरे एक के समाज सुधारक बनने से यह समाज सुधर नही सकता है।"

"यह क्यों भूल रहे हो बाबू जी, एक-एक बूँद से जब घड़ा भर सकता है तब मेरी इस पहल से...."

"बस-बस बहुत हो चुकी तेरी आदर्शवादी बातें।" बीच में ही बात काटकर अखिलेश चिल्लाकर बोले-तेरी शादी वहीं होगी जहाँ मैं चाहूँगा। यह मैं पहले ही कर चुका हूँ।

"प्लीज पापा, आप अपनी जिद छोड़ दीजिए" अनुरोध करते हुए राजेश बोला- मैं उसे वचन देकर आया हूँ।

"मुझसे बिना अनुमति लिए वचन कैसे दे दिया?" अखिलेश ने प्रश्न पूछते हुए कहा "तुझे मैंने पढ़ाया। इतना खर्चा उठाया इतना पैसा.....

"वही पैसा आप दहेज में वसूलना चाहते हैं, यही कहना चाहते हैं न" बीच में ही बात काटकर राजेश बोला; मगर पापा, दहेज की बुनियाद पर आप जो रिश्ता तय करना चाहते हैं, वो कमजोर होता है। अत: पापा, मैं आपकी स्वीकृति लेने आया हूँ। आप अपनी स्वीकृति देकर मेरे इस सुधारवादी काम में सहयोग करें। एक बात और बता दूँ पापा, शादी के लिए जिस लड़की को मैंने पसंद किया है, वेश्या है, समाज जिसे घिनौना पाप मानता है, मगर वही समाज उनको सुधारने के लिए क्या कर रहा है। मैं चाहता तो आपके बिना पूछे चुपचाप शादी कर लेता। मगर माँ जब से गुजरी है, तब से आप अकेले पड़ गए हैं। अत: मैं आपका सम्मान करता हूँ। आपको कोई पीड़ा न हो इस हेतु मैं आपसे स्वीकृति माँग रहा हूँ। आशा है आप इसकी स्वीकृति देंगे।

फिर पिता का उत्तर सुने बिना वह अपने कमरे में आ गया यह सच है वह अपने पिता की अकेली संतान है। 10 वर्ष का ही हुआ था कि माँ कैंसर से गुजर गई। सारा दायित्व पिता पर आ गया था- तब पिता ने माँ और पिता दोनों का दायित्व निभाया था। इस हेतु दूसरी शादी नहीं की थी। उसे उच्चशिक्षा दिलाकर अच्छी नौकरी में स्थापित करना चाहते थे। यही उनका लक्ष्य था। भाई बहन को पढ़ाने में उन्होंने अपने जीवन को दाँव पर लगा दिया। इस हेतु बहन आशा का जिस उम्र में विवाह होना था, नहीं हुआ, जब बहन उच्चशिक्षा प्राप्त करके कॉलेज में प्रोफेसर बन गई। तब तक शादी करने की नहीं सोची। मगर कॉलेज की नौकरी लगने के बाद बहन के लिए पिता को ऐसा दूल्हा नहीं मिला जो उसके अनुरूप हो, अत: इस हेतु उन्होंने तीन-चार साल और गुजार दिए। मगर जब कॉलेज में प्रोफेसर दूल्हा मिला, पिता ने धूम-धाम से शादी कर दी। आज बहन सुखी है। अब राजेश के लिए भी तो उनको दायित्व पूरा करना उनका लक्ष्य था, उसे इंजीनियर बनाने का, वह मिशन भी उनका पूरा हुआ। आज वो इंजीनियर है। जहाँ उसकी पोस्टिंग हुई। वहाँ उसे शासकीय बंगला मिला, पिता को भी यही ले आया। उनका पुश्तैनी मकान रतलाम में था। अत: उसे बेचकर आधा पैसा बहन को और आधा पैसा उसे दे दिया। आज उन्हें भी सेवानिवृत्त हुए पाँच साल हो गए।

अब पिता उसकी शादी के लिए लड़की देख रहे हैं। पिता चाहते थे, लड़की गृहणी जैसी मिले, नौकरी नहीं करवाना चाहते थे। मगर पिता को जो लड़की पसंद आती उसे नहीं आती और उसे जो आती थी पिता को नहीं आती थी। वह पिता के मन को तोड़ना नहीं चाहता था। लड़की देखने का अभी सिलसिला चल रहा था। तभी एक हादसा हो गया। उस दिन जिस-जिस दुकान पर वो सामग्री खरीदने गया। वहाँ पहले से ही एक खूबसूरत लड़की कुछ खरीदती हुई दुकानदार से भाव हेतु बहस कर रही थी, वह भी उसके पास जाकर खड़ा हो गया। जब उनकी बात खत्म हुई। लड़की ने पलट कर देखा उसके इंटर कॉलेज की सहपाठी शालिनी थी। दोनों के बीच दोस्ती के साथ प्रेम भी था। कहने वाले कहते थे, देखो लैला-मजनूँ की जोड़ी जा रही है। दोनों ही कॉलेज में साथ-साथ देखे गए थे। कॉलेज के बाहर पार्क में भी दोनों कई बार मिले। मगर इंटर करने के बाद दोनों के रास्ते जुदा हो गए। फिर दोनों एक दूसरे को भूल गए ।

"तुम राजेश तो नहीं हो।" आखिर शालिनी ने मौन तोड़ते हुए कहा।

"हाँ मैं राजेश हूँ तुम" अचानक तुम शब्द उसके मुँह से निकल गया।

"शालिनी" उसके चेहरे पर यह कहते समय मुस्कान थी। तुम यहाँ कैसे?"

"मैं यहाँ इंजीनियर हूँ, तुम यहाँ कैसे?"

"सब यहीं पूछ लोगे, चलो सामने पार्क में बैठकर बाते करते हैं।" कहकर उसने अपना पैमेंट जमा करा दिया। वे दोनों बाहर निकल गए। सड़क पार करके उस बगीचे के एकांत स्थल पर जाकर बैठ गए। राजेश बोले, अच्छा अपने बारे में बताओ, अब तक शादी हो गई होगी?

यह सुनकर शालिनी का चेहरा उतर गया। फिर राजेश ने पूछा चेहरा क्यों उतर गया।

"क्या करोगे पूछकर?" शालिनी ने चेहरा नीचे करते हुए कहा।

"तुम्हारा चेहरा बता रहा है कि तुम किसी पीड़ा से पीड़ित हो" राजेश ने अंदर की बात को कुरेदा फिर आगे बोला क्या पीड़ा है तुम्हें? बताओ बताने से मन का बोझ हल्का हो जाएगा। यदि तुम्हारे दुख में मैं सहभागी बन सकूँ।

"नहीं राजेश, मैं तुम्हे बताकर पीड़ा नहीं देना चाहती हूँ। मुझे अपने हाल पर रहने दो" एक बार फिर शालिनी अपनी पीड़ा छिपाती हुई बोली।

"नहीं शालिनी, मेरी कसम तुझे बताना पड़ेगा" कहकर राजेश ने शालिनी पर पूरा शिकंजा कस लिया। आखिर मजबूर होकर शालिनी ने कहा- मैं शांतिबाई के कोठे पर धंधा करती हूँ। सुन के चौंकना मत। औरत जब सब तरफ से हार जाती है। तब उसके लिए यही रास्ता बचता है। आगे मत पूछना, मैंने यह धंधा क्यों अपनाया?"

"नहीं शालिनी तुम कुछ छुपा रही हो?"

"बस मैंने बता दिया, यह धंधा मैंने खुद अपनाया?" शालिनी ने यह कहकर बात बंद करने का अनुरोध किया।

"तुम असली बात भले ही मत बताओ, मगर सामाजिक व्यवस्था ऐसी बनी हुई है। तुम्हारी भी कुछ मजबूरी रही होगी, जिसे तुम बताना नहीं चाहती हो तो मत बताओ। मगर मैं सब जानता हूँ।"

"तब तुम सब जानते हो तो अब चलूँ"

"एक युग के बाद हम मिले। थोड़ी देर और बैठो"

"वो शांतिबाई नाराज होगी?" शालिनी ने कहा।

"अच्छा तो रोज मिलोगी?"

"नहीं, एक वेश्या से मिलकर तुम बदनाम होगे? हाँ एक बात जानना तो भूल ही गई?"

"क्या भूल गई?"

"तुम्हारी शादी हो गई?"

"नहीं लड़की की तलाश जारी है"

"फिर भी कोई लड़की मिली होगी?"

"कई मिली, मगर मेरे पिता को जो पसंद आती मुझे नहीं, जो मुझे पसंद आती पिता को नहीं, ऐसी लड़की की तलाश है जो दोनो को पसंद हो।"

"यह योग कब बैठेगा?"

"जब भाग्य जागेगा।"

"ठीक है तुम अपने भाग्य को जगाओ, मैं चलती हूँ" कहकर शालिनी जाने लगी। मगर जाते-जाते कल आने का वादा कर गई।

अब वे रोज उस बगीचे में निर्धारित समय पर आकर मिलने लगे। प्रेम का इजहार दोनों में होने लगा। शालिनी बहाने बनाकर बगीचे में आने लगी। राख में दबी चिंगारी दोनों के बीच सुलगने लगी। मगर उन दोनों के प्रेम के बीच जो दीवार थी वह थी वेश्या की। दोनों के भीतर प्रेम के अंकुर जरूर फूट रहे थे। मगर क्या दोनों शरीर एक होंगे? यह एक विचारणीय प्रश्न दोनों के बीच प्रश्न चिह्न की तरह बना हुआ था।

"मगर हमारे बीच समाज की दीवारें है। जो कभी एक नहीं होने देंगी?"

"दीवारें कौन-सी दीवारें?"

"राजेश तुम उस समाज में रहते हो जो सभ्य कहलाता है। मैं उस समाज में रहती हूँ जिसे घृणा से देखा जाता है, कैसे होगा तालमेल?"

"अरे हम विवाह करके ये दीवार गिरा देंगे" राजेश ने प्रश्न का समाधान किया।

"जितना तुम समझ रहे हो। उतना आसान नहीं है ये" समझाती हुई शालिनी बोली-फिर हमारे बीच तुम्हारे पिता और शांतीबाई दीवार बनकर खड़ी है। वे हम दोनों को मिलने नहीं देगी।" मैं तो शांतिबाई से विद्रोह करके तुमसे शादी कर भी सकती हूँ मगर तुम अपने पिता को कैसे समझाओगे। हमारी शादी के बीच सबसे बड़ी दीवार तुम्हारे पिता होंगे। अपने पिता से विद्रोह करके हम सुखी भी नहीं रह सकते हैं। अत: पहले तुम अपने पिता को समझाओ। उन्हें शादी के लिए मनाओ।

शालिनी ने जब यह प्रश्न सामने रखा। तब राजेश को सोचने पर मजबूर कर दिया। पिता को मनाना अनिवार्य है। जब पिता से यह बात कही तब कितने नाराज हुए। उन्हें दहेज वाली बहू चाहिए? अब शालिनी को वो क्या जवाब दें?

सुबह जब राजेश तैयार होकर दफ्तर जाने की तैयारी कर रहा था अखिलेश पास आकर बोले "सारी रात मुझे नींद नहीं आई, बहुत सोचता रहा। सोच-समझकर मैंने फैसला किया, तुम जिस लड़की से शादी करना

चाहते हो, मैं तैयार हूँ। मगर मेरी एक शर्त है।"

"कौन-सी शर्त पापा?" उत्सुकता से राजेश ने पूछा।

"उस लड़की को देखना चाहता हूँ। आखिर कैसी है, कौन है? तुम उसे लेकर आओगे?" पिता ने जब यह कहा तब प्रसन्नता से वो खिल उठा और बोला आज शाम को ही लेकर आऊँगा पापा आप खुद देखकर ही हाँ कर देंगे।"

कहकर राजेश दफ्तर जाने के लिए निकल गया। आज उसके पाँव खुशी से जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। क्योंकि पिता बंद रास्ता खोल चुके थे। शाम को जब दफ्तर से शालिनी को उसी बगीचे में उसने बुलाया तब वह उससे बोला "शालिनी आज मुझे खुशी का खजाना मिल गया।"

"खुशी का खजाना, मैं भी तो सुनूँ" उत्सुकता से शालिनी ने पूछा।

"पापा ने तुम्हारे साथ शादी करने की हाँ कर दी, तुम्हें देखने के लिए घर बुलाया है।" कहकर राजेश के चेहरे पर खुशियों के बादल मंडरा रहे थे। मगर शालिनी के चेहरे पर जरा भी खुशी नहीं थी। उसके चेहरे को देखकर राजेश बोला," अरे, शालिनी तुम्हें खुशी नहीं हुई?

"नहीं बिल्कुल नहीं हुई?"

"अरे क्यों नहीं हुई?"

"क्योंकि मैंने भी बहुत सोच-समझकर यह फैसला लिया है कि मैं तुमसे शादी नहीं कर सकती हूँ" कहकर शालिनी ने अपनी बात कह दी।

"क्यों नहीं कर सकती हो?"

"तुम्हारे क्यों का उत्तर मैं नहीं दे सकती राजेश पर इतना ही कह सकती हूँ मैं एक बदनाम बस्ती की लड़की हूँ।"

"हाँ, यह सब जानते हुए फिर भी अपना रहा हूँ? फिर इंकार क्यों कर रही हो?"

"फिर वही सवाल क्यों कर रहे हो। तुम एक सभ्य समाज के हो, शादी करने के बाद भी तुम तो मुझे खुश रख सकोगे, मगर यह समाज मुझे सुखी नहीं रहने देगा। मुझे बार-बार मेरे पुराने धंधे की याद दिलाएगा। अच्छा है राजेश अब कभी मिलने की कोशिश मत करना। जो प्यार तुमने मुझ पर जताया उसे खत्म करती हूँ। तुम्हारे पिता जिस लड़की से शादी करना चाहते है करके गृहस्थी बसा लेना।

कहकर शालिनी चली गई। राजेश आवाज देता रहा मगर उसने पीछे पलटकर नहीं देखा। राजेश सोचता रहा और अपने घर की ओर चल दिया।

– शीतला माता गली, जावरा, जिला रतलाम (म. प्र.)

❑❑❑

निर्णाऽ

नरसिंह देव जम्वाल

धर्म
इक विश्वास ऐ, इक विबस्था ऐ
इक पाठ ऐ इंसानियत दा
पंछान ऐ इक समाज दी
परमातमा कन्नै आतमा दे
मिलन दी राह ऐ
ते मोक्ष दुआने दा रास्ता ऐ।
धर्म
मंत्र ऐ लोकें गी बक्ख करने दा
यंत्र ऐ लोकें गी लड़ाने दा
राज-पाठ हथिआने दा
ते चौधर जमाने दा
हां, दौनी भेठा ऐ सचाई
पर निर्णाऽ थुआढ़ै हत्थ ऐ
है दिल-दमाग रौशन तां
धर्म दी राह भी रौशन ऐ
जेकर समाज धर्महीन ऐ तां
होग न्हेर-गर्दी ते घ्रिणा
धर्म जेकर अधर्म होआ तां होंगन
बंड्ड, अग्गजनीं ते लुट्टबाजी
सचाई गै शुकल-पक्ख ऐ
सचाई गै कृष्ण-पक्ख ऐ

हां, दौनीं भेठा सचाई ऐ
पर निर्णाऽ थुआढ़ै हत्थ ऐ
हून, निर्णाऽ थुआढ़ै हत्थ ऐ।।

– द्वारा- कमला प्रकाशन, गाँव एवं डाकघर, भलवाल (जम्मू) - 181122

❑❑❑

निर्णय

अनुवाद : कृष्ण शर्मा

धर्म
है एक विश्वास, एक व्यवस्था
एक सबक इंसानियत का
एक समाज की पहचान है
रास्ता है परमात्मा से
आत्मा के मेल का
और मोक्ष दिलवाने का
धर्म -
मंत्र है लोगों को बँटवाने का
यंत्र है लोगो को लड़वाने का
सत्ता हथियाने का
चौधर जमाने का

हाँ, दोनों ओर है सत्य
पर निर्णय आपके हाथ है

है दिल-दिमाग रोशन तो
धर्म की राह भी है रोशन
है धर्महीन समाज तो
होगी अंधेरगर्दी व नफ़रत
और धर्म के अधर्म होने पर-
बँटवारे, आगजनी व लूट!

सत्य ही है पक्ष शुक्ल
सत्य ही है कृष्ण पक्ष
हाँ, दोनों ओर है सत्य
पर निर्णय आपके हाथ है
अब, निर्णय आपके हाथ है।।

– 152/119, पक्की, ढक्की, -180001 (जम्मू)

❑❑❑

कर्णराग

डॉ. एल. हनुमंतय्या

हेत्त कंदननु निम्म मडिलिगे हाकि
दूरदलि निंतिरुवे गगनमुखीयागी
ओंबत्तु तिंगळु होत्त नोवनु मरेतु
एत्तरके एरुवुद बयसुतिरुवे।

अनाथ मगुवन्नु साकबेके एंब
बेसरद किरण वोंदिरबहुदु करुळल्लि
कुंति कष्टदि हडेदु लोकनिंदेगे बेदरि
होळेगे तेल्बिडुवुदु सुलभवेनव्व?

मीनबलेयलि तंदु अच्चरिय अले सरिसि
जीव उळिसिदेयव्व नीनु तायि
निन्न ताप्तनदल्लि ओंदिनितु ननदल्ल
निद्रेयिल्लद रात्रि लेक्कविल्ल।

लोकदरिविगे तरदे हिरिमेगरि तूगलु
तोरेद कंदन शौर्य इन्तु बलिगोडेनु
कृष्ण तंत्रके मणिदु धर्म दर्पके कुणिदु
मातृप्रेमद भिक्षे बेडलारे।
परशुपर्वदलि शापवित्त घळिगे
अब्बरिसि आ क्षणवे कूगबेकेंदिद्दे

अम्मनिरुवा कंद तब्बलि अल्लेंदु
राजऋषि गर्ववनु मुरियबेकेंदिद्दे।
स्त्री कुलद हेम्मेगे करुळकुडि ओलुमेगे
निजद हाडनु ओम्मे हाडबेकेंदिरुवे
गंटलनु सुत्तिरुव बेरळुगळ कत्तरिसि
दनि एत्ति हाडुवेनु कर्णराग।

– 207ए, III 'डी' क्रॉस, II ब्लॉक, III स्टेज, बसवेश्वर नगर, बंगलूरू–79

❑❑❑

कर्णराग

अनुवाद : डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'

जन्मे शिशु को आपकी गोद में डालकर
दूर कहीं खड़ी हूँ गगनमुखी होकर
भूल कर नवमास गर्भस्थ पीड़ा
चाह रही हूँ ऊँचा उठना।

चाहिए क्या पालना अनाथ शिशु को
ऐसी उदासीनता की किरण हो सकती है
अंत:करण में
कुंती प्रसव पीड़ा सहकर, लोकनिंदा से डरकर
नदी में बहा देना आसान है क्या माँ?

मत्स्यजाल में लाकर विस्मय की लहर से
बचाया जीव माँ तुमने
तुम्हारे मातृत्व के सामने मेरा कुछ भी नहीं
निद्राहीन रात की कोई गिनती नहीं।

लोकप्रज्ञा में न लाकर गरिमा पुच्छ झूमने पर
छोड़े शिशु की वीरता की अब न दूँगी बलि
कृष्ण तंत्र से हारकर धर्म दंभ में नाचते
न माँग सकती मातृप्रेम की भिक्षा।

परशुपर्व में शाप देने के क्षण
उसी क्षण जोर से गरजना चाहती थी
कि यह शिशु अनाथ नही, माँ है इसकी
और राजऋषि के गर्व को चाहती थी तोड़ना।

स्त्रीकुल के अभिमान से, शिशु के मोह से
सच का गान एक बार गाना चाहती हूँ
गले में बंधी उंगलियों को काटकर
ऊँची आवाज में गाऊँगी कर्णराग।

– 391, VI मेन रोड, III ब्लॉक, III स्टेज, बसवेश्वर नगर, बंगलूरू-560056

❑❑❑

वसंत का आगमन

शेखर

अमवा की डारि पे छाए बौरें
गुन-गुन कर मंडराएँ भौरें
कली-कली इतराई सी
बाग-बाग है चमन-चमन
देखो, कैसा वसंत का आगमन।
पत्ता-पत्ता बूटा-बूटा
कहता नवजीवन की गाथा
कल-कल करता निर्झर-निर्झर
करता बसंत राज का अभिनंदन
कण-कण महका चंदन-चंदन
आज धरा का आंगन
देखो, कैसा वसंत का आगमन।
सर-सर बहती मंद पवन ने
जग में नव प्राण फूंके
कुंज-कुंज उपवन वन वन में
कंठ कोयलिया कूके
खग प्राणी उल्लास में जैसे
आज मुक्त हुए सब बंधन
देखो, कैसा वसंत का आगमन।

– 31/51, हरमुखा, लंगडे की चौकी, आगरा (उ. प्र.)

❑❑❑

परीक्षाएँ

डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

पग-पग
लेते हैं हम
अपनी ही परीक्षाएँ
जीवन में
कितनी-कितनी बार
अपनी ही दृष्टि में
हारते और जीतते
चले जाते हैं हम
जीवन की
कई-कई बाजियाँ
अपने ही विरुद्ध.....
अपने व अपनों के द्वारा रचे गये
कु-चक्रों व षडयंत्रों के कारण
चलचित्रों के समान
द्रुतगति से
घूमती चली जाती है
हमारे बुरे और अमर्यादित
कृत्यों की रील
हमारी ही आँखों के सामने
डराती हैं हमें
हमारी ही असंख्य बुरी बातें
हमें, सत्यस्वरूपा
यमराज सदृश
समय के निष्पक्ष
न्यायाधीश के समक्ष
न्याय के कटघरे में
खड़े होने के पश्चात्
बहुत बार
हारकर जीतना भी
अच्छा नहीं लगता...
और उसी रूप में
नहीं लगता उतना खराब
बहुत बार जीत कर हारना भी
प्राय:
जीवन के
किसी न किसी मोड़ पर
जीतता है हारा हुआ व्यक्ति भी
.....और उसी अनुपात में
हार जाता है जीता हुआ आदमी भी
अंतर
इस बात का नहीं होता
कि जीता है कौन...?
व हारा है कौन...?
बल्कि
होता है महत्व
इस बात का केवल...कि
कमाई गई यह जीत अथवा हार
कितनी है सत्य-पोषित
कितनी है नितांत मौलिक व अपनी?
असली
हार है वह....

जब जीता हुआ व्यक्ति
भीतर ही भीतर
दबे-कुचले मन से
अभिशप्त व आतंकित हो .....
स्वीकारता है स्वयं को हारा हुआ
और
कैसे कहा जा सकता है
उसे किसी भी रूप में हारा हुआ?
जो हारने पर भी
मानता है स्वयं को विजेता
इतना ही
अंतर होता है
असली हार और नकली जीत में.....
कि एक
जीतकर भी नहीं जीतता
और एक....
हारकर भी नहीं हारता
बस, कहने को
इतना-सा ही अंतर है
मौलिकता व कृत्रिमता में.....
एक पोषता है.....
और दूसरा कोसता है
पग-पग, क्षण-क्षण
अपने द्वारा बुने गए
इस संपूर्ण घटनाक्रम को।

– डीन, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय एवं अध्यक्ष, हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, 157, गढ़ विहार, फेज -1, मोहकमपुर, देहरादून -248005

❑❑❑

हे राम

किश्वर सुल्ताना

हे राम!
तुम्हारा काव्य है आदिकाव्य
सहस्त्राब्दियों से विश्रुत,
अपनी रचनाधर्मिता से
बना युगांतरकारी।

रामकथा की लोक-स्वीकृति
वाल्मीकि रामायण से प्रारंभ हो
तुलसी का मानस दल बन
विश्व पटल पर हुई प्रवाहित।

हिंदेशिया की 'रामायणकाकविन'
'सेरीराम', 'सेरतकांड' नाटक अभिनीत
मलेशिया का 'हिकायत महाराज रावण',
थाइलैंड का 'रामकिएन',

कंबोडिया का 'रामकेर्ति' और
बर्मा का 'रामवत्थु'।
आज भी श्यामदेश में
मंचित होती रामकथा।

संबंधों की सुंदर गाथा
अनुशासन की परिभाषा

हे राम! विनती है तुमसे
क्यों नहीं आ जाते
पुनः, इस धरा को
स्वर्ग बनाने।

हो रहे मानवीय संबंध तार-तार
विकास की अंधी दौड़ में
विनाशकारी शस्त्रों की होड़ में
कहीं हो न जाए
सब समाप्त।

संभाल लो इस धरा को
हे श्याम वर्ण, हे श्याम घन
बरसो, हर्षो, हर्षित मन।

– द्वारा डॉ. जेड. ए. सिद्दीकी, चौक मोहम्मद सईद खान, लांगरखाना, रामपुर-24490। (उ. प्र.)

❑❑❑

भक्तिधारा के अंत:सूत्र

डॉ. गंगा प्रसाद विमल

क्लासिकी तमिल साहित्य की बहुत कम कृतियों का भारतीय और भारतेतर भाषाओं में अनुवाद हो पाया है। इस समृद्ध प्राचीनतम साहित्य परंपरा की अमूल्य धरोहर का ज्ञान अनेक दृष्टियों से मूल्यवान है। खासतौर से समूचे भारत को परिपूर्ण रूप से जानने की यह एक सरलमय विधि कही जाएगी। इसलिए भी कि वैविध्य के एक विचित्र कुल में अस्तित्ववान भारतीय सृजन के गुणधर्म में जिस तरह एक हैं वह अचरज में डालने वाला तत्व है और उसकी अर्थ छवियों का परिपूर्ण ज्ञान अपेक्षा की ऐसी कड़ी है जिसके अभाव से अन्यान्य रहस्यों का उद्घाटन संभव नहीं दीखता। इन रहस्यों के भौतिक और पराभौतिक आधार ज्ञान-विज्ञान के सातत्य को रोके हुए हैं और भारत के उस प्रदेय को संशय में डाले हुए हैं जो रेखांकित करने योग्य, उपादेय और मानवोपयोगी है। विशेष रूप से शैव और वैष्णव आध्यात्मिक धाराओं का उल्लेख करना होगा क्योंकि इन्हीं दो आध्यात्मिक धाराओं से अन्य अनेक धाराओं का प्रस्फुटन हुआ है जिन्हें भक्ति की प्राचीन अभिव्यक्तियाँ कह कर एक सीमित प्रयोजन के घेरे में समेट लिया गया। आज उस प्राचीन साहित्य का अध्ययन भाषा के अभूतपूर्व प्रकार के रूप में तो किया जाता है उसे शताब्दियों में लोक भाषाओं में प्रसारित होने वाले महत्तम विस्तार के रूप में भी देखने की जरूरत है। अर्थात् लोक भाषिक परिसीमाओं से आगे बढ़ उस आधार ने पूरे भारत को भी प्रभावित किया है। इसका अध्ययन भी अभी शेष है। आलवार संतों के भक्ति रसामृत ने आसेतु हिमालय को परितृप्त कर भारत भर में जो प्रभाव अर्जित किया है मात्र उसका अध्ययन भी विलक्षण निष्कर्ष सामने ले आता है।

भक्ति के दक्षिण में उपजने की जो अज्ञात आत्मस्वीकृति भक्ति अन्वेषकों ने की है उसी के आलोक में विशिष्टाद्वैत की बहुप्रयुक्त शाखा के स्वरूप का निर्माण हुआ है। वह परा भक्ति की शाखा तो है किंतु अपनी वास्तविकता में वह अपरा भक्ति है जो वैष्णव धर्मावलंबियों में प्रचलित है। वैष्णव धर्मी यह धारा सारे भारत में विकसित हुई है और अंत: सलिला के रूप में वैष्णव धर्म विश्वासों के बीच सतत् गतिमान है। इसका प्रभाव क्षेत्र समूचा भारत है। एक कालखंड में तो इसे भारत जोड़ने की सबसे महत्तम तरकीब के रूप में देखा जाता था किंतु भारत के सभी हिस्सों में भक्ति की यह लहर प्रखर रूप में गतिशील रही है। भारतीयता का यह एक गुणधर्म है जो अध्यात्म के रास्ते, एक बड़े प्रभाव के रूप में भारत में परिव्याप्त है। उसे हम अनेक स्तरों पर अपनी सामाजिक इकाईयों में सक्रिय पाते हैं। आज के अर्थ लोभी संसार में वह प्रवृति नगरीय जीवन में विरल हो गई है। इसका उल्लेख मात्र इसलिए किया जा रहा है कि उसका प्रदर्शन कभी भी किसी स्तर पर स्वीकार्य नहीं था और अहंकार विसर्जन की विधि

नम्माळ्वार की तिरुवाय्मोळ्ि (मूल तमिल से अनुवाद)/अनुवादक : डॉ. आर. एम. श्रीनिवासन/ प्रकाशक: भाषा संगम, 67/40, तुलाराम बाग, इलाहाबाद 211006 (उत्तर प्रदेश)/प्रकाशन वर्ष : 2018/ पृष्ठ सं. 888/ मूल्य : ₹500/-

अज्ञात के प्रति कृतज्ञता के भाव से संपन्न थी। ठीक उसी के समानांतर प्रेम की उत्कट अभिव्यक्ति को देखें तो वहाँ हमें पदार्थिक और आत्मीय प्रेम की कोटियों में रखकर उस मूल भाव की परीक्षा करनी होगी कि सकाय और अकाय कामनाओं का संसार कितना दृश्य और कितना गोपनीय है। आलवार संतों ने विष्णु की आराधना में जो उत्कटता दिखाई है। वह विशेष प्रकार की है किंतु इसी से वह विशिष्टाद्वैतवादी नहीं है बल्कि विशिष्टाद्वैत का संस्पर्श उस सातत्य में है जो विशिष्टाद्वैत का तत्व है। अर्थात् कोई भी आत्मोन्नति चाहने वाला व्यक्ति केवल उस दिन या उस काल के लिए व्यग्र नहीं होता बल्कि उसकी कामना होती है कि यह प्रकाश सदैव बना रहे। इसीलिए वे लोग जो संतों से प्रभावित होते हैं बारंबार उस विलक्षण तृप्ति की कामना करते रहते हैं।

आलवार संतों ने अपने काव्यानुशासन में ही जीवनानुभवों के सातत्य की उपस्थिति अनिवार्य घोषित की है और इसी कारण वहाँ मोक्ष की कामना नहीं है। श्रीकृष्ण के प्रति गहरी आसक्ति केवल इस जन्म की ही माँग नहीं है। उसका यही पहलू महत्वपूर्ण है कि वह सदैव, हर काल में और हर क्षण बना रहे। यही आराध्य के प्रति तन्मय भक्ति है जो अनेक पासुरों का विषय बनी है। नम्मालवार की स्तुतियाँ तिरुवाय्यौलि मध्यकाल को समग्र रूप से प्रभावित करने की क्षमताएँ सूचीबद्ध करती हैं। भक्ति का यह स्वरूप अन्य भक्तिधारों में नहीं मिलता। वहाँ केवल नाम स्मरण ही इस जीवन का लक्ष्य घोषित किया जाता है किंतु आलवार संतों ने अपने काव्य में जिस नवरूता का प्रयोग किया है वह नित्य नूतन तत्व है ईश्वर के अति सन्निकट रहने के भाव की निर्मिति और यहीं पर हम एक पृथक भक्तिवादी रूप का एक अनिर्वचनीय आकार पाते हैं। नम्मालवार की तिरुवाय्यौलि के सभी खंडों में हमें उसकी उपस्थिति मिलती हैं वह एक प्रकार की अनन्यासक्ति है जिसे सांसारिक प्रतिबंधों और अनुशासनों में नहीं बाँधा जा सकता। उसे अराजक स्वतंत्रता भी नहीं कह सकते। उसे सम्मोहन की सुसुप्ति का लक्षण भी नहीं माना जा सकता। वस्तुत: यह समर्पण की एक ऐसी स्थिति है जिसमें 'स्व' का परिपूर्ण समर्पण सभी लक्ष्यों की सिद्धि के समान है। अध्यात्म का रहस्यपूर्ण विषय होते हुए भी जब वह सांसारिक जटिलताओं के बीच आ जाता है तो इसकी अर्थ छवियाँ बदल जाती हैं। अब एक संपूर्ण समर्पित नायिका कह उठती है कि, "मुझे परमात्मा के रूप सौंदर्य के प्रत्येक अंगावयव को अलग-अलग रूपों में और एक साथ प्रत्यक्ष दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं स्वयं को क्यों दुर्बल समझती हूँ" तो संशय होता है कि इस आध्यात्मिक प्रेम की सभी छटाओं में सांसारिक आसक्ति के गुण क्योंकर आए हैं तो इसका उत्तर मात्र यह होगा कि आलवार संतों ने सुंदरी की तमयासक्ति की चरम अवस्था का वर्णन करने के लिए ऐसा किया है। सप्तम तिरुवाय्यौलि एलैयरावि की व्याख्यावतारिका में भाष्यकार डॉ. आर. एम. श्रीनिवासन का मत स्पष्ट है जो आलवार संतों की दृष्टि का अनुमान देता है। यह आसक्ति की विचित्र तन्मयता हैं परम आराध्य का सान्निध्य उस कृपा का प्रतिफल है जो सर्वत्र समान है। अर्थात् वह कम या ज्यादा रूपों में नहीं आंकी जा सकती। उसका प्रभाव समर्पण की तीव्रता में देखा जा सकता है। जितनी भी उत्कटता होगी, उतना ही उसकी प्रभावदशा प्रभावित होगी और हम प्रत्युत्तर में उसकी समग्रता का बोध भी कर सकते हैं परंतु आध्यात्मिक धरातल पर यह परिघटना भिन्न होती है।

आलवार संतों ने समर्पित भक्ति की उच्चता को ही स्थान दिया है। उस भक्ति के रूपाकार सांसारिक कारणों से जन्म लेकर लोक की लोकोत्तर यात्रा का बोधपरक अर्थ देते हैं। भक्ति में नैरंतर्य की स्थिति का विश्लेषण करते हुए आलवार संतों ने अपनी पदावलियों में उसे अविभाजित स्वीकार किया है। इसीलिए हम देखते हैं कि उन्मन अवस्था में नायिका अपनी स्थिति को तो भूले रहती है किंतु प्रियतम के प्रति संवेदना के क्षेत्र में वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं सहती बल्कि अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विलक्षण उपालंभ सृजित करती है। संभवत: यह स्त्री सामाजिकता से उपजने वाला तत्व है। भाव के रूप में तो वे संपूर्ण समर्पण की भाँति ही एक पृथक प्रकार के प्रतिसाद की कामना करती हैं। तथापि प्रिय के प्रति अपने पूर्णाधिकार के साथ समझौता नहीं करती। भक्त की प्रियता का आदर्श परम आराध्य ही है। परंतु परम आराध्य कैसा है? इसकी विवेचना कभी सांसारिक हैं तो कभी

पारलौकिक। तथापि वह श्रेष्ठता की दृष्टि से अपूर्व है। अर्थात् वह सामान्य नहीं है। असाधारण है। यह असाधारणता तो मानवेतर ही हो सकती है अत: हमारे परम आराध्य के गुण हैं जो साधारणजनों में नहीं पाए जाते। हम अपने प्रबंध काव्यों को याद करें तो असाधारण गुणों का अर्थ है जो सामान्य रूप से प्रत्येक इकाई में अनुपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए वह परकातरता के गुणों से समृद्ध हैं अब अगर भक्त स्वयं कातर है तो उसे मुक्त करने वाला, कातर भाव से अधिक तीव्र परकातरता के गुणों से संपन्न कोई महत्तम व्यक्तित्व ही होगा और यह निर्विवाद है कि वह अनुपम व्यक्तित्व ईश्वर कोटि का ही है। सप्तम दशक-सप्तम तिरुवाय्योलि में नायिका के रूप में भक्ति भाव प्रदर्शन भिन्न कोटि का है, "परांकुश नायिका परमात्मा के दिव्य अधरों से प्रभावित हो जाती है। नील मेघश्याम भगवान के दिव्य देह के कौव्वे फल से अधर विशुद्ध एवं पके फल समान हैं। सौंदर्य, सौकुमार्यादि से परिपूर्ण भगवान के अधरों से मोहित हूँ, मैं तो बड़ी पापिन हूँ। इसलिए उन अधरों का भोग नहीं कर पा रही हूँ। जहाँ देखूँ वही सारी दिशाओं में भगवान के अधर मुझे दिखाई दे रहे हैं और मेरे प्राण निकल रहे हैं। अमृत भी विष हो जाने जैसा मैंने पाप कर दिया है।" भगवान के प्रति आसिक्त का यह चरम भाव पारंपरिक है किंतु प्रेम की तन्मयता का अन्यतम दृष्टांत भी है। इससे मात्र यही निष्कर्ष निकलता है कि कृष्ण भक्ति धारा में तन्मयता का महत्व है। यह मात्र संयोग है कि मध्यकाल के अधिकांश कवियों और परिव्राजकों ने तन्मय भक्ति का राग वैभव बढ़ने दिया। आलवारों ने उसकी परिव्याप्ति में उदारता बरतते हुए स्पष्ट किया है कि "परम सत्ता की कृपा से मेरी अनुभूति रूपी ज्ञान के भीतर वे विराजमान हैं।" अर्थात् वे जो परसत्ता के केंद्र, परमसत्ता के कारण और परसत्ता के अनुभव हैं। उनके समक्ष उच्चता और हेमता का ही परिमाप है जो उनकी श्रेष्ठता का आधार बनाता है। आलवार इसी प्रसंग में स्पष्ट करते हैं कि "मेरी प्रस्तुत इच्छा उनकी कृपा से संपन्न हो पाई है। विषय-ज्ञान, प्राण, देह आदि, अपार प्रकृति विकार, महत अहंकार आदि तत्व, मूल पदार्थ आदि हेय हैं, स्थिर एवं स्थायी नहीं हैं, इस सत्य को उनकी कृपा से ही मैं जान पाया। उनके बिना मेरी आत्मा नहीं है-- इस सत्य की अनुभूति का परम श्रेय चेतना को भी मुझे प्रदान करते हुए मेरे भीतर प्रवेश करके मैं परमात्मा के साथ एक्य हो गया।" उपरोक्त अंश अष्टम तिरुवाय्योलि कण्गल सिवंदु पासुर में वर्णित हैं

आलवार परंपरा की भक्ति को सारे भारत में फैलाने वाले कारकों पर ही अब बात की जा सकती है। हमारे साहित्येतिहासकारों के निष्कर्षों की पड़ताल करें तो उन्होंने विष्णु भगवान के लीलामय रूप की विस्तृति के संदर्भ में ही इस फैलाव को सत्य माना जबकि दक्षिण में उपजी भक्ति के उत्तर आरोहरण की गाथा का विधिवत अध्ययन कुछ भिन्न प्रकार के निष्कर्ष दे डालता है। भक्ति की इस धारा में सत्तापक्षीय राजनीति की उपेक्षा की बात करें तो कई आधार दृश्यमान दिखाई देते हैं अर्थात् उस काल की सत्ताओं का मुख्य शत्रु तो भारत की यही विलक्षण एकता थी जो विनम्रता के उच्च गुणों से संचालित थी और सत्ता को कर्मक्षेत्रीय दस्युता समझती थी। आलावरों के व्यापक प्रसार का कारण वह कला रूप भी था जो संगीत के रूप में, लोक संगीत के रूप में पूरे देश में फैलता रहा। सत्ताओं के मानचित्र बदलते रहे किंतु भारत का स्वभाव, भारत होने का भाव अटूट रहा। वह भी सिर्फ कलाओं और साहित्य में। उसका परिपूर्ण अध्ययन अब भी अपेक्षित है।

– 112, साउथ पार्क, कालका जी, नई दिल्ली-110019

❑❑❑

आत्माख्यान यायावरी उपन्यास : 'रोमा पुत्री के नाम'

डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'

प्रख्यात साहित्यकार एवं नृतत्ववेत्ता, पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह राशि की सद्य: प्रकाशित 'रोमा पुत्री के नाम' नि:संदेह विलक्षण कृति कही जा सकती है। इस पुस्तक में डॉ. शशि के 'नृतत्ववेत्ता-व्यक्तित्व' और अत्यंत संवेदनशील 'कवि के व्यक्तित्व' का अनूठा संगम पाठकों को निश्चय ही आकृष्ट करेगा और गंभीर, गूढ़ तथा नीरस विषय को आकर्षक ढंग से पाठकों तक पहुँचाने के लिए उनकी कृति का अभिनंदन भी अवश्य होगा।

पुस्तक के फ्लैप पर लिखा गया है- "श्याम सिंह शशि ने अनेक विधाओं में महत्वपूर्ण लेखन किया है। उन्होंने विश्व के अनेक देशों की यात्रा की है। वहाँ की जीवन-स्थिति, संस्कृति और मन: स्थिति का गहन अध्ययन किया है। उन्होंने लगभग एक हजार वर्ष पूर्व भारत छोड़कर गए रोमा समुदाय पर विशेष लेखन किया है तीन करोड़ यायावर भारतवंशी रोमा समुदायों की जीवन-पद्धति का उनको विशेषज्ञ माना जाता है। 'रोमा पुत्री के नाम' उनकी विशेषता का एक और रचनात्मक चरण है।"

नि:संदेह, एक नृतत्ववेत्ता के रूप में अनेक देशों की यात्राएँ करने वाले, महापंडित राहुल सांकृत्यायन के 'उत्तराधिकारी- यायावर' डॉ. श्याम सिंह शशि ने जहाँ भारत की 'गद्दी जनजातियों' का अध्ययन करके 'नोमेड्स ऑफ हिमालयाज' जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ दिए हैं, वहीं पूरे यूरोप और अमरीका सहित अनेक देशों में फैले 'भारतवंशी' रोमाओं पर भी प्रामाणिक शोधकार्य किया है, जिसके लिए डॉ. शशि को विश्वव्यापी स्वीकृति एवं प्रसिद्धि मिली है।

पुस्तक के फ्लैप पर आगे लिखा है- "आत्माख्यान यायावरी उपन्यास 'रोमा पुत्री के नाम' श्याम सिंह शशि की रचनाशीलता का नया आयाम है। लेखक के शब्दों में- "यह यायावरी उपन्यास कलेवर में भले ही बहुत बड़ा न लगे किंतु इसमें एक अनूठी दुनिया है, जो यथार्थ की अद्भुत यात्रा है। कला और साहित्य का सत्यं-शिवं सुंदरम् के रूप में यायावरी प्रस्तुतिकरण है। मेरे नए-पुराने यात्रा-विवरणों की अनकही कथा है।" लेखक ने परम घुमक्कड़ महापंडित राहुल सांकृत्यायन का इस संदर्भ में स्मरण किया है। इस उपन्यास को मानवीय अधिकारों के लिए संघर्षरत भारतवंशी रोमा समाज का दस्तावेज भी कहा जा सकता है।"

मेरी दृष्टि में तो डॉ. शशि की यह कृति साहित्य-जगत की अनूठी कृति इसलिए बन गई है कि इसमें आधुनिक गद्य की प्राय: सभी विधाओं का समावेश चाहे-अनचाहे हो गया है। स्वयं रचनाकार ने इस कृति को 'आत्माख्यान यायावरी उपन्यास' माना है उपन्यास के केंद्र में 'रोमा पुत्री' है, जिसे लिखे गए पत्र से इस उपन्यास का आरंभ होता है। पाठकों की जिज्ञासा को जगाता हुआ संबोधन है- 'डियर रोमा डॉटर' और बस, यही से शुरू हो जाता है लेखक का 'आत्माख्यान' जो हिंदी-जगत को एक नई विधा दे रहा है-

---

'रोमा पुत्री के नाम' लेखक- श्याम सिंह शशि/ प्रकाशक-आर्य प्रकाशन मंडल/ 24/4855-56/ अंसारी रोड, दरियांगज, नई दिल्ली / प्रथम संस्करण : 2018/ पृ. 151/ मूल्य ₹300/-

'यायावरी-उपन्यास' पाठकों के लिए सर्वथा अजानी-अछूती विधा है।

एक हजार वर्ष पूर्व भारत मूल के इन 'रोमाओं' के नृतत्वशास्त्रीय इतिहास को अनूठे 'कथारस' में सराबोर कर उपन्यास के रूप में डॉ. शशि ने ऐसा विलक्षण प्रयोग किया है। जो आने वाली पीढ़ियों को 'रोमा' जातियों के संघर्षों का सही-सही ज्ञान कराता रहेगा।

डॉ. शशि के इस 'आत्माख्यान यायावरी उपन्यास' में नृतत्ववेता और साहित्यकार का ऐसा अनूठा संगम पाठकों को संभवत: पहली बार देखने को मिलेगा। निश्चय ही एक 'दुरूह और गूढ़' विषय को 'कथा-रस' के माध्यम से प्रस्तुत करने में आशातीत सफलता मिली है।

डॉ. शशि की यह कृति 'रोमा पुत्री के नाम' हिंदी-साहित्य की अनेक विधाओं यथा- 'डायरी लेखन', 'रिपोर्ताजन', 'रेखाचित्र', 'संस्मरण', 'साक्षात्कार', 'अनुवाद', आदि को एक साथ समेटती चली है और उपन्यास के कलेवर में 'यात्रा-वर्णन' तो यह प्रत्यक्ष रूप से है ही।

अब मैं आता हूँ इस अद्‌भुत कृति के उस 'कथ्य' पर जो एक हजार वर्ष के इतिहास से जुड़ा हुआ है। डॉ. श्याम सिंह शशि ने स्वयं लिखा है- "इस ऐतिहासिक कृति में समाहित है एक यायावरी दर्द। कोई इसे ह्यूमन राइट्स से जूझता भारतवंशी रोमाओं का दस्तावेज़ भी कह सकता हैं। नोबेल पुरस्कार विजेता दुआतरे का उन्यास तुमने पढ़ा होगा। रोमा-जीवन पर कल्पना-प्रधान नॉवेल्स तथा शोध-ग्रंथ देखे होंगे, किंतु यह उन सबसे अलग है।"(पृ.-10)

हिंदी-अंग्रेजी में अनेक पुस्तकों के प्रणेता, डॉ. शशि राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त नृतत्ववेत्ता (एंथ्रोपोलोजिस्ट) के रूप में 'रोमा' समुदाय पर जितना अध्ययन अपनी विदेश यात्राओं में करते रहे हैं, वही 'रोमा पुत्री के नाम' उनकी इस कृति को मूल्यवान और यादगार पुस्तक बनाने में सफल हुआ है।

इस कृति की सबसे बड़ी विशेषता है 'संवाद-शैली' जो पाठक को लेखक और रोमा पुत्री से निरंतर बाँधे रखती है और 'यायावरी-आख्यान' में डूबा भारतवंशी रोमाओं के दर्द और पीड़ा से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इस कृति में डॉ. शशि ने 'पत्र-शैली' का प्रभावी प्रयोग किया है और 'रोमा पुत्री' को पत्र-शैली में लेखक 'संवादों' के माध्यम से जब-तब कुरेद-कुरेद कर 'रोमा-इतिहास' के अछूते प्रसंग पाठकों तक ले आता है। संवाद-शैली का चमत्कार देखिए जो आपको लुभाएगा भी और हिलाएगा भी।

लेखक की कलम ने प्रश्न किए- "कौन है, जिसने रक्त-शुद्‌धता के नाम पर आर्यत्व का हनन किया है?"

"कौन है, जिसकी आवाज़ में फासीवाद आज भी सिर उठाकर निहत्थे लोगों पर प्रहार कर रहा है?"

"कौन है जो आज जिहाद के नाम पर लादेनों की जमात खड़ी कर रहा है?"

रोमा पुत्री चित्रों में इन प्रश्नों का उत्तर देना चाहती है कि "उसकी कला वह सब कुछ कह दे, जिसे सहस्त्रों शब्द नहीं कह पाते।" (पृष्ठ-11 तथा 12)

इस कृति में यायावर उपन्यासकार रोमा-विश्व की अपनी पहली यात्रा के माध्यम से रोमा समाज का पीड़ा-भरा इतिहास उजागर करते हैं। इस यात्रा में वे विश्व के अनेक नृतत्ववेततताओं से मिलते हैं, तो युगोस्लाविया के रोमा समाज का अनुभव लिखते हैं- "कोसोव के रोमा विद्‌वान अपने दुख की कहानी सुनाते हुए भावुक हो उठे और बोले- "डॉक्टर, आप लेखक हैं न, क्या आप हमारी आवाज़ को अपनी कलम से हमारे करोड़ों भारतीय भाईयों तक नहीं पहुँचा सकते? हम उनसे कुछ नहीं मांगते, केवल प्यार मांगते हैं।" (पृष्ठ- 17)

संभवत: यही कारण रहा कि डॉ. शशि ने अपना पूरा जीवन भारतवंशी रोमाओं की आवाज़ बनकर उनकी पीड़ा पूरे विश्व तक पहुँचाने में लगा दिया है। यह औपन्यासिक कृति डॉ. श्याम सिंह शशि की उनके तमाम जीवन की साधना भी है।

लेखक ने 'रोमा पुत्री' को 'कैथी' नाम दिया है, जो कई भाषाएँ जानती है, मूलत: चित्रकार है, कई बार भारत आ चुकी हैं। राधाकृष्ण, गणेश और अन्य भारतीय देवी-देवताओं के चित्र भी बनाती हैं कैथी और लेखक के एक वार्तालाप से हम रोमा-जीवन की त्रासदी का अनुमान कर सकते हैं- "और तुम जानते हो लेखक, कितने भेड़ियों से पाला पड़ा है मेरी एज़ को? मैंने उन्हें कज़न तथा नजदीकी रिश्तों में भी पाया है। नारी चाहे

किसी देश की हो, उसे इन परिस्थितियों से जूझना ही पड़ेगा। यह उस पर निर्भर है कि वह कितनी सशक्त है? और अपनी रक्षा स्वयं कर सकती है।" (पृष्ठ-20)

रोमा समाज की संस्कृति में भारतीयता कैसे घुली हुई है, इसका उदाहरण डॉ. श्याम सिंह शशि देते हैं- "लेखक को 'रामकली' तथा -'अनिता' नाम यहाँ कई परिवारों में सुनने को मिले। लेकिन यह जानकर आश्चर्य हुआ कि एक भाई का नाम सुधाकांत है तो दूसरे का मुस्तफा और तीसरे का जॉर्ज। हिंदू, मुस्लिम तथा ईसाई सभी धर्मों के नाम एक ही परिवार में देखे जा सकते हैं।" (पृष्ठ-46)

रोमाओं का भारतवंशी होना ही डॉ. शशि के लिए उनसे जुड़ने का कारण बना है। डॉ. शशि लिखते हैं- "एक रूसी शोधकर्ता एम.जे. कोनाविन के अनुसार रूस में जिप्सियों ने ब्रह्मा, इंद्र, विष्णु, लक्ष्मी और पृथ्वी की कथाओं को अक्षुण्ण बनाए रखा है। पृथ्वी को वे 'माता' कहते हैं।" (पृष्ठ-57)

रोमा इतिहास को उजागर करते इस 'आत्माख्यान यायावरी उपन्यास' में यत्र-यत्र लेखक अपने 'भारत' और 'गंगा' को याद करता रहा है। यह विशेषता ही प्रत्येक पाठक को उनसे जोड़ती है।

– 74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की- 247667

❑❑❑

रचनाधर्मिता का अद्‌वितीय दस्तावेज 'अनुगूँज'

डॉ. संतोष खन्ना

जब कोई कवि वाद-विवाद से ऊपर उठ कर रचना करने लगता हैं तो उसकी कविता में जीवन की उत्कट संवेदनशीलता और संकल्प, मानव मूल्य और मानवीय प्रतिमान, मानवीय चेतना और चिंतन, मानवीयता और मानवीय सूक्ष्म अनुभूतियों का प्रकाश पुंज आसपास के यथार्थ के धरातल पर बिखरे बिंबों के सान्निध्य में अपनी रचनाधर्मिता में रच-बस कर प्रस्फुटित हो मूर्तिमान हो उठता हैं। कवि के समक्ष एक शाश्वत प्रश्न हमेशा रहा है स्वयं की खोज का, जीवन की जटिलताओं और दुरूहताओं को हल करने का और अंधेरे से उजाले की ओर गमन का, वह अपने मन की अर्गलाओं को खोलकर इन सब प्रश्नों के उत्तर पा लेना चाहता है। यह सब करना सुगम नहीं होता परंतु इसके लिए संघर्ष के रास्ते से पूरा जोखिम उठाता हुआ मुश्किलों से टकराता हुआ वह भविष्य पथ का निर्माण करता है। वही कवि की शक्ति, वही उपलब्धि और वही प्राप्ति होती हैं और वही तलाश ही उसके समय के सच को उद्‌घाटित करती है।

श्री प्रदीप कुमार अग्रवाल 'प्रदीप्त' का सद्य प्रकाशित 'अनुगूँज' काव्य-संग्रह 'देवत्व की पवित्र 'अनुगूँज' को अपने गहन अंतर्मन से निकालकर अद्‌म्य विश्वास के साथ उसे मनुष्यता में ढालने का एक अनोखा पराक्रम है । 143 कविताओं का 192 पृष्ठ का यह बृहद् काव्य-संग्रह जीवन की अगणित विविध भावनाओं और अनुभूतियों को स्वयं में समेटे शब्द की महता का जितनी बार भी बखान करता है शब्द सत्य को पुकार कर उसे संकल्प से संवार लेते है। शब्द की ताकत ही उसे परेशानियों से बाहर निकालकर रोशनी का परचम लहराने लगती है। तब जीवन के कठोर यथार्थ में हर प्रकार के विष भी अमृत में तबदील हो जाते हैं।

कवि ने इस काव्य-संग्रह के आरंभ में 'अपनी बात' में अपना हृदय खोलकर रख दिया है "वेदनाओं और प्रताड़नाओं का लंबा इतिहास बना एक हिस्सा, कुछ भोगा हुआ, कुछ ओटा हुआ, समय ने सुख को हमेशा क्षणिक सिद्‌ध करने में कसर नहीं रखी, सहज ही अपनाया बचे हुए भाग्य को, अपने में जी कर अपार पीड़ा के साथ मित्रवत्, किंतु जीवन का अर्थ तलाशने की साध अवचेतन को सालती रही। जीवन और विराट के विराट प्रश्नों से मुठभेड़ करती कवि की यह कविताएँ कभी समय से भी भिड़ जाती हैं, संघर्ष, संवेदना और साहस का संबल ले हार न मानने की ठान लेती हैं जिसका परिणाम यह होता है कि "वक्त ने तमाम गुनाहों की माफी मांग ली" कभी अपने आप से और कभी विराट से मुलाकात की अभिन्न अनुगूँज की संगीतमय स्वर लहरियों का अनहद नाद आरंभ से अंत तक इन कविताओं में सुनाई देता है।

उन्हीं पलों में अचानक
सत्य ने विश्वास को पुकारा
अहसास की परछाई ने तूफान को
निर्निभेष निहारते, संकल्प से संवारा
('वो पल' पृ.13)

'अनुगूँज' (काव्य-संग्रह) लेखक- प्रदीप कुमार अग्रवाल 'प्रदीप्त'/ प्रकाशक : अनुराधा प्रकाशन, नई दिल्ली/ प्रकाशन वर्ष 2018/ पृ. 192/ मूल्य ₹250/-

प्रदीप कुमार अग्रवाल 'प्रदीप्त' का कोई एक दशक पहले काव्य-संग्रह 'हल्फनामा' प्रकाशित हुआ था जो काफी चर्चित रहा। इस समय की उल्लेखनीय बात यह है कि इस समय अर्थात् वर्ष 2018 के तीसरी तिमाही में उनके एक साथ दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। ऊपर उनके काव्य-संग्रह के साथ ही प्रकाशित हुए दूसरे काव्य-संग्रह 'अंतर्नाद' का यहाँ उल्लेख भी आवश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि यह काव्य-संग्रह उनका 186 पृष्ठ का है जिसमें 143 कविताएँ शामिल की गई हैं।

इस काव्य-संग्रह की अपनी बात में वह कहते हैं "ऐसे ही अंतहीन अनुभवों के सार पर टिका होता है हमारा अस्तित्व-हमारा व्यक्तित्व और हमारा कृतित्व।" इस संकलन में इन्हीं अनुभूतियों का एक धुंधला अक्स : कुछ व्यक्तिगत्-कुछ समष्टिगत्, संवेदनशील पाठकों के लिए प्रस्तुत है। भाषा-छंद-बंध के पारंपरिक स्वरूपों से हटकर, यथार्थ के सपाट धरातल पर सीधे मार्ग तय करती इन काव्यानुभूतियों का एक ही मंतव्य है-पाठक को अपने साथ लिए चलना और पड़ाव-दर-पड़ाव तय करते हुए गंतव्य तक पहुँचना जिसे लेखक का 'अंतर्नाद' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

इस प्रकार इस काव्य-संग्रह की कविताओं में देश के जन-जन की कई समस्याओं को स्वर दिया गया है। इस काव्य-संग्रह में कुछ शानदार संवेदनशील गीत और गजलें भी ली गई हैं। इस काव्य-संग्रह के कथ्य-कलेवर-तेवर, विचार-विस्तार, भाषा और बिंबो से पूर्ण रूप से परिचित होने के लिए इसका अलग से स्वतंत्र अवलोकन-समालोचन आवश्यक होगा। यहाँ केवल इस संग्रह की प्रथम कविता नए मिलेनियम की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं-

क्या कभी बसंत लौटेगा
पूरे आसमान से उतर कर
या चिंदी-चिंदी होकर बिखर जाएँगे
अनखिले-अनगिन फूलों के सपने
जो दुनिया में आने की खता पर
माफी के सिवा कुछ नही मांगते
नई सहस्राब्दी के मालिकों सुनो-
तुम इन्हीं के बदौलत बंद कमरों में हो
(नये मिलेनियम, पृष्ठ-15)

वैसे कवि के नाम यहाँ कुछ उपलब्धियों का उल्लेख करना समीचीन होगा। प्रदीप जी को आपातकाल के दौरान वर्ष 1976 में, दिल्ली विश्वविद्यालय के सर्वश्रेष्ठ छात्र-कवि के रूप में और 1985 में भारतीय ज्ञानपीठ की युवा काव्य प्रतियोगिता में सराहनीय कृति (काव्य संकलन 'प्रस्फुटन') के लिए पुरस्कृत किया गया था। वर्ष 1991 में राष्ट्रभाषा गौरव उपाधि एवं वर्ष 2001 में राजभाषा रत्न सम्मान भी प्राप्त हुआ। रचनात्मक लेखन और श्रेष्ठ राजभाषा कार्य निष्पादन हेतु भारत सरकार, नगर राजभाषा समितियों और गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग एवं अन्य मंचों से वह निरंतर पुरस्कृत एवं सम्मानित किए जाते रहे हैं।

कवि के जीवन का मूलमंत्र भारतीय संस्कृति का उदात्त 'वसुधैव कुटुंबकम्' का वेदवाक्य रहा है। वैसे भी भारत में कविता का उद्देश्य सामान्यतया नकार को उकेर साकार की प्रतिस्थापना करना होता है, "भारत ने कविता को मंगल कहा है सदा, कविता की धारा में मंगल बहा है सदा"। जैसे जल का गुण स्वच्छता है अगर कहीं नकार स्थितियों और अनुभूतियों का वर्णन आता है। उसका उद्देश्य प्रक्षालन या विरेचन होता है। इस काव्य-संग्रह की लगभग हर कविता के माध्यम से कवि ने इसी प्रकार के भावों को उकेरा है-

स्मृतियों, संवेदनाओं और अनुभूतियों जैसे
बेमेल कबाड़ के कोठार पर पड़ा
पुराना जंग लगा, जर्जर वेदनाओं का भारी ताला
जाने कैसे कब खुल गया - नहीं जानता
('साभार' पृष्ठ-96)

कवि ने अब उसमें "जला दी थी एक धूप सुगंध बिखरेती हुई" ताकि वह धूप की सुगंध उस तक पहुँचती रहे जो उसके अंर्तमन को महकाए रखे। यही नही, कवि की कविताएँ स्व की अनवरत खोजकर मनुष्य के अंर्तमन में छिपे देवत्व को धरातल पर ला उसे हर जीवन का अनिवार्य हिस्सा बना देना चाहती हैं। कवि आशा, साहस और जिजीविषा के कवि हैं। कविता पढ़कर अहसास होता है कि कवि शब्दों के ही चितेरे नहीं बल्कि चित्रकार की भाँति हर भावना, हर दृश्य, हर परिवेश जीवंत कर देते हैं। आश्चर्य करना पड़ता है कि कवि का भाषा पर इतना अधिक अधिकार है कि शब्द और बिंब बहती धारा से सहज ही प्रवाहित होते हैं कि

उनमें सूर्य की किरणों का अक्श उन्हें शोभायमान और आलोकित कर जाता है। उनमें प्रकृति के बिंबों की भरमार है बल्कि प्रकृति उनके जीवन के हर क्षेत्र में परिवेश के साथ उपस्थित है:-

फूल हैं-परिंदे हैं
पर्वत हैं-सागर हैं
पर मैं नहीं हूँ
खोजता-फिरता हूँ खुद को
मैं कहाँ-क्या मैं कहीं हूँ ? ('मैं कहाँ' कविता से पृ. 95)

प्रदीप जी की कविता में दर्द है, तड़पन है, निराशा है, उदासी है, अवसाद है, अकेलापन है परंतु उनकी कविता की विशेषता यही है कि वे हर नकारात्मक अनुभूति को सकारात्मक उपलब्धि में छान कर उसे अपने जीवन का संबल बना लेते हैं वह "हौसला खुद पर रखेंगे सत्य पर विश्वास कर तब ही मंजिल को छुएगा खत्म होगा ये सफर।" कवि ने वीराने भरे जीवन में रचनात्मकता को भी एक हथियार बनाकर रखा है। प्रदीप जी एक ऐसे कवि है जिनके सच्चाई, विश्वास, पवित्रता जैसे शब्द इन कविताओं की थाती बन गये हैं-

खुशी किसे कहते हैं मन की
मुस्कानों में गाता प्यार।
टूटे शब्द जुड़ा करते हैं
जुड़ता है जैसे संसार।
(अर्थ पृ 35)

प्रदीप जी की कविताओं की एक अन्य यह विशेषता भी है कि उनमें काव्य तत्व और लयतत्व का मिश्रण मौजूद हैं। इसलिए कविता के गौरव के लिए यह जरूरी है कि उसके प्राणतत्व लयात्मकता को बचाना है। इस काव्य-संग्रह में अनेक सुंदर गीत सुशोभित हो रहे है। तो कुछ सुंदर गजले हैं। जहाँ गीत नहीं भी हैं वहाँ उसमें सतत प्रवाहित होती एक संगीतात्मक लय इन कविताओं को भी गीत की श्रेणी में ला खड़ा करती हैं।

सब कविताओं में मनुष्यता की पीड़ा, दुख-दर्द की गूँज सुनाई देती है। इन कविताओं का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि आज आदमी की संवेदना चुकती जा रही हैं आँखो का पानी मर-सा गया है। कवि की कविताओं में संवेदना का विस्तार है। कवि मूलत: एक संवेदनशील और एक सच्चा पारिवारिक व्यक्ति है और वह अपना सब कुछ परिवार पर न्योछावर कर देना चाहता है। देश में एक राष्ट्रीयकृत बैंक में एक जिम्मेदार अधिकारी होने के नाते देश के अनेक शहरों में तबादलों के कारण वह बहुत समय तक अपने परिवार के साथ नहीं रह पाता। उसके कार्यस्थल में बार-बार परिवर्तन के कारण उसके जीवन में बराबर बना अकेलापन एवं खालीपन इस संग्रह की बहुत सारी कविताओं में वर्णित हुआ है।

कवि की इस तरह की अनुभूतियाँ बहुत ही सूक्ष्म, सुंदर और पावनता की प्रतीक हैं, दूर रहते हुए भी वह कभी आस का दामन हाथ से नहीं जाने देता। उसकी लेखनी पुकार उठती है:-

खत आएगा कभी
जिस पर लिखा होगा मेरा नाम
जिसमें होगा वह पैगाम
जो उमर भर का सबब बन गया
मगर अब तक नहीं पहुँचा। ('खत' पृष्ठ 33)

इस काव्य-संग्रह में सम्मिलित अनेक गीतों से गुजरते हुए पाठको को उनमें व्यक्त सूक्ष्म, सुंदर और मार्मिक अनुभूति-प्रवण संवेदनाएँ विमुग्ध कर देती हैं। गीतों के रेशे-रेशे में संगीतमय लय और सघन सांद्र संवेदना कभी प्यार-दुलार और विछोह-वियोग की भंगिमाएँ हृदयतल को पूरी शिद्दत के साथ उद्वेलित कर देती हैं तो कभी इन गीतों में छलकते अतींद्रिय भाव अंतर्तम के खोहों को खोल उदात्त भावों का उन्मेष कर देते हैं। "इतने गीत बनाते हो/ विचार कहाँ से लाते हो।" इस मासूस प्रश्न के उत्तर में कवि की कल्पना सीप में मोती, फूलो की सुंगध और रिमझिम बरसते बादलों की पावन बूंदो से बरसते शब्दों से रच देता हैं सतरंगा इंद्रधनुष और कह उठता है:

आकाश का मन भर आता है
तब प्रेरणा का असीम संसार
आँखों में मुस्कुराता है,
तब उसके गीतों का जन्म होता है।
मैं गीतों से खुश हो लेता
कुछ हँस लेता कुछ रो लेता।
कागज कलम बने हैं साथी
इनमें संचित अपनी थाती।

सुख-दुख सम हो सकती हैं।
('सवाल' पृ. 110)

कवि ने तो ऐसे गीतों की रचना की है जो संगीत का साथ पा कर जीवंत हो अपनी एक नई पहचान बनाते हैं जो पाठकों/ श्रोताओं के मन को आह्लाद से परिपूर्ण कर देते हैं। एक रोमानी गीत देखिए:-

रख दो अधर मेरे माथे पर
अगन दहकती थम जाएगी
पोर-पोर जो पीर कसकती
शीतल चंदन बन जाएगी।

एक और गीत की पंक्तियाँ देखें:-

पा न सका खोने तो दो
हँस न सका रोने तो दो।
आ न सका जाने तो दो
वो दर्द फिर पाने तो दो।

कवि की कविताएँ सुभाषितों से भरी पड़ी हैं। कुछ बानगी देखिए:

जीवन मात्र त्याग नहीं, समर्पण है।
एक प्रगाढ मैत्री या बौद्धिक अंतरंगता
निकट सान्निध्य या पवित्र आत्मीयता।
विजय-पराजय जिस पर अर्पित
उस को मेरा गीत समर्पित।
न कोई मुकम्मिल ख्वाब, न पूरी हकीकत
बस एक जागता-सा उनींदा अहसास।

जहाँ तक इस काव्य-संग्रह की भाषा और शैली का संबंध है वह अपने-आप में बेजोड़ है। उनकी कविताएँ भाषीय सहजता, सरलता, संवेदनशीलता और संप्रेषणीयता का एक सुंदर दस्तावेज है। इन कविताओं में उर्दू शब्दों का भरपूर इस्तेमाल हुआ है जो इस काव्य-संग्रह की खूबसूरती में चार चाँद लगा देता है।

– बी.एच. 48, शालीमार बाग, दिल्ली-110088

❑❑❑

कविताओं के बहाने संवाद करते एक कवि

डॉ. रमेश तिवारी

लालित्य ललित के दैनंदिन जीवन में कविताओं की अलग महत्वपूर्ण भूमिका है। एक मनुष्य के रूप में जैसे हम सबके जीवन की पहचान हमारी साँसों और हृदय की धड़कनों का चलना है ऐसे ही लालित्य ललित नामक कवि की पहचान कविताओं की रचना से ही पूर्ण होती है। ये इनकी दिनचर्या और अब आदत सी बन गई है। जिस कविता संग्रह का उल्लेख मैं यहाँ करना चाहता हूँ उसका शीर्षक भी आदत से ही मिल के स्वयं बन गया है- 'आदत सी तुम्हारी'। ललित जी नित्य एक कविता को सोशल मीडिया के मंच फेसबुक पर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में कविताएँ माध्यम हैं पाठकों से संवाद करने का। संवाद भी अकारण अथवा निरूद्देश्य नहीं है। अपितु बेहतरी के उद्देश्य के साथ संवाद की प्रेरणा देती कविताएँ इनकी अलग पहचान बनाती हैं। हालाँकि कुछ लोगों को ऐसा लग सकता है कि नित्य एक कविता अथवा इतनी अधिक कविताएँ रचने का कारण अथवा जरूरत भी क्या है! मुझे लगता है कि यह एक कवि की दीवानगी का एक प्रकार है जो कविताओं के बहाने से रोज-रोज सुबह अपने पाठको से राम-राम, दुआ-सलाम करते हुए संवाद के नित्य नए अवसरों की तलाश में रहता है।

इस संग्रह की पहली ही कविता अपनी ध्वन्यात्मकता में विविधता लिए बन पड़ी है। शीर्षक हैं- 'कहते हैं', नशा होता ही है। कवि को भी नशा है। किंतु नशे के प्रचलित अर्थ से नितांत भिन्न यह नशा अपने आप में विशिष्ट है- *यह नशा केवल तुम्हारा है। जिसमें शब्द हैं/ पुस्तकें हैं, लाइब्रेरी है/ और समूची तुम/ और नशे की/ न जरूरत/ न चाहत/ क्योंकि तुम्हारा नशा ही काफी है/ जीने के लिए/ आगे बढ़ने के लिए।* (पृष्ठ-11) इस नशे को कवि आगे और स्पष्ट करते हुए लिखता है- *यह नशा है प्यार का/ तुम्हारा और सिर्फ तुम्हारा।* (पृष्ठ-11)। बहुत साफ है कि यह नशा प्यार करने का है, मोहब्बत का है। प्यार, जिसमें रजामंदी और कभी-कभी लड़ाइयाँ भी हैं- *प्यार में लड़ना भी/ किसी मोहब्बत से कम नहीं। (पृष्ठ-13)*

प्यार एक ऐसा खूबसूरत अहसास है जिससे शायद ही कोई अपरिचित हो। कवि इस विषय पर बहुत डूबकर कविताओं को रचता है। प्यार के भी रंग, कई रूप होते हैं। मसलन, *पहली नजर का प्यार/ सीधा और सिंपल जवाब था उसका/ वह प्यार जो आपको जीवन भर/ आपकी स्मृति में आपको गुदगुदाता रहता है/* लगता है वह आपके साथ/ आपके पास है (पृष्ठ-22)

कवि आम जन से अपनी संवेदना के धरातल को जोड़ते हुए कवि रचता है- *हम गरीबों की खुशी तो साहब वह है कि बच्चे सुबह जाकर/सही सलामत लौट आए। वरना गरीब की किस्मत में तो/ आए दिन पिटना लिखा है* (पृष्ठ-26) जिन लोगों को कविताओं में कवि के सरोकार ढूँढने की बीमारी है उनके लिए ऐसी कविताएँ किसी औषधि से कम उपयोगी नहीं होगी।

आदत सी तुम्हारी (काव्य-संग्रह)कवि- लालित्य ललित / गीतिका प्रकाशन, बिजनौर (उत्तर प्रदेश)/ संस्करण : 2017/ पृ. 126/ मूल्य ₹250/-

कवि का संदेश और सरोकार शीशे की तरह साफ है, किसी को अब भी कवि के स्टैंड को लेकर उहापोह या अस्पष्टता हो तो कोई कर भी क्या सकता हैं हमारे समाज का अधिसंख्य जन समूह है जो ऐसा ही जीवन जीने को लाचार है। इसके बख्श एक दूसरा वर्ग भी है आभिजात्य वाला। अगली ही कविता में उनका भी वर्णन कवि ने बड़ी बेबाकी से कर दिया है- *सुबह की सैर को निकले दो जन/अलग-अलग दिशाओं से/ कहीं दूर से निकम्मे बाप का लौंडा/ तेज रफ्तार में आता है। नशे के कारण बेसुध है/ तीन मिनट में दो मारता हुआ/ एक को घायल कर जाता है।* यह अपने धन और प्रभुत्व के मद में चूर आभिजात्य वर्ग के वारिस (पृष्ठ-27) की असली सूरत है। एक ही देश में दो ध्रुवों की तरह जीने को अभिशप्त है ये दोनों समाज एक-दूसरे के आमने-सामने दुश्मन की तरह हैं जीना और मर जाना ही इनकी नियति है।

कवि का मानना है कि तमाम उठा-पठक और भागमभाग जूतम पैजार के बावजूद हमें हाथ पर हाथ धरकर बैठना हरगिज नहीं है। *चलने का नाम ही जिंदगी है। दौड़ है/ मंजिल है/ लक्ष्य है/ उम्मीद है/ और तुमसे मिलने की इच्छा है।* (पृष्ठ-35) कभी-कभी कर्मठता और जीवन के बावजूद कवि नियतिवादी होने लगता है। जिंदगी का पता ढूँढती कविता उदाहरण के तौर पर देखी जा सकती है- *नहीं मालूम कहाँ जाना है/ जाना ही है/ जो लिखा है उसे होना ही है।* (पृष्ठ-38) कभी-कभी जीवन में ऐसी स्थितियाँ आती हैं जब कमोबेश हम नियतिवादी होकर भी सोचने लगते हैं कि सब कुछ पूर्व निर्धारित है, अटल है। बेहतर यह है कि ऐसा कभी-कभार ही होता है, अक्सर नहीं होता वरना यह चिंता कारण में अकर्मण्यता की ओर ले जाती है।

हमारा समाज अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के लोगों से मिलकर बना है। 'कुछ' लोग कविता के बहाने इसी बिंदु पर फोकस करना चाहता है। *कुछ लोग मीठे/ कुछ खट्ठे/ कुछ जहरीले होते हैं/ सबको महसूस करने/ उनकी प्रकृति को/ उनकी प्रवृति को/ फिर यह चिंतन करो/ यह स्वाभाविक सोच है* / इसकी गहराई में जाने का मन हो तो/ तो सोचो/ समाज उतना अच्छा भी नहीं रहा/ जितना आपकी सोच में है। (पृष्ठ-41) कवि इस दुनिया में सबसे मिलकर और सबसे बचकर जीवन जीने का फलसफा भी अपने पाठकों को दे डालता है- *किताबी बातें/ किताबों में भली लगती हैं/ असल जिंदगी में/ दुनियादारी जरा अलग अंदाज में चलती है/ इसके लिए आपका ब्लड प्रेशर बढ़ता भी है/ और कभी-कभी घटता भी है/ इसलिए ऐसे लोगों से दूर रहें/ जो अनावश्यक आपके/ सरदर्द का कारण बनते है।* (पृष्ठ-41) इससे अधिक स्पष्ट संदेश और क्या हो सकता है।

कवि का मन प्यार, प्रेम, मोहब्बत के विषय वर्णन में अधिक रमता है। 'मोहब्बत' कविता देखें- *मेरे लिए/ यह मिठास भर अहसास है/ इसको मैं जीता हूँ अपने अंदाज से।* (पृष्ठ-65) हमारा जीवन संघर्षों से भरपूर उस जुए के समान है जहाँ हार-जीत दोनों हैं। "जिंदगी किसी जुए से कम नहीं" कविता मे कवि लिखता है- *आप जिंदगी भर/लड़ते हों, अपने हक के लिए/ अपने सम्मान के लिए/ कुछ भी हासिल नहीं होता/ आप सोचने पर मजबूर होते हैं/ क्यों काले किए पन्ने।* (पृष्ठ-77) ये अधिसंख्य भारतीयों के जीवन की दास्तान है जो कवि ने अपने शब्दों में अभिव्यक्त की है। आम आदमी की हालत यह है कि, *आम आदमी करने के लिए ही पैदा होता है/ कुछ बोलने की ताकत उसमें पहले नहीं होती/ इधर बोला/ उधर किसी ट्रक के नीचे आया समझो।* (पृष्ठ-77) आज इसे भयावह कहें वीभत्स या कुछ और। किंतु यही सच है हमारे समाज का। हम चाहकर भी इससे आँखे नहीं चुरा सकते।

प्यार का एक रूप यह भी है कि जिसे हम बार-बार परखकर आनंदित होते हैं। दिन की पहली चाय कविता का आनंद यही है। *मेरी जिंदगी में तुम भी दिन की पहली चाय सी/ जिसे मैं सिप करता हूँ/ फिर-फिर टेस्ट करता हूँ।*(पृष्ठ-93) इसी प्रकार कई बार हम संबंधों के निर्वहन और उसमें दरार से बचने के लिए झूठ का सहारा भी लेते हैं। झूठ बोलने का सौंदर्य कविता का यही संदेश है। *एक उम्र के बाद/ झूठ बोलने में मन रमता है/ सुनने में भी आनंद आता है/ बोलते रहिए आप कुछ भी/ हमें सुनने में आनंद मिल रहा है।* (पृष्ठ-94)

महानगर में रहकर भी कवि महानगरीय तामझाम से स्वतंत्र सहज, सरल जीवन शैली का पक्षधर है।

"अब फासलों का क्या है" कविता में कवि लिखता है- *तुम्हारे लिए कभी अपने पास समय की किल्लत नहीं/ कि तुम मिलना चाहो और/ अपन मिलें नहीं/ एक आवाज़ देना/ फासले हमेशा नजदीकियाँ लाते हैं।* (पृष्ठ-112)

आदत सी तुम्हारी' संग्रह की कविताओं से गुजरते हुए कवि की संवेदनशीलता प्याज के छिलके की तरह परत उघड़ती जाती है। अपने जीवनानुभवों का निचोड़ कविता के माध्यम से कवि अपने पाठकों को प्रदान करता चलता है। पाठक इन कविताओं को पढ़ते हुए अपने आसपास के परिवेश से इन कविताओं का तादात्म्य देख सकता है इसमें कोई शक की गुंजाइश नहीं है।

उम्मीद है यह संग्रह लालित्य ललित के पूर्ववर्ती संग्रहों की तरह पाठकों के स्नेह का हकदार बनेगा और कवि निरंतर सक्रिय रहते हुए आगे भी पाठकों को अपनी कविताओं के माध्यम से उनके जीवन में सन्मार्ग का दिग्दर्शन करता रहेगा। लालित्य ललित को इस संग्रह के लिए बहुत-बहुत साधुवाद।

– 64-बी, फेज-II, डी. डी. ए. फ्लैट, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

❑❑❑

हरसिंगार! तुम झरते रहना (काव्य संग्रह)

अशोक मनोरम

मधु प्रसाद के गीतों का स्वभाव अत्यंत विनम्र और कोमल है। उनमें अंर्तमन की सुगंधित यादें फूटती हैं। मन का शायद ही कोई कोना हो जहाँ मधु जी के गीत प्रवेश नहीं करते।

श्री मधुकर गौड़ की नज़र में मधु के गीतों में प्रतीक एवं बिंब अपनी पूर्ण सजीवता के साथ सटीक रूप में उपस्थित होते हैं। बिना प्रेम के संसार की कल्पना भी नही की जा सकती। मधु के गीत प्रेम से सराबोर, पढ़ने को मिलते हैं। इनके गीतों में व्याकुलता और मिलन की संजीवनी बड़ी शालीनता से दिखती है। इन गीतों में कवयित्री के तीन-तीन चिंतन-आयाम पुष्पगुच्छ की तरह स्पष्ट दिखाई देते हैं, प्रथम है प्रणय, पीड़ा और प्रकृति। द्वितीय है स्मृति, समय एवं संबंध तथा तृतीय है अध्यात्म, आत्म-चिंतन और इतिश्री।

दरअसल, कवयित्री का मूल स्थायी भाव है, प्रणय! यहाँ उसके अंतर के भाव को आँखें संप्रेषित करती हैं। उस पर प्रियतम का ऐसा रंग गहराया है कि स्वयं संबोधन बन गया है।-

ऐसा गीत सुनाओ, प्रियतम, रोम-रोम टपके मधुशाला।
नेह दीप धर दो द्वारे पर, मन में फैला रहे उजाला।

चंदन की व्यथा में डूबी कवयित्री जीवन से कैसे किनारा करना चाहती है। उसकी साँसों की धड़कन धौंकनी बन गई लगती है मैं तूफानों से घिरी हूँ। कहते-कहते कवयित्री जहाँ अश्रुतर्पण करती और साथ-साथ बोल पड़ती है-

अश्रु घाटों पर ठिठक कर
पीर अपने पग पखारे
मौन का पक्षी गगन को
तक रहा पलकें पसारे।

कुछ गीतों में प्रकृति के मनोरम एवं संवेदनशीलता के सूक्ष्म चित्र भी नज़र आते हैं-

पगड़ी बाँधे मृदु किरणों की चाँद उतरता धीरे-धीरे।
झोले में भर अगन प्रेम की, ओढ़ धूप का
बिना नहाए घर से निकली, आँचल नदिया कितनी पागल।

कवयित्री का संगीत के प्रति आकर्षण एवं मोह उनका स्वयं संगीत की विद्यार्थी रहने की ओर संकेत करते हैं। शायद यही कारण रहा कि वे कवयित्री के साथ मिलकर जीवन की सरगम बनाने में जुटी रहीं- वे खुद कहती हैं-

आरोहन-अवरोहन के स्वर
ताल संग करते नर्तन
कजरी, चैती, ध्रुपद, दादरा
मन में होता अनुगूँजन।

'लग्न पत्रिका लिखता है मन', 'हल्दी मेंहदी वाली रातें', 'उबटन लगवाती थी ऋतुएँ- जैसे दृश्यों को याद करके कवयित्री स्वयं को बहलाती है-

---

हरसिंगार! तुम झरते रहना (काव्य-संग्रह) कवयित्री-मधु प्रसाद/ प्रकाशक : मधु प्रसाद, 29, गोकुलधाम सोसायटी, चाँदखेड़ा, अहमदाबाद- 382424/ प्रथम संस्करण : 2018/ पृष्ठ संख्या : 191/ मूल्य ₹200/-

'मेघदूत' और 'शाकुंतल' की बातें हुई पुरानी,
दादा-दादी कहाँ रहे जो कहते नई कहानी।

इस पुस्तक को पढ़ने के साथ ही यह अनुभव बढ़ता गया कि मधु प्रसाद में एक छिपा हुआ आध्यात्मिक व्यक्तित्व भी है जो रह-रहकर बाहर आता और कहता है-

जीवन की संझबाती कर लें, मौन हुआ अब कोलाहल
ध्यान मनन की बेला आई, अवचेतन के जागे पल।

वस्तुतः इस कृति के गीतों- नवगीतों का मख्य स्वर आध्यात्म नहीं है। यहाँ पीड़ा की चरम परिणति का निःश्वास ही है, जो कवयित्री को आश्वस्त करता है और प्रशस्त भी---

भाषा, शब्द-संवेदना एवं शिल्प की दृष्टि से गीत उर्वर है। कई नए मुहावरें, जो विस्तार करते हैं- संबंधों का स्नेह चुकना, आँगन की तुलसी के पैरों पड़ना, ताल-छंद की चादर ओढ़ना, नयन के द्वार खटखटाना, समय पर तड़ीपार होना, मर्यादाएँ औन-पौने दाम बिकना, सपनों का आवर्तन करना, झुरमुट का करवट बदलना, साँसों का थाप पड़ना, बचपन का छतरी खोलना, सपनों का दलदल में फँसना आदि....।

कुछ शब्दों का प्रयोग जैसे कलई चढ़े रिश्ते, क्वारीगंध, जलतरंग जैसी काया, मुखबिर दरपन, यौवन का पनघट, खुशबू का सिरहाना आदि से कवयित्री का संबंध बड़ा ही पुराना है।

छंदों में ऋजुता है, गति है, क्योंकि वह स्वयं कहती हैं-

और बताओ क्या सोचा है
तुमने मेरे बारे में
युगों-युगों तक रहूँ भटकती
या बह जाऊँ धारे में?

कवयित्री सिद्धहस्त है, गहरी संवेदना से जुड़ी हुई एक विराट हृदय की कलमकार हैं- इनके पास बीच से रास्ता निहालने की बेजोड़ कला है। शायद यही कारण है कि इनकी सोच हमेशा आशावादी रही है-

रातें कितनी भी काली, पछुआ दे मौसम को गाली
सभी रात निखरते रहना, हरसिंगार! तुम झरते रहना।

मधु प्रसाद के पास जहाँ भावों की भाषा और विचारों को- वहन करने वाली नितांत समर्थ भाषा है। वे गद्य तो धारा-प्रवाह लिखती ही हैं, गीतों की आत्मानुभूतियों को व्यक्त करने का माध्यम भी मानती हैं। गीत लिखना मधु प्रसाद के लिए श्रमसाध्य कार्य नहीं है। उनकी आत्माभिव्यक्ति गीत में अपेक्षाकृत अधिक सहज होती है।

मधु प्रसाद अंतर्मुखी कभी नहीं रही हैं। उम्र के साथ मनुष्य का मन, स्वभाव, भंगिमा, मुद्रा सभी बदलने लगते हैं। जो नहीं बदलते हैं, वे स्थायी होते हैं। मधुजी की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि गीत हमेशा युवा ही रहते हैं- शायद यही कारण रहा कि मधु जी के गीतों में प्रसन्नता अपनी छाप बनाए रखती है।

नहा रहा है जैसे तन-मन
प्रेम नदी के तट पर
गुलमोहर जैसे सपने हैं
यौवन के पनघट पर
काजल आँज रही पुरवाई
शरमाती दरपन से।

प्रकृति और मनुष्य दोनों किस तरह आपदाओं को झेलते हैं, यातनाओं को सहते हैं। दरअसल दोनों की पीड़ा एक ही है। मनुष्य भी प्रकृति को देखकर ही कुछ सीखता है- मधु प्रसाद ने व्यक्ति की सामाजिकता और समाज की व्यक्तिकता का उत्सव अपने गीतों में रचकर एक प्रति-संसार की रचना की है। गीतकार के गीत हमें सामाजिक विडंबनाओं, विसंगतियों और विद्रूपों से परिचित कराते हैं। इस गीतकार ने अपने गीतों में व्यवस्था के संकट और सामाजिकता के ह्रास को संघर्ष से रगड़ने की चेष्टा की है- और इसको प्राकृतिक आलंबन, उद्दीपन और संकेतों में लपेटकर लिखा है। इससे उसकी संप्रेषण शक्ति निरंतर बनी रहती है।

जब से सावन हुआ महाजन
रेहन हो गए ढाई आखर
बाँच रहा है व्यथा प्रीत की
नकली बाँटों से तुलवाकर
और वूसली की पोथी ले
पुरवाई आगे चलती है।

व्यवस्था के अपने आरोह-अवरोह होते हैं। गीतकार ने व्यक्ति औरर समाज का अतिक्रमण करते हुए व्यवस्था की दुरभिसंधियों को उनके अपने स्थान तक ले आकर छोड़ दिया है। व्यवस्था के मकड़जालों को अब जनता पहले से अधिक समझने लगी हैं कवयित्री के प्रांजल व्यवहार के सामने व्यवस्था के मकड़जाल रचे तो गए, पर उसके बहकावे में आने का सवाल ही नहीं। वह चाहे कितना भी रूप बदले पर उसकी अराजकता छुप नहीं सकती---!

मौसम की मुखबरी देखकर
जीवन ठगा हुआ लगता है,
व्यर्थ हो गए सभी आँकड़े
केवल शून्यभाव जगता है।
सूद मूल पर माटी ठहरा
गिन-गिनकर अँगुली छलती है----

मैंने सुन रखा है कि मधु जी कुशल व सरस्वती की धनी रचनाकार है और अब इस रूप को देखने के बाद लगने लगा है कि सरस्वती के साथ कर्मठता का विशेषण लगने से आशा और विश्वास अपने आप उपजता जाता है, चाहे झील के सतह अथवा जल निधियों की प्रांजलता पर लेखनी स्वर्ण कलम बन गई लगती है।

मधु के आत्मीय संदर्भ वाले गीतों का लालित्य उनके रंग-बिरंगे बिंबों की मदद से तैरता है, मानव के हृदय पटल पर और परिवार के संबंधों के सुख लिखने में मधु जी को महारत देती है उनकी शैली---। जीवन के प्रति अटूट निष्ठा, आसक्ति और राग-चेतना को और भी कोमल बना देती है जिससे जीवन संवर जाता है, अमुविधाओं में भी वह जीने योग्य बन जाता है। फूलों का मौसम चारों ओर दिखता है, पतझड़ नजरों से ओझल हो जाता है---

पंक्तियाँ देखें
झुरमुट से संकेत कर रहा
चंदा का मादक सम्मोहन
तारे ढोलक लेकर उतरे
रजनी का सुनकर संबोधन
रक्त शिराएँ ढूँढ रही थी
साँसों में ठुमरी कोई थी।

मधु जी की तरह अन्य रचनाकार भी जानते हैं कि गीत लिखना कितना कठिन व श्रमसाध्य है। एक भावविशेष को तीन अंतराओं में निबद्ध करना आसान नहीं होता। शब्द-वैभव और कलम शैली की नई भंगिमा के बिना यह संभव नहीं होता है। अपने शिल्प और बदलते समय-समाज के अनुरूप अंतर्वस्तु के मँजाव और परिणति के करण नवगीत से ऊपर और आगे की संवेदनाओं को धारण करता है। परंतु नवगीत ने कभी गीत का आँगन नहीं बाँटा। वह उनको आगे ले जाने का ही काम करता रहा है।

मधु जी के गीत इतने जीवंत है कि वे जीवन की तरह साँस भरते प्रतीत होते हैं। गीत के प्रचलित साँचे में ढलकर भी उनके गीत अपनी सभी संवेदनाओं से भी मुद्राएँ धारण कर लेते हैं। ये गीत जनजीवन से ऊर्जा और रस प्राप्त कर अधिक समृद्ध और धारदार बन जाते हैं। ये गीत प्रेम के विविधलक्षी रंगों से रंगकर नई मनुष्यता को जगाने, उजागर करने और सँवारने के लिए रचे गए हैं।

मधु प्रसाद की संपूर्ण गीत परिधि को आकर्षित करने के क्रम में खुर्शीद नवाब की ग़ज़ल की ये पंक्तियाँ काफी माकूल लगती हैं-

अपनों से गुफ्तगू करें, होशो हवास में
माहौल का भी जायजा लें, आसपास में
कोशिश रहे कि पहुँचे हकीकत की तह तलक
बेजा न फैसला करें अपने क़यास में.....

– आर. जेड 31, ब्लॉक-एक्स, न्यू रौशनपुरा, पपरावट रोड, नज़फगढ़, नई दिल्ली-110043

❑❑❑

प्राप्ति स्वीकार

1. रानी पद्मिनी (चित्तौड़ का प्रथम जौहर)/ ब्रजेंद्रकुमार सिंहल/ वाणी प्रकाशन, 4095,21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002/ प्रकाशन वर्ष: 2017/ पृष्ठ: 280/ मूल्य: ₹600/-
2. स्वाहा-स्वाहा/ पराग परिमल/ बोधि प्रकाशन, सी-46, सुदर्शन पुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन, नाला रोड, 22 गोदाम, जयपुर-302006/ प्रकाशन वर्ष: 2017/ पृष्ठ: 131/ मूल्य: ₹150/-
3. मैं ऐसा ही हूँ (काव्य-संग्रह)/ डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'/ प्रकाशक-विश्व हिंदी साहित्य परिषद् ए डी-94/डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088/ प्रकाशन वर्ष: 2018/ पृष्ठ: 107/ मूल्य: ₹250/-
4. तेरे चरणों में (बाल एकांकी संग्रह)/ डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प'/ प्रकाशक- सूर्य भारती प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-110006/ प्रकाशन वर्ष: 2018/ पृष्ठ: 127/ मूल्य: ₹300/-
5. मार्जिन में पिटता आदमी/ शांति लाल जैन/ प्रकाशक- क प्रकाशन, 434, गणेश नगर, गली नं.2, शकरपुर, दिल्ली-110092/ प्रकाशन वर्ष: 2017/ पृष्ठ: 208/ मूल्य: ₹300/-
6. अर्थगमन/ बलदेव त्रिपाठी/ लेखन प्रकाशन, 570/एस-310, कृष्णपुरी, पकरी का पुल, बी. आई. जी. आलमबाग, लखनऊ-226002/ प्रकाशन वर्ष: 2017/ पृष्ठ: 356/ मूल्य: ₹250/-
7. व्यंग्य सप्तक/ डॉ. रमेश तिवारी/ हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर-246701/ प्रकाशन वर्ष: 2018/ पृष्ठ: 184/ मूल्य: ₹380/-
8. बेटियाँ हैं अनमोल रत्न/ गीता ग्रोवर/ शिवांजली प्रकाशन, ए-83, राजापुरी, भारत विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059/ प्रकाशन वर्ष: 2018/ पृष्ठ: 101/ मूल्य: ₹120/-

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. प्रो. ऋषभदेव शर्मा, 208-ए, सिद्धार्थ अपार्टमेंट्स, गणेश नगर, रामताप्पुर, हैदराबाद-500013
2. श्री वाढेकर रामेश्वर महादेव, हिंदी विभाग, डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद
3. डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव, जूनियर रिसोर्स पर्सन/लेकचरर ग्रेड, राष्ट्रीय परीक्षण सेवा-भारत, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर, कर्नाटक
4. डॉ. पशुपति नाथ उपाध्याय, 8/39ए, शिवपुरी अलीगढ़ 202001 उत्तर प्रदेश
5. डॉ. एम. शेषन्, 'गुरुकृपा', प्लाट-790, डॉ. रामास्वामी सलाइ, के. के. नगर (पश्चिम), चेन्नई-600078
6. डॉ. पंकज साहा, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर, पश्चिम बंगाल-721305
7. श्री सुशील सरित, 36, अयोध्या कुंज, ए, आगरा-282001, उत्तर प्रदेश
8. डॉ. संतोष अलेक्स, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी, सी आई एफ टी, वेलिंगडन आइलैंड, मत्स्यपुरी डाकघर, कोच्चि-682029
9. श्री उमाकांत खुबालकर, 33/11, नोवा, अशोक रोड, क्षिप्रा सन सिटी, इंदिरापुरम्, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश 201014
10. डॉ. अमलसिंह 'भिक्षुक', 133/20 भारती गंज, सासाराम, रोहतास, बिहार- 821115
11. श्री उज्ज्वला केलकर, 176/2, गायत्री, प्लॉट नं.-12, वसंत दादा साखर कामगार भवन, जवल, सांगली-416416 (महाराष्ट्र)
12. डॉ. सुशीला दुबे, फ्लैट न. 303, बिल्डिंग नं. डी-2, शिवसागर को-ऑप. सोसायटी, मणिक बाग, सिंहगढ़ रोड पुणे-411051
13. श्री इश्तियाक़ सईद, बी-01, न्यू मीरा पैराडाईज, सी. एच. एस. गीता नगर, फेस-2, मीरा रोड-401107, मुंबई
14. श्री रमेश मनोहरा, शीतला माता गली, जावरा, जिला रतलाम, मध्य प्रदेश
15. श्री नरसिंह देव जम्वाल, द्वारा- कमला प्रकाशन, गाँव एवं डाकघर-भलवाल (जम्मू) 181122
16. श्री कृष्ण शर्मा, 152/119 पक्की ढक्की, जम्मू-180001
17. डॉ. एल. हनुमंतय्या, 207ए, III 'डी' क्रास, II ब्लाक, III स्टेज, बसवेश्वर नगर, बंगलूरू-79
18. डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी', 391, VI मेन रोड, III ब्लाक, III स्टेज, बसवेश्वर नगर, बंगलूरू-560056

19. श्री शेखर, 31/51, हरमुखा, लंगड़े की चौकी, आगरा उत्तर प्रदेश
20. डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश' डीन, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय एवं अध्यक्ष, हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, 157, गढ़ विहार, फेज-1 मोहकमपुर, देहरादून-248005
21. डॉ. किश्वर सुल्ताना द्वारा डॉ. जेड. ए. सिद्दीकी, चौक मोहम्मद सईद खान, लांगरखाना, रामपुर-244901 उत्तर प्रदेश
22. डॉ. गंगा प्रसाद विमल, 112, साउथ पार्क, कालका जी, नई दिल्ली-110019
23. डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', 74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की-247667
24. डॉ. संतोष खन्ना, बी. एच. 48, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
25. डॉ. रमेश तिवारी, 64-बी, फेज-II, डी. डी. ए. फ्लैट, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016
26. श्री अशोक मनोरम, आर. जेड़. 31, ब्लॉक-एक्स, न्यू रौशनपुरा, पपरावट रोड, नज़फगढ़, नई दिल्ली-110043

❑❑❑

निदेशालय के नूतन प्रकाशन

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-2-2019
1100

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित